श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

समयसार प्रवचन

त्रयोदशतम भाग

प्रवक्ता :—

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री मनोहर जी वर्णी

"श्रीमत्सहजानन्द" महाराज

सम्पादक :—

महावीरप्रसाद जैन, बैंकर्स, सदर मेरठ

प्रकाशक —

खेमचन्द जैन, सर्राफ

मंत्री, श्री सहजानन्द शास्त्रमाला,

१८५ ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ

(उ० प्र०)

प्रथम संस्करण]
१०००

१९६८

[मूल्य
१)५० पैसे

श्री सहजानन्द शास्त्रमालाके संरक्षक

(१) श्रीमान् ला० महावीरप्रसादजी जैन, बैंकर्स, सदर मेरठ

संरक्षक, अध्यक्ष एवं प्रधान ट्रस्टी

(२) श्रीमती सौ० फूलमाला देवी, धर्मपत्नी

श्री ला० महावीरप्रसाद जी जैन, बैंकर्स, सदर मेरठ।

श्री सहजानन्द शास्त्रमाला के प्रवर्तक महानुभावों की नामावली :—

१	श्रीमान्	लाला लालचन्द विजयकुमार जी जैन सर्राफ,	सहारनपुर
२	,,	सेठ भंवरीलाल जी जैन पाण्ड्या,	झूमरीतिलैया
३	,,	कृष्णचन्द जी जैन रईस,	देहरादून
४	,,	सेठ जगन्नाथजी जैन पाण्ड्या,	झूमरीतिलैया
५	,,	श्रीमती सोवती देवी जी जैन,	गिरिडीह
६	,,	मित्रसैन नाहरसिंह जी जैन,	मुजफ्फरनगर
७	,,	प्रेमचन्द ओमप्रकाश जी जैन, प्रेमपुरी,	मेरठ
८	,,	सलेखचन्द लालचन्द जी जैन,	मुजफ्फरनगर
९	,,	दीपचन्द जी जैन रईस,	देहरादून
१०	,,	बारूमल प्रेमचन्द जी जैन,	मसूरी
११	,,	बाबूराम मुरारीलाल जी जैन,	ज्वालापुर
१२	,,	केवलराम उग्रसैन जी जैन,	जगाधरी
१३	,,	सेठ गैंदामल दगडू शाह जी जैन,	सनावद
१४	,,	मुकुन्दलाल गुलशनराय जी, नई मंडी,	मुजफ्फरनगर
१५	,,	श्रीमती धर्मपत्नी बा० कैलाशचन्द जी जैन,	देहरादून
१६	,,	जयकुमार वीरसैन जी जैन, सदर	मेरठ
१७	,,	मंत्री जैन समाज,	खण्डवा
१८	,,	बाबूराम अकलंकप्रसाद जी जैन,	तिस्सा
१९	,,	विशालचन्द जी जैन, रईस	सहारनपुर
२०	,,	बा० हरीचन्द जी ज्योतिप्रसाद जी जैन ओवरसियर,	इटावा
२१	,,	सौ० प्रेमदेवी शाह सुपुत्री बा० फतेलाल जी जैन संघी,	जयपुर
२२	,,	मंत्राणी, दिगम्बर जैन महिला समाज,	गया
२३	,,	सेठ सागरमल जी पाण्ड्या,	गिरिडीह
२४	,,	बा० गिरनारीलाल चिरंजीलाल जी, जैन	गिरिडीह
२५	,,	बा० राधेलाल कालूराम जी मोदी,	गिरिडीह
२६	,,	सेठ फूलचन्द बैजनाथ जी जैन, नई मण्डी,	मुजफ्फरनगर

२७	श्रीमान्	सुखवीरसिंह हेमचन्द जी सर्राफ,	बडौत
२८	,,	गोकुलचंद हरकचंद जी गोधा,	लालगोला
२९	,,	दीपचंद जी जैन ए० इंजीनियर,	कानपुर
३०	,,	मंत्री दि० जैनसमाज, नाई की मंडी,	आगरा
३१	,,	संचालिका दि० जैन महिलामंडल, नमक की मंडी,	आगरा
३२	,,	नेमिचन्द जी जैन, रुड़की प्रेस,	रुड़की
३३	,,	झब्बनलाल शिवप्रसाद जी जैन, चिलकाना वाले,	सहारनपुर
३४	,,	रोशनलाल के० सी० जैन	सहारनपुर
३५	,,	मोल्हड़मल श्रीपाल जी, जैन, जैन वेस्ट	सहारनपुर
३६	,,	सेठ शीतलप्रसाद जी जैन,	सदर मेरठ
३७	,, ✿	गजानन्द गुलाबचन्द जी जैन बजाज	गया
३८	,, ✿	बा० जीतमल इन्द्रकुमार जी जैन छाबड़ा,	झूमरीतिलैया
३९	,, ✿	इन्द्रजीत जी जैन, वकील स्वरूपनगर	कानपुर
४०	,, ✿	सेठ मोहनलाल ताराचन्द जी जैन बड़जात्या,	जयपुर
४१	,, ✿	बा० दयाराम जी जैन आर. एस. डी. ओ.	सदर मेरठ
४२	,, ✿	ला० मुन्नालाल यादवराय जी जैन,	सदर मेरठ
४३	,, ×	जिनेश्वरप्रसाद अभिनन्दनकुमार जी जैन,	सहारनपुर
४४	,, ×	जिनेश्वरलाल श्रीपाल जी जैन,	शिमला
४५	,, ×	बनवारीलाल निरंजनलाल जी जैन,	शिमला

नोट:— जिन नामोंके पहले ✿ ऐसा चिन्ह लगा है उन महानुभावोंकी स्वीकृत सदस्यताके कुछ रुपये आ गये हैं, शेष बाकी हैं तथा जिनके नामके पहले × ऐसा चिन्ह लगा है उनकी स्वीकृत सदस्यताका रुपया अभी तक कुछ नहीं आया, सभी बाकी है।

आत्म-कीर्तन

शान्तमूर्ति न्यायतीर्थ पूज्य श्री मनोहरजी वर्णी "सहजानन्द" महाराज
द्वारा रचित

हूँ स्वतन्त्र निश्चल निष्काम । ज्ञाता द्रष्टा आतमराम ।।टेक।।

[१]

मैं वह हूं जो हैं भगवान , जो मैं हू वह हैं भगवान ।
अन्तर यही ऊपरी जान , वे विराग यहँ राग वितान ।।

[२]

मम स्वरूप है सिद्ध समान , अमित शक्ति सुख ज्ञान निधान ।
किन्तु आशवश खोया ज्ञान , बना भिखारी निपट अजान ।।

[३]

सुख दुख दाता कोई न आन , मोह राग रुष दुख की खान ।
निजको निज परको पर जान , फिर दुखका नहिं लेश निदान ।।

[४]

जिन शिव ईश्वर ब्रह्मा राम , विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम ।
राग त्यागि पहुँचू' निजधाम , आकुलताका फिर क्या काम ।।

[५]

होता स्वयं जगत परिणाम , मैं जगका करता क्या काम ।
दूर हटो परकृत परिणाम , 'सहजानन्द' रहूँ अभिराम ।।

....०....

समयसार प्रवचन त्रयोदशतम भाग

[प्रवक्ता.— अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक मनोहरजी वर्णी "सहजानन्द" महाराज]

इस समयसार ग्रन्थमें प्रायोजनिक तत्त्वका और हितरूप उपदेशका वर्णन करके अब अंतिम अधिकारमें सर्वविशुद्ध ज्ञानकी प्रतिष्ठा करते हैं। यह अधिकार मोक्षमार्गमें प्रवेश करने वालोंके लिए एकमात्र आलम्बन स्वरूप है। इसका आश्रय कल्याण करता है जीवका।

जीवकी कल्याणरूपता—परमार्थतः जीव स्वयं कल्याणमय है। कल्याणके लिए कल्याणके बाधकोंको हटाने भरका ही काम है। कल्याण उत्पन्न नहीं करना है। कल्याणमूर्ति तो यह स्वय है। अब उसकी दृष्टि न होनेसे जो विडम्बना हो रही है, मात्र दृष्टि करने से वह विडम्बना समाप्त है। इस जीवके साथ कोई परतत्त्व अवश्य लगा हुआ है जिसका निमित्त पाकर यह जीव विड्रूप बना, क्योंकि कोई भी विडम्बना परके सम्बन्ध बिना नहीं होती। वह परतत्त्व है कर्म। जीवके एकक्षेत्रमें कर्म आते हैं कर्म आकर वे पुण्य और पाप दोनों रूप बनते हैं। कर्मोंसे बन्धन होता है। जब तक यह जीव अपने को परका कर्ता मानता है तब तक यह बँधता है। जब इसे अपने अकर्तृत्वस्वरूपका बोध होता है तो यह बंधन मिट जाता है।

छुटकारा - भैया! यहीं देख लो। जब तक किसी परपदार्थके करने का विकल्प है तब तक बन्धन है और किसी भी कारण यदि करनेका विकल्प मिट गया तो बधन मिट गया। यदि ज्ञानके कारण करनेका विकल्प मिटा दिया तो सविधि और मूलसे बधन मिटता है। और किसी लड़ाई विवादके कारण किसी संस्थानके या धर्मायतनके, या घरके ही किसी कामके करने का विकल्प मिटा दें तो मूलसे शान्ति नहीं होती क्यों कि उसमें करनेका विकल्प मूलसे नहीं मिटा। एकका विकल्प मिटा दूसरे का विकल्प किया। जब यह जीव परका अपनेको अकर्तारूपमें देखता है और रागादिक विभावोंका भी मैं स्वरसत. कर्ता नहीं हू, इस पद्धतिसे अपनेको देखता है तब उसके सवर तत्त्व प्रकट होता है। कर्मोंका आना रुक जाता है और बँधे हुए कर्मोंकी निर्जरा होती है। निर्जरा होती हुई चूँकि संवरपूर्वक हुई ना। अत कभी पूर्ण छुटकारा हो जाता है। उस पूर्ण छुटकारेकी बात मोक्षाधिकारमे बतायी गई है।

सर्वविशुद्धताका एक दृष्टान्त—अब यहां सब बातें बतला कर भी जो ज्ञानकी दृष्टिका विषय है, जो अपने आपमें परमार्थस्वरूप है, जो स्वरूप निर्दोष होकर मोक्षका वेष धारण करता है, अब इस सर्व विशुद्ध निज स्वरूपकी चर्चा की जा रही है। जैसे एक अंगुलीके बारेमें आपसे पूछें कि तुम बिल्कुल सच तो बतावो, फिर बदलना नहीं, एक बार बतावो सो बता ही दो। यह अंगुली कैसी है? क्या आप यह कहेंगे कि यह अगुली सीधी है? देखो यह कहा रही सीधी? तुम अब कहोगे कि टेढ़ी हो गयी। जो वास्तवमें अगुली है, जिसको आप बदलें नहीं, वैसी अगुली को बतलावो। अगुली मोटी है यह भी सत्य नहीं है, पतली है यह भी सत्य नहीं है, बडी है यह भी सत्य नहीं है, छोटी है यह भी सत्य नहीं है। फिर वास्तवमे अगुली कैसी है? तो आप कहेंगे कि एक ऐसे मैटरका नाम अगुली है जो कभी टेढ़ी हो, कभी सीधी हो, कभी छोटी हो, कभी बड़ी हो अथवा सब परिणतियोंमें व्यापकर रहने वाला जो कोई यह मैटर है वह है वास्तवमे अंगुली।

निज सर्वविशुद्धता—इसी प्रकार अपने जीवके बारेमें पूछें कि मैं जीव कैसा हू? तो कोई कहेगा कि मनुष्य हैं। मैं मनुष्य हू, यह बात सच है क्या? झूठ है। यह मनुष्य आयु खत्म हुई फिर मैं मनुष्य कहा रहा? मैं मनुष्य नहीं हू। मैं आश्रवरूप हू, रागादिकरूप हू, यह भी ठीक नहीं है। बधरूप हू यह भी ठीक नहीं। सवर हू यह भी ठीक नहीं। निर्जरा हू यह भी ठीक नहीं। अजी मैं मोक्षरूप तो हू। इससे बढ़कर और क्या चीज है? कैसा है उत्कृष्ट रूप? कहते हैं कि तू मोक्षरूप भी नहीं है। इन ५ तत्त्वोंमें रहकर किसी भी रूप नहीं है। इसमें व्यापक जो एक चैतन्यस्वरूप है वह तू है। इस सर्व विशुद्ध ज्ञानका ही यह अधिकार चल रहा है।

आत्मतत्त्वकी विकल्पातीतता—मैं करने वाला हू? नहीं। भोगने वाला हू? नहीं। राग करने वाला हू? नहीं। कर्मोंसे लिपटा हुआ हू? नहीं। कर्मोंसे छूटा हुआ हू? नहीं। ये सब विकल्प हैं। मैं तो जो हू सो हू। बंधन, जैसे एक हल्की बात है इसी तरह मोक्ष भी व्यापक ध्रुव ज्ञायक स्वरूपकी वर्णनामें एक हल्की बात है। किसीसे कह तो दो, देख तो लो कहकर कि तुम्हारा बाप जेलसे मुक्त हो गया है। ऐसा कहने पर देखो फिर लड़ाई होती है कि नहीं? अरे भाई मुक्त ही तो कहा है। मुक्त होना तो अच्छी चीज है। देखो भगवान् मुक्त हो गए हैं - तो तुम्हारा बाप भी कैदसे मुक्त हो गया है। इतनी बात सुनकर क्या वह अच्छा अनुभव करेगा? अरे वह तो लडेगा। इसका कारण यह है कि कैदसे मुक्त हो गया

है इस बातमें गाली भरी हुई है कि कैदमें था पहिले, अब मुक्त हुआ है। तो आत्माका जब परमार्थ और सत्य वर्णन करने बैठते हैं और उस समय कहें कि आत्मा कर्मोंसे मुक्त है तो यह तो आत्माके स्वरूपकी गिरावट कर दी अथवा आत्माके स्वरूपकी दृष्टि ही नहीं रखी।

विशुद्ध पदार्थके स्वरूपावगमके लिये अंगुलिका दृष्टान्त— एक यह अनामिका अंगुली है। यह अगुली देखो इस छोटी अगुलीके सामने बड़ी दिखती है, किन्तु अंगुलीको बड़ा कहना यह अंगुलीका खास स्वरूप नहीं है। यह तो आपकी बुद्धिका उद्गम है, जो आप बड़ा कहते हैं, पर बड़ा होना क्या यह अंगुलीका स्वरूप है और कभी इस अगुलीके सामने यह बड़ी अंगुली कर दें तो आप कहोगे कि यह अंगुली छोटी है। तो क्या अंगुलीका छोटी होना अगुली का स्वरूप है। नहीं जैसे रूप, रस, गंध, स्पर्श, ये अगुलीके स्वरूप हैं इस तरह छोटा बड़ा तो नहीं ना? परपदार्थोंकी दृष्टि करके जो बात समझमें आए वह स्वरूप नहीं कहलाता है। किन्तु उस एक ही पदार्थको नजरमें लाकर फिर जो तुम्हें समझमें आए ऐसा समझो।

स्वरसनिर्भरता—यह मकान फलाने साहबका है, क्या यह बात सत्य है? नहीं सत्य है, क्योंकि यह परापेक्ष बना है और यह मकान जीर्ण है, ईंटा फूटा है, यह है मकानका स्वरूप, क्योंकि मकानको देखकर ही मकान की यह बात कही जाती है। परमार्थसे तो परमाणु-परद्रव्य है। मकान भी वस्तु नहीं है, इसी तरह आत्माका स्वरूप क्या है? अपने आप को पहिचानो तो मैं क्या हूं? मैं रागी नहीं, द्वेषी नहीं, मुक्त नहीं, क्रोधी नहीं, कषायवान् नहीं कषायरहित नहीं, मैं कषायसहित नहीं, मैं अच्छा नहीं, मैं बुरा नहीं। मैं जो हूं सो हूं, किन्तु यदि तुम जबरदस्ती कहलवाना चाहते हो कि समझमें नहीं आया, इतनी बात तो तुम बतावो। तो यह कहूगा कि मैं ज्ञानस्वरूप हू, ज्ञायकस्वरूप हू।

विशुद्ध पदार्थकी अनिर्वचनीयता—मैं ज्ञानस्वरूप हू, ऐसा कहनेमें भी स्वरूपकी गिरावटकी है तुमने। शब्दों द्वारा वह कहनेमें नहीं आ सकता क्योंकि मैं तो ऐसा अनिर्वचनीय विलक्षण स्वरूप हू कि जो किसी शब्द द्वारा कहा ही न जा सके। यदि मैं अपनेको ज्ञानरूप कह देता हूं तो समझ में तो यह भी आ रहा है कि इससे भी बढ़कर इसका दर्शन स्वरूप है। तो ज्ञानस्वरूप कहनेमें दर्शन तो छूट गया। कहो चेतनास्वरूप है, उसमें ज्ञान भी आया, दर्शन भी आया, तो चेतनास्वरूप ही यह कहनेमे आनन्द तो छूट गया। मैं आनन्दस्वरूप भी हू। आपके पास कोई शब्द ऐसे नहीं हैं जो आत्माका पूरा स्वरूप बता सके? इसलिए न वह अवस्थाओं से

लिप्त है, न शब्दोंसे लिप्त है, वह तो जो है सो ही है। ऐसे ही सर्व विशुद्ध ज्ञानका अब यहा प्रवेश होता है।

महात्मत्व—भैया ! अध्यात्मग्रन्थका यह बहुत महत्त्वशाली वर्णन चल रहा है। कहा दृष्टि देना, किसे अपना मानना—यह बडे महत्त्वका निर्णय है व जिसपर भविष्य निर्भर है—ऐसा खासा प्रश्न है। ये व्यापार, धन और वैभव तो अत्यन्त तुच्छ बातें हैं, खूब रहें तो क्या, कम रहें तो क्या, थोडा धन रहे तो क्या, बडा धन आये तो क्या ? वे तो सब परवस्तु हैं। भाग्यशाली पुरुष तो वह है जिसे अपने आपका परिचय हुआ है। उससे बढकर न कोई राजा है, न कोई धनी है। जिसे अपना सही पता हो गया और जो इस सम्यग्ज्ञानके कारण समग्र परवस्तुओंसे विश्राम पाकर अपने में मग्न हो गया, उसकी तुलना किससे कर सकें ? ये राजा, महाराजा, बडे लोग, धनी लोग—सब दुःखी हैं। होना ही चाहिए। जिसने दुःखरहित शुद्ध निजस्वरूपका भान नहीं किया है, वे कहा संतोष पायेंगे ? मैं कर्ता हूं, मैं भोक्ता हू, मैं कर्मबंध करने वाला हू, मैं कर्मोंको हराने वाला हू, आदिक सर्वभावों को प्रलीन करके यह सर्व विशुद्ध ज्ञानस्वरूप उपयोगाभ्यासमें प्रकट हुआ है। किसी भी समय यदि सबसे न्यारे अपने केवल चैतन्यस्वरूपको देख लें तो उसकी मुक्ति नियमसे होगी।

सकिञ्चनमन्यता की क्लेशरूपता—भैया ! घर परिवार सारभूत तो है नहीं, बल्कि उसके विकल्पमें अपने आपका ज्ञानबल घट जाता है और कर्मबंधन किया जाता है। फिर भी मान लो कि सम्बध हो गया है तो कहा छोडा जाय ? पर २४ घटे तो अपने उपयोगमें असार चीजको न धरे रहो। किसी समय अपनेको अकेला अकिञ्चन भाररहित निज ज्ञानमात्र तो झलकमें लो। अपने स्वरूपको अपने उपयोग में लिए बिना न धर्म होगा, न शांति होगी, न मोक्षमार्ग मिलेगा। इस निजस्वरूप को देखो जो बंधके आशयसे भी दूर है और फिर भी बंधमोक्ष समस्त हालत में रहने वाले हैं जो समस्त अवस्थावोंका स्रोतरूप है—पर किसी भी अवस्थारूप स्वरूप नहीं है। ऐसे विशुद्ध निज चैतन्यस्वभावकी दृष्टि इस अधिकार में रखी जायगी।

औपाधिक भावोंकी समानता—भैया ! जितने भी हमारे काम हैं, सुख दुःखकी अवस्था व मनुष्य पशु पक्षी आदि अवस्थायें हैं और सभी कल्पनाओं मे जितनी भी दशायें हैं ये उपाधिका सम्बध पाकर हैं। वे सब क्लेश स्वभावदृष्टि द्वारा दूर हो जाते हैं। उनका अनाकुलता स्वरूप नहीं है तो इस निगाहसे हमारे ये सब शुभ और अशुभ भाव और ये कल्पनायें सब एक समान भिन्न हैं। एक बुढियाके तीन लड़के थे। बड़ा, मझला व

छोटा । बुढियाका छोटा बच्चा भी कमसे कम १८, १९ सालका तो होगा ही । तो एक बनियाको भाव हुआ कि हमें एक ब्राह्मणको जिमना है । सो उसने हिसाब लगाया कि हमारे गांवमे ऐसा कौनसा ब्राह्मण है जो कम खाता हो । उसकी समझमें आया कि फलां बुढियाके तीन लड़के हैं, उनमें से सबसे छोटे लड़के को वह निमन्त्रण देने गया । बोला, बुढ़िया मां आज तुम्हारे छोटे लड़केका हमारे यहां निमन्त्रण है । तो बुढ़िया कहती है कि चाहे छोटे को निमन्त्रित करो, चाहे बडेको करो, चाहे सझले को करो, हमारे तो सब लड़के तिसेरिया हैं तीन सेर खाने वाले । सो इस ससारमें चाहे धनी बनकर देखलो, चाहे इस देशमें बडे नेता प्रभावशाली बनकर देखलो, चाहे महामूर्ख बनकर देख लो, सब जीवोंके जिनकी परपदार्थों पर दृष्टि है, सबके एक सी दु खोंकी, क्लेशोंकी चक्की चल रही है ।

परसे अशरणता--भैया ! किसी भी अन्य पदार्थ पर दृष्टि डालना शांतिका कारण न होगा । मेरे ही निजी पारिणामिक स्वभावकी दृष्टि शांतिकी साधकतम होगी । हम रागी भी होते हैं, कोई दूसरा नहीं होता, कर्म रागी नहीं होता, शरीर रागी नहीं होता, यह जीव ही रागी बनता है । किन्तु रागी होना ध्रुव तत्त्व नहीं है, औपाधिक भाव है । तो रागी होनेका मेरा स्वरूप नहीं रहा । मैं विचार भी करता हू और बड़ी बुद्धिकी बात सोचता रहता हू, पर यह सोचना मेरा स्वरूप नहीं है । यह चतुराई भी मेरा स्वरूप नहीं है तो भला बतलावो जब यह स्वरूप परभाव है तो अब हम किसकी शरण जायें कि हमें परम शाति प्राप्त हो ? कहां सिर झुकायें ?

अपने प्रभुके अदर्शनसे हैरानी--अरे भैया ! तेरा प्रभु तेरे ही अन्तरमें है । जरा गर्दन झुकाकर इन्द्रियोंको सयत करो और अपने ज्ञानानन्दघन स्वरूपका अनुभव करलो कितनी सरल बात है और स्वाधीन बात है । यह तो जगत्के जीवोंको कठिन लग रहा है और परपदार्थोंकी बात जिस पर अधिकार नहीं है उनकी बोलचाल प्रेमसंचय ये सब चीजें सरल लग रही हैं । जिस पर रंच अधिकार नहीं, इसको पागलपन नहीं कहा जायेगा तो और क्या कहा जायेगा ? जहा सभी पागल हों वहां कौन कहे पागल ? कोई विरला ही पुरुष सुधरे दिमागका हो तो वह देख सकता है इस पागलपन को । ज्ञानानन्दस्वरूप यह प्रभु अपने इस ज्ञानस्वरूपकी दृष्टि न करके बाह्य पदार्थोंमें अनुराग बनाकर जो बाह्यकी ओर दौड़ता रहता है, ऐसा पागलपन, मोह, मूढ़ता मिटाने का उपाय केवल वस्तु-विज्ञान है । उस वस्तुविज्ञानके प्रकरणमे इस अधिकारमें निज सहज स्वरूप का वर्णन किया जा रहा है ।

कारणपरमात्मतत्त्व—यह आत्मतत्त्व बंध मोक्षकी रचनासे भी परे है और यह शुद्ध है, विशुद्ध है। कितना शुद्ध है? धन वैभव आदि पर पदार्थोंसे शुद्ध है, याने न्यारा है। बँध हुए कर्मोंसे न्यारा है, शरीरसे न्यारा है, रागादिक भावोंसे न्यारा है। अपने शुद्ध अशुद्ध समस्त परिणमनोंसे भी न्यारे स्वरूप वाला है। ऐसा यह शुद्ध आत्मतत्त्व जिसके निज रसके विस्तारसे भरी हुई पवित्र निश्चल ज्योति जिसमें विकसित हुई है, टङ्कोत्कीर्णवत् निश्चल है ऐसा ज्ञानपुञ्ज अब इस अधिकारमें स्फुरायमान् होगा। इस उद्यममें क्या किया जा रहा है खूब विचार लो। अन्दर प्रवेश करके समस्त बाह्य विकल्पोंको भूलकर अपने आपमें मग्नता की जा रही है जो समस्त सुखोंका कारण है। सो यह सर्व विशुद्ध ज्ञान अब प्रकट होता है। भगवान बनता है कोई तो कुछ नई चीज नहीं बनता है। जैसे पाषाणकी मूर्ति बनायी तो कारीगर ने कुछ काम नहीं किया। उस मूर्तिके आवरण करने वाले पत्थर दूर किये हैं, मूर्ति नहीं बनायी है। वह तो जो था सो ही निकल आया। इसी तरह जो मुझमें अभी है वही निकल आए उसीके मायने परमात्मा है। कोई परमात्मा नई चीज नहीं है, उसी तत्त्वका इसमें वर्णन है।

ज्ञानमयकी ज्ञानद्वारा ग्राह्यता—आत्मामें ही जानने देखनेकी योग्यता है। इस आत्माको जगतके प्राणी किस-किस रूपमें ग्रहण करते हैं, उनका ग्रहण करना मोहरूप है। कोई अपनेको मनुष्य मानता, कोई अपने को स्त्री मानता, कोई अपनेको छोटा या बड़ा मानता, नाना तरहसे अपनेको मानते हैं किन्तु परमार्थसे यह आत्मा एकस्वरूप है। उसका वह स्वरूप क्या है? इसकी खोजमें बड़े-बड़े संतोंने सकल संन्यास करके वनमें रह कर साधनाएँ कीं। उस तत्त्वका इस अधिकारमें वर्णन है। यह मैं आत्मा रूप, रस, गंध, स्पर्श, रूप तो हूं नहीं। यदि होता तो पुद्गलकी भांति इन्द्रियके द्वारा ग्रहणमें आ सकता था। किन्तु यह आत्मतत्त्व इन्द्रियों द्वारा ग्राह्य नहीं है। इसका ग्रहण ज्ञान द्वारा ज्ञानरूपमें हुआ करता है।

ज्ञानस्वरूपके अपरिचयके दो कारण—भैया! इस ज्ञानस्वरूप को न जानने देनेके कारण दो हैं—एक तो पर्याय बुद्धि और दूसरे परमें कर्तृत्व बुद्धि। इन दो ऐबोंने इस प्राणीको परेशान कर रखा है। यह है परेशान अपनी मिथ्या धारणासे और मानता है परेशानी दूसरे जीवोंकी परिणतिसे। पर्याय बुद्धिका अर्थ यह है कि है तो यह सनातन सहज ज्ञान स्वरूप और मानता है यह जिस पर्यायमें गया उस पर्याय रूप। यह आत्मा पुरुष नहीं है, किन्तु पर्याय बुद्धिमें यह जीव अपनेमें पुरुषपने का अहंकार रखता है। यह जीव स्त्री नहीं है किन्तु पर्याय बुद्धिमें यह जीव

अपने को रती माननेमें अहंकार रखता है। यह तो शरीरसे न्यारा मात्र ज्ञानस्वरूप है सो इसे अपने स्वरूपमात्र न मानकर अन्य अन्य पर्यायों रूप मानना, यह इसका प्रथम महाअपराध है। दूसरा अपराध है परका अपनेको कर्ता मानना। मैंने गृहस्थी चलाया, मकान बनाया, दुकान चलाया, धन कमाया, देशमें नाम किया, नाना प्रकारकी कर्तृत्व बुद्धि रखना इस जीवका दूसरा महान् अपराध है।

आत्माके अपरिचयका तृतीय कारण—आत्माके अपरिचयका कारणभूत तीसरा अपराध है कि अपनेको परका भोगने वाला माना। मैं धन भोगता हूं, मैं आराम भोगता हूं, इज्जत भोगता हूं, विषयोंको भोगता हूं। सो भोगनेकी मान्यता की—यह है इसका तीसरा अपराध। बस इन तीन अपराधोंमें फंसा हुआ यह प्राणी किंकर्तव्यविमूढ़ होकर जगत्में भटक रहा है।

जीवका अकर्तृत्व स्वभाव—इस जीवका कर्तापन स्वभाव नहीं है। जैसे कि जीवका भोक्तापन स्वभाव नहीं है। किन्तु यह अज्ञानसे ही कर्ता बन रहा है और जिस दिन विवेक जगेगा उस दिन कर्ता न रहेगा। जब कोई काम करते करते भी सिद्धि नहीं होती है तब यह यों सोचकर रह जाता है कि होना न था ऐसा और अपने भावोंके अनुसार कोई काम हो जाय तो उसमें यह नहीं सोचता कि ऐसा ही होना था सो हो गया है। इसमें मेरा कोई कर्तव्य नहीं है। ऐसे कर्तृत्वका अभिमान भरा है और इस अभिमानके पीछे विवाद होता है, दुर्वचन बोले जाते हैं और अनेक आपत्तियां भोगी जाती हैं।

परसमागमकी परोक्षकारणताका एक दृष्टान्त—एक बार किसीने एक दानी नवाब साहबसे पूछा कि तुम जितना तो दान देते हो, किन्तु अपनी निगाह दान देते समय नीची कर लेते हो। पूछता है मनुष्य—"सीखी कहां नवाब जो ऐसी देनी देन ज्यों ज्यों कर ऊंचा करत त्यों-त्यों नीचे नैन॥" तुमने ऐसा दान करना कहां सीखा है कि ज्यों-ज्यों अधिक दान करते जाते हो त्यों त्यों तुम्हारे नेत्र नीचे होते जाते हैं। वह नवाब उत्तर देता है—"देने वाला और है देत रहत दिन रैन, लोगोंको भ्रम है मेरा तासों नीचे नैन॥" मैं नहीं देता हूं। देने वाला और है पुण्य कर्म, वह देता रहता है। उससे यह दान व्यवस्था चलती रहती है लोगोंको यह भ्रम है कि मैं यह देता हूं। सो मैं इस शर्मके मारे गड़कर अपने नेत्र नीचे रखता हूं।

अध्रुव समागमका सदुपयोग—ऐसा इस जगतमें जिसे जो समागम मिला है वह सदा न रह सकेगा। वह तो मिटेगा ही। अब यह नहीं

है कि उसको किस तरह मिटाये ? धनकी तीन गतियां होती हैं--दान, भोग और नाश। दान कर लो, भोग भोग लो और ये दोनो न कर सके तो उसका नाश हो जायगा। तो यों सोच लीजिये कि तृतीय अवस्था तो जरूर होगी, अब किसी तरह हो, अपना विवेक है।

हथेलीके किसी भी तरह रोम झडना--एक बार भरी सभामें वजीरसे बादशाहने पूछाकि वजीर ! यह तो बताओ कि इस मेरी हथेलीमें रोम क्यों नहीं हैं ? बडे लोग ऐसे ही ऊटपटांग बातें पूछ देते हैं जिनके सुननेमें कोई तत्त्व नहीं नजर आता। किन्तु वहां तत्त्व वाला उत्तर होना चाहिये। वजीर मेरे रोम क्यों नहीं हैं ? तो वजीर बोला कि तुमने इन हाथोंसे इतना दान दिया, तुम्हारे हाथ परसे इतना धन सरका कि धन सरकते-सरकते रोम झड़ गये। इसलिये तुम्हारी हथेलीमें रोम नहीं हैं। बादशाहने कहा कि वजीर तुम्हारे भी तो हथेलीमें रोम नहीं हैं, इसका क्या है ? तो वजीर बोला कि महाराज, तुमने अपने हाथोंसे हमें इतना दान दिया कि लेते-लेते मेरी हथेलीके रोम झड़ गये। और दरबारमें इतने सब लोग बैठे हैं उनके क्यों नहीं हैं ? वजीर कहता है कि महाराज ! तुमने दिया, हमने लिया और बाकी लोग हाथ मलते रह गये। सो उनके हाथ मलते-मलते रोम झड़ गये। सो रोम तो झडे गे ही, देकर झडे लेकर झड़ें मलकर झडे। यह धन, यह वैभव, यह समागम चेतन और अचेतन सग सब बिछुडे गे। अब मर्जी तुम्हारी है कि इन सबका उपयोग धर्म कार्य में लगाओ और अपने इस अनित्य मिले हुये समागमसे अविनाशी लाभ प्राप्त करो।

आत्माका अकर्तृत्व स्वभाव-- भैया ! इस जीवका करने का स्वभाव नहीं है। यह अज्ञानमें अपनेको करने वाला मानता है। जो अपने को करने वाला मानेगा उसे पद पद पर दुःखी होना पड़ता है। अभी यहीं देख लो, किसी ने कुछ बडा काम कर दिया, मन्दिर बना दिया या और काम कर दिया और वह अपने मुंहसे यह कहे कि मैंने समाजके उपकारके लिये यह मन्दिर बनाया है, तो फिर उसकी इज्जत लोकमें नहीं रहती। इतना किया भी और अपने मुंहसे अपने कर्तव्य करने की बात कह देनेसे वह न किया सा हो गया। तो करनेकी बात अपने मुंहसे कहनेसे भी जब इज्जत घटती है, शरम दिलाती है तो का अभिप्राय मनमें हो तो वह कितना बन्धन करायेगा ? यह रोग जगतके प्राणियोंको लगा है और इससे वे बेचैन हो रहे हैं। मुझे करना है, यह काम पड़ा है, मैं ही करू तो होगा। अरे होना होगा तो तुम करो तो, न करो तो कोई निमित्त होगा तो होगा। और मानते हुये भी हो गया

कुछ विकल्पोंके अनुसार तो तुमने कौनसा लाभ लूट लिया हो गया तुम्हारे विकल्पों के अनुसार 'महल' खड़ा या लाखोंका धन जोड़ा तो इतने पर भी तुमने कौन सा लाभ लूट लिया ? केवल विकल्प ही विकल्प किये जा रहे हैं।

आत्माका अभोक्तृत्व स्वभाव.--आत्माका कर्तापन स्वभाव नहीं है ऐसे ही इसके भोगनेका स्वभाव नहीं है। यह जीव किसी भी पर-पदार्थको नहीं भोग सकता, केवल अपना विकल्प बनाया करता है, और परमार्थसे अपने विकल्पोंको भी नहीं भोगता। कार्योंकी जोरावरी से विकल्प करने पड़ते हैं और दु:खी होना पड़ता है। और समान्यतया यह जानो कि हम प्राय: सदा ही अपना ही सुख भोगा करते हैं, किन्तु अज्ञानी कोई मानले कि मैंने अमुक पदार्थका सुख भोगा तो पराधीनता उसे लग जायगी। भोगना है सदा अपना ही सुख, पर मानता है कि मुझे अमुकसे सुख मिला, तो उसकी परतन्त्रता हो जायगी।

परके भोगने के भ्रमका एक दृष्टान्त---एक गांवमें तीन भाई थे, सो आज जैसा ही समझ लो विकट समय आ गयी, और परिस्थिति भी बिगड़ गयी, निर्धन हो गये। खाने पीनेका भी कुछ सिलसिला न रहा तो सोचा कि चलो मौसीके यहां चलें, १०-२० दिन रहें, वहां अच्छी तरहसे दिन कटेंगे। तो वे तीनों भाई गये मौसीके पास। मौसी कहो या मासी कहो एक बात है। जो मा सरीखी हो मौसी होती है। मांकी जो बहिन है वह मां तुल्य है। सो गये मौसीके यहां। मेल मिलाप हुआ। मौसी बोली--बेटा क्या खावोगे ? वे कहते हैं--तो मौसी जी, जो तुम बनावोगी सो खायेंगे। तो मौसी ने कहा--अच्छा जावो तुम लोग नहावो धोवो, मन्दिर जावो, पूजा, ध्यान, जाप कर लो, इतने में खाना तैयार मिलेगा। सो जैसी पुरानी पद्धति है कि तालाबमें नहाने जायेंगे तो सब कपड़े उतार देंगे। एक धोती पहिनेंगे और एक धोती ले ली जायगी बदलनेके लिये और नहा धोकर फिर सीधे मन्दिर जायेंगे। सो गये वो। नहाने धोनेमें १।। घण्टा लग गया और मन्दिरमें १।। घण्टा लग गया। तीन घण्टेमें मौसीने झट क्या किया कि इन तीनों भाइयोंके कपड़े एक बनियेके यहां गिरवी रख दिये और ५० रुपये ले लिये। सब सामान खरीद लिया और झट हलुआ पूड़ी तैयार कर लिया।

अब वे मन्दिरसे सीधे आये। पहुंच गये खाने। खाते जायें हलुआ पूड़ी, खीर और आपसमें बातें करते जायें। (हमारे समझसे हलुवा पूड़ी कुछ अच्छी चीज नहीं हैं। मगर जिनकी जीभ लगी है स्वादमें, उनके लिए यह चीज ठीक है) खैर खाते जायें और आपसमें बातें करते जायें,

देखो यह कितना बढ़िया भोजन मौसीने बनाया ? और मौसी कहती जाये—बेटा खाते जाओ तुम्हारा ही तो माल है। अब वे तीनों भाई भी समझते कि खिलाने वाले तो यों कहते ही हैं। अभी तुमसे ही पूछे कि यह अमुक घर किसका है ? तो आप कहोगे कि आपका ही है और इसी समय लिखकर दस्तखत करा ले तो ? (हँसी) ऐसा ही समझा उन भाइयों ने। जब भोजन कर चुके और कपड़े पहिनने गये तो कपड़े न मिले। कहा मौसी कपड़े कहां गये ? तो मौसी बोली बेटा ! हमने कहा था कि, खाते जाओ तुम्हारा ही तो माल है। सो इसका मतलब ? बनियेके यहां गिरवी रख दिये हैं। उनसे ही सामान मोल लाकर बनाया और खिलाया है।

अपना ही आनन्द भोगते हुए परका भ्रम करनेका फल—भैया ! अब जो जैसा बना, जो कुछ हुआ सो ठीक है, पर यहां यह बात विचारो कि जैसे वे भाई अपनी ही चीज तो खा रहे थे और भ्रमसे मौसीका खा रहे हैं ऐसा जानकर मस्त हो रहे थे। सो पीछे दुःख उन्होंने ही भोगा ? इसी तरह जगतके सब जीव भोगते तो हैं अपना आनन्द स्वरूप, क्योंकि जीवका ज्ञानकी तरह आनन्द स्वरूप है। किन्तु अज्ञानी मानता है कि मुझे भोजनसे सुख हुआ, मुझे स्त्री पुत्रोंसे सुख हुआ अथवा रूप देखनेका सुख हुआ, राग करनेका सुख हुआ, लोगोंने प्रशंसा की, अभिनन्दन पत्र दिया, स्वागत किया, इन लोगोंने बड़ा सुख दिया, इस तरह जो परपदार्थोंसे सुख होना मानते हैं और उसही सुखमें मस्त होते हैं उनको अन्तमें बुरी हार खानी पड़ती है क्योंकि सदा प्रशंसा करने वाले मिलेंगे नहीं। किसीकी दसों-प्रशंसा करते हैं तो उसकी ५० निन्दा करने वाले भी होते हैं। तो निन्दा सुनकर बड़ा दुःख ही होगा। प्रशंसाकी बात नहीं मिलती तो निन्दामें दुःख नहीं होता।

अज्ञानमें व्यर्थका विसवाद—जो परपदार्थोंसे अपना सुख मानते हैं वे दुःखी होते हैं। इस कारण अपना स्वरूप सम्भालिए। मैं स्वयं ज्ञानानन्द-मय हूं। जो जानन होता है वह भी मुझमें से प्रकट होता है और जो आनन्द होता है वह भी मुझमें से प्रकट होता है। बाहरसे नहीं प्रकट होता है। किन्तु जैसे कुत्ता कहींसे हड्डी पाये तो उस हड्डीको मुंहमें दबाकर एकांतमें ले जायेगा और वहां उस हड्डीको खूब खुतरेगा। सो हड्डीके खुतरनेमें उसके मुखमें से खून निकल आता है, उस खूनका उसे स्वाद आता है। सो खा तो रहा है वह अपना ही खून, किन्तु मान रहा है कि यह खून इस हड्डीसे निकल रहा है। दूसरा कुत्ता दिख जाय तो वह गुर्राता है। कहीं मेरे आनन्दकी चीज यह छुडा न ले। इसी तरह जगतमें यह विवाद उठ रहा है। भोग तो रहे हैं सब अपना ही आनन्द, पर कल्पनामें

यह आ गया कि मुझे तो इस धनसे आनन्द आ रहा है, इसमें मलसे आनन्द आ रहा है। सो दूसरे लोग इसे न छुड़ा लें बल्कि दूसरे लोगोंसे हम छुड़ा ले, इस भावसे विवाद होता है, कलह होती है।

उत्कृष्ट आशय होनेपर भी जघन्य परिणमन—भैया ! इस प्रसंगमें आप यह प्रश्न कर सकते हैं तो फिर हम क्या करें—जायदाद न संभालें, उद्यम न करें, धन न कमायें ? भाई, ये सब बाते आपके विकल्पोंसे नहीं होतीं। ये तो पुण्योदयका और बाह्य समागमोंका निमित्तनैमित्तिक योग होगा तो होता है। आपके विकल्पोंसे कमायी नहीं होती है। करते हुए भी यथार्थ श्रद्धा रखना है कि मैं इन सबका करने वाला नहीं हूं, क्या ऐसा होता नहीं है कि जो कर रहे हों वैसा आशय न हो ? हम आपको दो चार दृष्टान्त दें तब आपकी समझमें आयेगा कि जो करते हैं सो ही भाव हो ऐसा नहीं है। भावमें ऊंची बात हो और करना पड़ता है नीची बात।

जघन्यपरिणमनमें भी ज्ञानके सत् आशयके प्रदर्शक दृष्टान्त—देखो एक मोटासा दृष्टान्त ले लो। विवाह होनेके बाद दसों बार लड़की ससुराल हो आई, बीसों बार हो आयी, ५० वर्षके करीब हो गई, पर जब भी स्वसुराल जायेगी तो रो करके जायेगी और ऐसा रोवेगी कि सुनने वालों को दया आ जाय। पर उसके मनमे दु.ख है क्या ? खुशी खुशी जा रही है और रो भी रही है, मनमें आशय तो हर्षका है। और कहो देर हो जाय, न लिवा जाय तो खबर पहुचाती है अपने लड़कोंको कि जल्दी आना सो लिवा ले जाना, पर जाते समय रोती जरूर है। तो भाव तो है हर्षका और करतूत है रोने की। ऐसे ही ज्ञानी जीवके भाव तो रहता है ज्ञानका, अकर्तृत्वका कुछ कर ही नहीं सकता, ज्ञान करना, इतना ही हमारा पुरुषार्थ है, पर करना पड़ता है, मन, वचन, कायको लगाना पड़ रहा है, परतु भावोंकी यथार्थ बात बसी है।

ज्ञानी गृहस्थकी वृत्तिका दृष्टान्त--मुनीम लोग सेठकी दुकान पर लोगोंसे खूब बाते करते हैं, कोई खाता वाला आ जाय तो उसको मुनीम कहता है देखो जी हमसे तुम इतना ले गये, हमारा तुम पर इतना बाकी है, सब बातें मुनीम जी कर रहे हैं। क्या हू--बहू ये ही बातें सत्य हैं कि मुनीम जी को ही मिलना है, मुनीम जी का ही बाकी है ? वह कहता तो सब कुछ है, पर अन्तरसे उसे विश्वास बना है कि आना जाना मेरा कुछ नहीं है। यह तो सब सेठ जी का है। तो इसी तरह ज्ञानी गृहस्थ भी घर में रहकर सारी क्रियाए करते हैं और अपना अपना बोलते भी है, पर यह व्यवहारकी भाषा है। यों कहते हैं, पर आशयमें बात यथार्थ बसी हुई है।

शान्ति यथार्थ विश्वासकी अनुगामिनी--भैया ! जो जीव अपनेको

मयसे न्यारा समझ सकता है उसकी तो यहा विजय है और जो परमें घुलमिल कर रहना चाहता है उसको नियमसे क्लेश है। ऐसा निर्णय करके विरक्त चित रहकर परक प्रसगमें रहा करें। अपनी विवेक बुद्धि त्यागकर परमें आसक्त होनेका फल आकुलता ही है। जहा रहते हैं ठीक है, जो आसानीसे बन गया ठीक है। किन्तु हठका होना, आसक्तिका होना एक भी बात न मानना, इन सब अज्ञानकी कल्पनावोंसे केवल क्लेश ही क्लेश रहेंगे। इसलिए एक निर्णय रखो कि जगतमें मेरा एक तृण भी नहीं है, एक परमाणु भी नहीं है। गृहस्थीमें रहकर सब करना पड़ता है पर विश्वास यथार्थ होगा तो शाति फिर भी साथ रहेगी और विश्वास भी गलत हो गया तो शाति साथ न रहेगी।

आत्मद्रव्यकी शुद्धता—जीव तो चेतनास्वरूप है, किन्तु वर्तमानमें कर्म उपाधिके सम्बन्धवश ससारी पर्यायमें चल रहा है। गतियोंमें जन्म लेता, मरता और दुःख भोगता है। इस जीवको जब ससारी पर्यायकी अपेक्षासे देखें अथवा उसके अशुद्ध उपादानकी दृष्टिसे देखें तो जीव कर्ता है, भोक्ता है, उसके बंध भी है और उसी पर्याय, उसी अशुद्ध उपादान प्रभावका मुकाबिला करके शुद्धपरिणतिको देखें तो उसका मोक्ष भी है। सो ससारी पर्यायकी दृष्टिसे उसके कर देने आदि की कल्पनाए है, ऐसा परिणमन है किन्तु केवल जीवका स्वरूप देखें तो पारिणामिक परमभाव शुद्ध उपादानरूपसे यह शुद्ध ही है। इन सब परिणामोंसे रहित है।

स्वरूपदृष्टिसे सम्बन्धित एक दृष्टान्त—जैसे एक तोला भर कोई सोने की चीज लाये और उसमें दो आने तो खोट है और १४ आने ठीक स्वर्ण था। अब उसमें १४ आने स्वर्ण एक जगह धरा हो और दो आने खोट एक जगह रखा हो, ऐसा नहीं है। पूराका पूरा तोला भर डेलामें विस्तृत है। उस सोनेको जब अशुद्ध उपादानकी दृष्टिसे देखा तो उस सोने को निखालिस कहा जायेगा और ज्यादा खोटा अगर हुआ, मानो १२ आने सोना हो और चार आने खोट हो तो पारखी लोग उसे सोना ही नहीं कहते। कहते हैं कि यह सोना नहीं है, हटावो। यद्यपि वह सोना है मगर शुद्ध स्वर्ण पर उनकी दृष्टि है, इसलिए उस सोनेको सोना नहीं कहा। जो शुद्ध स्वर्ण हो उसे वे सोना मानते हैं। तो उस स्वर्णको एक तोला डलीमें जिसमें कि १२ आने सोना है और चार आने खोट है, उसमें भी मल पर दृष्टि न दें और केवल स्वर्ण पर दृष्टि दे तो वहा भी यह दिखता है कि इसमें १२ आने पक्का सोना है। जब भाव किया जाता है तो उस समस्त पिण्ड पर दृष्टि होनेसे उसे एक तोला मानकर और उसका भाव कम बोला जाता है कि भाई १८० रु० तोला देंगे। और जब मलकी अपेक्षा नहीं

रखते और उस तोले भरमें बोलते हैं कि इसमें १२ आने स्वर्ण है सो उस १२ आने स्वर्णके आप १४० रु० तोलाके दाम ले सकते हैं। तो दृष्टिकी ही तो बात है।

आत्मत्वका सामान्यदृष्टिसे परिचय—इसी तरह यह जीव ससारी पर्यायमे रागी है, कर्ता है, भोक्ता है, बंधा हुआ है, छूटा हुआ है, सारी बातें इसमें अशुद्ध हो रही हैं, पर इस अशुद्ध होते हुए जीवमें केवल जीवका स्वभाव विचारो, जैसा यह जीव दिख जाय तो वह जीव प्रभु की ही तरह शुद्ध ज्ञानस्वरूप है। जैसे उस तोला भर सोने में केवल स्वर्णकी ही दृष्टि की जाय तो जितना स्वर्ण जाना है उतना ही पूरा पक्का सही है। इसी प्रकार इस जीव स्वरूपमें जो जीव जानता है चेतनमात्र ज्ञानस्वरूप, सो उसमें क्या अन्तर है ? अन्तर तो होता है बाहरी परिस्थितियोंसे। कोई प्रीतिभोज करे तो उस पंगतमें, जैसे मानो जैन समाज का प्रीतिभोज है, तो चाहे रईस हो, चाहे गरीब हो, जैनत्व दृष्टिसे सब एक सामान्यरूप हैं। अब उसमें कोई परोसने वाला पक्ष करे कि धनियों को जरा ज्यादा ध्यान दे और गरीबोंको यों ही छोड़ता जाय तो यह परोसने वालेकी बेईमानी हुई है तो अब उसके विशेष पर दृष्टि पहुची है तब आकुलता होती है। जब सामान्य पर दृष्टि रहती है तब आकुलता नहीं रहती है।

अज्ञानचेष्टाकी एक विडम्बना—एक पगतमें परोसने वाला आदमी अपनी छोटी अगुलीमें ६-७ हजारके हीरेकी जड़ित मुदरी पहिने हुये था। व्यवस्था कर रहा था, यहां परोसो, वहा परोसो। हीरा जड़ित अपनी मुदरी दिखाने के लिए इधर उधर हाथ करके कहता, इधर परोसो, उधर परोसो। सो एक वहां कोई चतुर निकल आया, वह अपने गलेमें एक हार हीराजड़ित पहिने हुये था, सो उसने हारको हाथसे पकड़कर कहा—चल भैया ! यहासे, यहा कुछ न चाहिए। जो परोसने वाला था उसे लोगों ने शरमिन्दा किया। वह अपनी हीरा जड़ित मुदरी दिखाना चहाता था। उसने दिखा दिया उससे ५० गुना अपना हार। जब कोई विशेष दृष्टि होती है और किसी भी कार्यके उद्देश्यके खिलाफ दृष्टि होती है तो वहा चैन नहीं होती है।

आत्माकी मात्रनिज स्वरूपमयता—इस आत्माको यदि अपने सही रूप में देखें तो इसका क्या दिखना है ? कुछ भी नहीं। आप घरसे आये हैं, यह बैठे हैं, घर चिपक कर नहीं आया, परिवार बधकर नहीं आया। धन वैभव लिपटकर नहीं आया। और कदाचित् आया भी हो, कोई धन ले आया हो साथमें, तो भी धनमें धन है, शरीरमे शरीर है, आत्मामें आत्मा

है। आत्मा तो शरीरसे भिन्न अब भी है, तो इस आत्माको जैसा है तैसा निहारें तो एक संकट नहीं है। संकट तो लोग कल्पना करके बनाते हैं अन्यथा संकट एक नहीं है। हजारसे लाख हो गये तो अब लाखसे भी संतोष नहीं किया जा सकता। वह सोचेगा मैं तो बहुत गरीब हूं, इतने से तो कुछ भी नहीं होता। अरे तो जिनके पास धन बहुत गया वह कोई भगवान तो नहीं हो गया। वह तो हम आपसे भी अधिक मलिन पुरुष हो सकता है।

ज्ञानसे संतोषकी साधकता—भैया! फिर समझ लीजिए कि संतोष बिना इस जीवको सुख हो ही नहीं सकता। अपने से बड़े बड़े धनिकों को देखो तो अन्तरमें तृष्णा उमड़ती है और अपने से गरीबकी ओर दृष्टि करके देखो तो संतोष उत्पन्न होता है। और ज्ञानी पुरुष तो सबका ज्ञाता रहता है। उसे न तृष्णा उत्पन्न होती है और न उसे अपनी परिस्थिति पर संतोष होता है। वह तो यह भावना रखता है कि हे प्रभो, यह विकल्प संकट मुझसे कब दूर हों? इस विकल्पमें ही क्लेश भरे हुए हैं। और हैं क्या?

ग्रहकालकी विपदाका एक दृष्टान्त—एक बालक बचपनसे ही एक संन्यासीके पास जंगलमें पढ़ता था। जब २० वर्षका हो गया तो उस शिष्यने कहा कि मुझे थोड़ी इजाजत दीजिए तो मैं तीर्थयात्रा कर आऊं। सन्यासी बोला—बेटा! कहा तीर्थयात्रा है? आत्माका जो शुद्ध स्वरूप है उसकी दृष्टि रहे वही वास्तवमें तीर्थयात्रा है। कहा भटकते हो? वहा जावोगे तो सुख दो मिनटको मिलेगा जब तीर्थ पहुचोगे। उसके पहिले महीनोंसे विकल्प करना पड़ेगा। कहां जाते हो? अपने आत्माके पास रहो, यही वास्तविक तीर्थ है। कहा, नहीं गुरुजी, अब तो हमारा यात्रा करनेका मन है ही। सन्यासीने कहा—जावो बेटा! यदि नहीं मानते हो तो तीर्थयात्रा कर आओ। जब वह तीर्थयात्रा करने चला तो रास्तेमें एक बारात आ रही थी, वह उसे देखने लगा। वह नहीं जानता था कि यह क्या चीज है? लोगोंसे पूछा—भैया! यह क्या बात है? इतने झमेले से तुम लोग क्यों आये? कहा कि यह बारात है। बारात क्या चीज? इसमें एक एक दूल्हा होता है, सो उसकी शादी होती है। शादी क्या चीज? स्त्री घरमें आती है। 'सो इससे क्या मतलब?' बच्चे होते हैं, घर भरता है, [illegible]नी बात सुनकर आगे वह बढ़ गया। थक गया। थक करके एक कुवें [illegible]पो गया। कुवा कैसा था? सपाट। जब उस पर सो गया तो उसे [illegible]आने लगा कि हम पड़े हैं, हमारी स्त्री पासमें है, क्योंकि सुन लिया [illegible]त का किस्सा। बीचमें एक लड़का पड़ा है। स्त्री कहती है सरको

जरा सा, तुम्हें दया नहीं आती, लड़का पिचा जा रहा है। सो स्वप्न ऐसा बुरा होता है कि होती तो कल्पना है और शरीरसे चेष्टा करली जाती है। सो जरा सरक गया, और सरको जरा, बच्चेको तकलीफ है। दूसरी बार जब सरकनेको कहा तो और सरक गया व कुवामें जाकर गिर गया अब वह कुवेंमें पड़ा हुआ सोच रहा है कि गुरु जी ने सच ही कहा था कि आत्माके ही पासमें रहो, इतनी थोड़ी देरमें एक आया जमींदार पानी भरने। उसने लोटा डोर कुवेंमें लटकाया पानी भरनेको। सो उसने डोर पकड़ ली। अब वह जमींदार डरने लगा कि भूत है क्या? वह बोला—भाई हम भूत नहीं हैं, हम कुवेमें गिर गये हैं, हमें कुवेंसे निकाल लो। निकाल लिया जमींदारने उससे परिचय पूछा तो गिरने वाला बोलता है कि महाशय जी आपने बड़ा उपकार किया है, इसलिए कृपा करके आप ही पहिले अपना परिचय दीजिए। जमींदार बोला कि मैं १० गांवका जमींदार हूं। ५० जोड़ी बैलसे खेती करते हैं। ७–८ लड़के हैं, २०–२५ पोते हैं, बड़ा मकान है, हमारा परिचय तुम क्या पूछते हो तो वह गिरने वाला शिष्य उस आदमीके कभी पैरकी तरफ देखे, कभी सिरकी तरफ। सो जमींदार ने पूछा कि क्यों देखते हो हमारे सारे शरीर को? क्या मैं बीमार हू, जो तुम डाक्टरी करनेके लिए देख रहे हो? वह बोला कि हम और कुछ नहीं देखते हैं—सिर्फ यह देख रहे हैं कि हमने तो केवल स्वप्नमें ही जरा सी गृहस्थी पायी तो कुवेंमें गिर गए, और तुम सचमुच की गृहस्थीमें रहते हो तब भी जिन्दा हो?

वास्तविक जीवन--भैया! अगर जिन्दाका अर्थ यह लगाते हो कि शांतिसे रहते हैं तो जिन्दा कोई है ही नहीं। तृष्णा है, कर्तृत्व बुद्धि है, आसक्ति है, अपने स्वरूपकी खबर नहीं रहती है तो वहा तो जीवन नहीं है। तो जब यह जीव अपने स्वरूपकी दृष्टिसे चिगता है तो नाना कल्पनाएँ कर दु:खी होता है। मुझे दु:खी करने वाला अन्य कोई पुरुष नहीं है। हम ही स्वय अपनी कल्पनासे अपनेको सुखी दु:खी करते हैं। ईश्वरका स्वरूप तो ज्ञानानन्दमय है। उसमें तो विकल्पोंका भी अवकाश नहीं है। फिर करेंगे क्या हमारा या किसीका। प्रभु तो समस्त ज्ञेयको जानता है और अपने आनन्दरसमें लीन रहता है। ऐसा ही हम सब जीवोंका स्वरूप है, निर्विकल्प केवल ज्ञानमात्र, अकर्ता। अब इस ही आत्माके अकर्तास्वरूपको एक दृष्टांत द्वारा बतलाते हैं।

दवियं जं उप्पज्जइ गुणेहिं तं तेहिं जाणसु अणण्णं।
जह कडयादीहिं दु पज्जयेहिं कणयं अणण्णमिह॥३०८॥

पदार्थोंकी अनन्यता--इस प्रकरणको जाननेसे पहिले यह जान जाइए

कि जगतमें अनन्त पदार्थ हैं। अनन्त तो जीव हैं और उनसे भी अनन्त गुणे पुद्गल परमाणु हैं एक धर्मद्रव्य है—एक अधर्मद्रव्य है, एक आकाश द्रव्य है और असंख्यात कालद्रव्य हैं। एक चीज उतनी कहलाती है जितनेका दूसरा हिस्सा नहीं होता है। एकके दो टुकडे नहीं हुआ करते। अगर दो टुकडे हो जाएँ तो समझलो कि वह एक नहीं था, वे अनन्त परमाणुके थे सो बिखर गए। जैसे कोई कपड़ा फट गया, दो टूक हो गए, तो समझलो कि वह एक चीज न थी, जितने धागे हैं उतनी चीजें हैं। उन धागोंको न्यारा-न्यारा कर सकते हो और एक धागे को भी तोड़कर टूकफर दें तो समझ सकते हो कि वह धागा भी एक चीज नहीं है। उसमें कितने ही स्कंध मिले हैं, सो उनको बिखेर दिया।

एकका परिमाण—एक चीजके दो टूक नहीं होते। जैसे एक रुपयेके दो हिस्से हो जाते हैं, आधा रुपया इसने ले लिया, आधा रुपया तुमको दे दिया, तो वह रुपया एक चीज नहीं है। वह तो १०० पैसोंका समूह है। अब एक नया पैसासे कम यदि कुछ दाम नहीं होता तो उस नया पैसाका आधा नहीं हो सकता। पर नये पैसेसे नीचे भी तो कुछ दाम हैं। आज उनकी प्रसिद्धि हो या नहीं, उनको छदाम, दमड़ी बोला जाता था—उसे चाहे दे ले न सकें, मगर हिसाबमें तो आधा नया पैसा आ सकता है। चाहे लेने देनेमें न आए, पर हिसाब लगा लिया जाता है कि हम तुम दोनोंके बीचमें ३ नये पैसेका लाभ हुआ, सो १॥ नये पैसे हमारे हुए और १॥ नये पैसे तुम्हारे हुए। तो मालूम होता है कि नये पैसे का भी हिस्सा हो सकता है। जिसका दूसरा हिस्सा न हो वह है एक यूनिट।

प्रत्येक द्रव्यकी अखण्डता—एकका विभाग नहीं हो सकता, यदि इस लक्षणको देखें तो जीव पूराका पूरा द्रव्य है। जीवका कोई आधा हिस्सा नहीं होता कि आधा जीव छत पर बैठ जाय और आधा जीव यहां सुनने आ जाय, या आधा मर जाये, आधा जिन्दा बना रहे। जैसे छिपकली लड़ती हैं तो उनकी पूछें कट जाय तो कुछ देर तक पूछ भी हिलती और दस बीस हाथ दूर पर पड़ा हुआ धड़ भी बेचैन होता रहता है। पर ऐसा नहीं समझना कि कुछ जीव छिपकलीके शरीरमें रह गया और कुछ जीव पूछमें रह गया। जीव अखण्ड है, उसके खण्ड खण्ड नहीं होते हैं। उस छिपकलीके धड़से लेकर पूछ तक जीव फैल जाता है और जहां प्राणोंका स्थान होता है वहां वह जीव सिकुड़ जाता है। जीव अखण्ड है जीवके कभी दो टूक नहीं होते। ऐसे-ऐसे जीव अनन्त हैं। इसी तरह यहां जो कुछ दिखते हैं ये सब स्कंध हैं और इन स्कंधोंके हजार टूक हो सकते हैं। तो यह स्कंध एक चीज नहीं है। इनमें जो अविभाज्य हो परमाणु वह

एक चीज है। परमाणुके दो हिस्से नहीं किए जा सकते हैं। ऐसा एक एक परमाणु एक-एक द्रव्य है। वे अनन्त हैं।

परिणमनोकी परिणमयितासे अभिन्नताकी नजर--भैया! इन सब द्रव्योंमें प्रत्येक द्रव्य अपने अपने अनन्त गुणोंके पिण्ड हैं और प्रतिसमय कुछ न कुछ अपना परिणमन बनाए हुए हैं। यह बात सब द्रव्योंमें मिलेगी। जीव अनन्तगुणोंका पुञ्ज है और वे उन समस्त अनन्त गुणोंके परिणमन हैं। इस तरह प्रत्येक द्रव्यमें जो अवस्था होती है उसका नाम तो पर्याय है और अवस्था होने की जो शक्ति है उसका नाम गुण है और उन सब गुणोंका जो अभेदरूप एक चीज है उसका नाम द्रव्य है। यहा बतला रहे हैं कि द्रव्य जो कुछ भी उत्पन्न होता वह अपने उन गुणोंसे अभिन्नस्वरूपी रहता है, भिन्न नहीं हो जाता।

परिणमयितासे परिणमनकी अभिन्नतापर एक दृष्टान्त—जैसे स्वर्ण कटक आदि पर्यायों रूपसे होता है तो सब पर्यायों में यह स्वर्ण और गुणोंसे अभिन्न ही रहता है। स्वर्णकी डली है। इस समय डलीके रूपमें है और उसका यदि कुण्डल बना दिया, तो कुण्डलके ही रूपमें पूरा सोना हो गया। कुण्डल अलग हो, सोना अलग हो ऐसा नहीं हो सकता। फिर भी सोनामें ही सोना है, कुण्डलमें कुण्डल है और अलग भी नहीं कर सकते और एक भी नहीं। जो सोना है वह कुण्डल नहीं, जो कुण्डल है सोई सोना नहीं, फिर भी कुण्डलसे अलग सोना नहीं। परखनेकी बात है। जो परिणमन है, जो मिट जाता है वह पर्याय है और जो समस्त पर्यायोंमे अन्वयरूपसे व्यापक रहता है वह द्रव्य है। तो जैसे स्वर्ण कटक केसर कुण्डल आदि पर्यायोंसे अभिन्न रहते हैं, इसी प्रकार प्रत्येक द्रव्य जिन जिन पर्यायोंसे परिणमते हैं उन-उन सब पर्यायोंमें अपने अपने गुणोंसे अभिन्न रहते है।

परिणमनकी परिणमयितासे अभिन्नताके अवगमसे परकी परमे अकर्तृताकी सिद्धि—इसका अर्थ क्या निकलेगा कि जब प्रत्येक पदार्थ अपने गुणोंसे अभिन्न है तो हम भी अपने गुणोंसे अभिन्न हैं। फिर हम दूसरेका क्या करेंगे। दूसरे मेरा क्या करेंगे? जब कोई किसीके घर गुजर जाता है ना, तो उसके घर पर रिश्तेदार लोग आते हैं शोक प्रदर्शित करने के लिए, फेरा करनेके लिए। फेरा कहते हैं। उस घरमें जाय और फिर आ जाय, फौरन वापिस आए उसका नाम फेरी है। और समय जाकर तो कई दिनों रह भी सकता है पर मरने वालेके घरमें जाय तो आना पड़ता है। तो फैरा करने जाते हैं। सो खुद रोते हैं और दूसरोंको रुलाते है। तो वहां इस रिश्तेदारने दूसरेको नहीं रुलाया, यह रिश्तेदार खुद अपने

दुःखकी कल्पना बनाकर रोने लगा और वह अपनी कल्पना बनाकर रोने लगा। और कहो ऐसा हो जाय कि रिश्तेदार बिल्कुल ही न रोता हो, थोडा पानी वगैरह लगा लिया, या किसी तरहसे आसू निकल आए। न दुखी हो। तो कोई किसीको न रुलाता है, न हंसाता है। मानलो कोई दूर से आए हैं तो रेलमें कहो तास खेलते आए हों और हँसते हुए तागे वाले से बातें करते हुए आए हों, और जब पड़ौसमें आए तो रोना शुरू कर दिया।

वस्तुस्वातन्त्र्यपरिचयसे दिगवगम—भैया! कोई किसीके दुःखमें अपना सम्वेदन कर सकता हो, यह गलत बात है। लड़केके बुखारको देखकर बापके भी सिरदर्द हो जाय तो लड़केके बुखारके कारण सिर दर्द नहीं हुआ। बापने अपना नया दुःख और बनाया। कल्पना करके वह भी दुखी हो गया और वह भी दर्दमे पड़ गया। कोई किसीके दुःख सुखको करनेमें समर्थ नहीं है। तो जैसे स्वर्णकी पर्यायें स्वर्णसे भिन्न हैं, स्वर्णके गुणसे अभिन्न हैं, इसी प्रकार प्रत्येक द्रव्योंके परिणमन उन द्रव्योंसे अभिन्न हैं। फिर मैं किसमें क्या कर सकूँगा? कोई मुझमें क्या कर सकता है? हम और आप केवल कल्पना करके रह जाते हैं। इससे आगे कुछ नहीं किया करते हैं। सत्य बात तो यह है और यह किसी तरह समझमें आए तो समझो कि हम सच्चे जैन हैं, भगवानके भक्त हैं।

एकत्वके परिचयसे अर्थसिद्धि—जब यह ध्यानमें आए कि मैं आत्मा ज्ञानानन्द हू, केवलज्ञान विकल्प ही कर पाता हू। न दुकान करता हू, न घर चलाता हू, न पालन पोपण करता हू। ये सब स्वय होते हैं। इन पर हमारा अधिकार नहीं है। अपने ज्ञानका परिणमन करता हू। ऐसे अपने अकेलेपनका निर्णय हो तो समझो कि हमने जैन उपदेशका मर्म पाया और अब हम सच्चे मायनेमे प्रभुके पुजारी हुए। जब हम प्रभुको पूजते हैं उस समय भी हम इस प्रभुका कुछ नहीं करते हैं। यह तो अपनी जगह में है। यह मैं आत्मा अपनी जगहसे हटकर प्रभुमें क्या करूँगा? यहा भी प्रभुके गुणोंका स्मरण करके अपने गुणोंसे मिलान करके अपने गुणोंका परिणमन करके अपने को पूज रहे हैं। भगवानका हम क्या कर सकते हैं? सर्वत्र मैं केवल अपना ही परिणमन करता हू, यह दृष्टिमें आए तो आपने बड़ी सारभूत चीज प्राप्त की। तो इस सर्व विशुद्ध अधिकारमें इस आत्माके एकत्वस्वरूपका वर्णन चलेगा। धीरे धीरे सब विदित होगा। एक इस मर्मके जाननेपर ही आप सर्व कुछ जान सकेंगे।

परमार्थ और पर्याय—जैसे सोनेकी जो चीज बनती है वह सोनेमय ही होती हैं। सोनेकी कोई साकर है और उसे मिटाकर उसका कड़ा बना

दिया तो जब वह सांकर थी तब भी स्वर्णमय थी और जब वह कड़ा बना दिया तब भी स्वर्णमय है। स्वर्णकी अवस्था स्वर्णपनेको छोड़कर रह ही नहीं सकती। इसी प्रकार जीवमें जो परिणाम होते हैं वे जीवमय होते हैं और अजीवमें जो परिणाम होते हैं वे जीवके नहीं होते हैं। जीवका परमार्थ स्वरूप और है और अवस्थाका स्वरूप और है। जीवके स्वरूप का नाम है परमार्थ और जीवकी अवस्थाका नाम है माया। जिसे कहते हैं माया और ब्रह्म।

परमार्थ और पर्यायके स्वरूपावगमके लिए एक दृष्टान्त—जैसे पानी गरम कर दिया गया, तो गरमी पानीसे अलग नहीं है। पानी ही गरमी-मय हो गया है, फिर भी गरमीका स्वरूप और है, पानीका स्वरूप और है। गरमीका स्वरूप ही यदि पानीका स्वरूप हुआ हो तो सदा पानी गरम ही रहना चाहिए। सो ऐसा होता नहीं। इस तरह गरमी तो है एक माया रूप, अब है फिर नहीं है और जल है आधारभूत। यह सर्व विशुद्ध ज्ञान की बात चल रही है। अपने आपमें सहज अपने ही सत्वके कारण जो अपना स्वरूप है उसकी पहिचान बिना यह जीव नारक, तिर्यञ्च, मनुष्य देव, रागी द्वेषी पुरुष, इन नाना भावोंमें बसा हुआ है और इसे अपने उस सहज ज्ञानस्वरूपका परिचय हो जाय तो यह माया सिमिट जाती है और यह उपयोग फिर अपने उस ब्रह्म स्वरूपमें मग्न हो जाता है। यह ब्रह्म अन्यत्र नहीं है। आपका जो सहज स्वरूप है वही ब्रह्मरूप है।

मायाका निर्गमन—माया किसे कहते हैं ? मा या, जो मा के योग्य है, निषेधके योग्य है मत हो, वह है मा और जो या है, वह है मत अर्थात् जो यह है वह परमार्थ नहीं और जो परमार्थ है वह यह नहीं। लेकिन माया और परमार्थ जुदे जुदे घरमें रहने वाले नहीं हैं। परमार्थस्वरूपमें कालमें मायाका भेष धारण किया है और इसी तरह जब यह आत्मा माया के फंदोंसे छूटेगा तो यह ही जो आनन्दमय है वहीका वही प्रकट होगा। कोई नई चीज न होगी। जैसे वस्त्रमें मैल लगा है, साबुन पानीसे उसे धोते हैं तो धोने पर कोई नई चीज नहीं बन गयी। जो चीज है वही मिलेगी। कोई नया वस्त्र नहीं हो जायेगा। उसमें कहींसे नई सफेदी न आ जायेगी। जो इसके अन्दरमें है सफेदी वह व्यक्त हो जायेगी।

टङ्कोत्कीर्णवत् निश्चलताका दृष्टान्त—जैसे एक पाषाणमें मूर्ति बनाना है। बहुत बड़ा पाषाण लाये, कारीगरसे कहा देखो इस प्रकारकी ऋषभदेव की मूर्ति बनावो। कारीगरने चित्र देखा दूसरी जगह जहां ऋषभदेवकी मूर्ति थी दिखा लाए। ऐसी बनाना है। तो उस पत्थरको देखकर कारीगर कहता है कि हां बन जायेगी मूर्ति। कारीगर ने उस पत्थरमें अभीसे मूर्ति

देख रखी है। जो उस पत्थरके बहुत बीचमे है। यदि कारीगरने मूर्ति न देख रखी हो तो उसका हाथ ही न चल सके। कहा छेनी चलायेगा, बीचमें ही पटक देगा तो मूर्ति तो न बन सकेगी। वह सभाल-सभाल कर अगल बगलके मोटे पत्थर निकालने के लिए धीरेसे हाथ क्यों चलाता है यों कि उस कारीगरने उस पत्थरमें वह मूर्ति देख रखी है, जो मूर्ति और लोगोंको बड़ी मुश्किलसे देखनेको मिलेगी। तब फिर वह क्या करता है? क्या कारीगर मूर्ति बनाता है? कहींसे कोई चीज उसमें लगाता है क्या? जोड़ता है क्या? अरे नहीं, वह मूर्ति जो दिख चुकी है, जो उसके अन्दर है उसके रोकने वाले अगल बगलके पत्थर लगे हैं उन पत्थरोंको छेनीसे हटाता है।

आवरणनिवारणपद्धति—भैया! जरा छेनीसे उन अवयवोंको हटाने की भी पद्धति देखो। पहिले बहुत बड़ी सावधानी नहीं रखना। कुछ तो रखता हैं। बड़ी छेनी बड़ा हथौड़ा मारता है। निकालना है पत्थरको। थोड़ा जब कुछ रूपकसा बन जाता है तब उसने छोटी छेनी ली, और छोटी हथौड़ी लिया और सावधानीसे पत्थरको निकालता है। जब उस मूर्तिका रूपक सामने आ जाता है तब उसके साधारण दोष मिटानेके लिए बहुत हल्की छेनी लेते हैं और बहुत हल्की हथौड़ी लेते हैं। जैसे प्लास्टिकके फौन्टिनपैनों पर नाम खोदने वाले बहुत पतली हथौड़ी और बहुत पतली छेनी रखते हैं। काम कराने वाले हैरान हो जाते हैं। क्या किया, आज तो काम कुछ भी नहीं किया। कुछ सावधानीके साथ अत्यन्त सूक्ष्म छेनी और हथौड़ी से आवरणोंको हटाते हैं। हो चुके उसके तीन प्रयोग जो मूर्ति उस पत्थरमें थी वह निकल आयी, प्रकट हो गई, लोगों को दिखने लगी।

प्रथम विभक्तीकरण — इसी तरह हम और आपका प्रभु, ये सब मूर्तिमान प्रभु बैठे हैं। हम आप सबके अन्दर वह परमात्मतत्त्व स्वय बसा हुआ है। अपनेको सतुष्टि, मुक्ति परमात्मस्वरूप पाने के लिए नया काम नहीं करना है, कहींसे चीज नहीं जोड़ना है। गृहस्थावस्थामें ये बाह्य आलम्बन किया करते हैं, पर यह आलम्बन भी काम नहीं देता है। यहा कोई नई चीज नहीं जोड़ना है किन्तु बना बनाया यह घट घटमें बसा हुआ प्रभु जिन विषय और कषायोंके परिणामसे ढका हुआ है वे विषय कषाय के परिणाम ज्ञानकी छेनीसे, ज्ञानकी हथौड़ीसे ज्ञानकी चोटसे, ज्ञानमय यह पुरुष जब वहां विभाग करता है तो देखो पहिले तो ये अपने बाह्य आवरणोंको दूर करते हैं, धन वैभव को ही नहीं, ये जड़ पदार्थ तो अत्यन्त भिन्न हैं, इनसे तो मैं न्यारा हू ही, और इस शरीरसे भी मैं न्यारा हू।

तो पहिली चोट तो भिन्न-भिन्न इन बाह्य पदार्थों पर यह ज्ञानी करता है, इनसे मैं न्यारा हूं। देहातके लोगोंसे भी पूछ लो, वे भी बता देंगे कि शरीरसे जीव न्यारा है, मर जाता है तो शरीर यहीं पड़ा रहता है और जीव चला जाता है। सबसे पूछ लो—सभी बतायेंगे। तो यह पहिले आवरण हटाया जिसमें अधिक सावधानी नहीं करनी पड़ी।

द्वितीय विभक्तीकरण—अब दूसरा प्रयत्न देखो जिसमें कुछ विशेष सावधानी करनी पड़ी। इस आत्माके साथ सूक्ष्म शरीर लगा हुआ है, जो मरने पर जीवके साथ जाता है, जिसे तैजस और कार्माणशरीर कहते हैं। सर्व संसारी जीवोंके यह सूक्ष्मशरीर लिपटा हुआ है। अनादि कालसे ये लगे हैं, एक समयको भी अलग नहीं हो सकते। उन सूक्ष्म शरीरोंसे भी न्यारा हू ऐसे कुछ पैने ज्ञान और छोटी हथौड़ीकी चोटसे बाह्य आवरणों को हटाया। मैं कर्मोंसे भी न्यारा हूं।

तृतीय विभक्तीकरण—अब तीसरी चोट बड़ी सावधानीसे ज्ञानी लगाता है कि मेरेमें जो विचार होते हैं, रागादिक भाव होते हैं उन सबसे मैं न्यारा हू, एक चिन्मात्र हू, ऐसा जहां तीसरी बारका यत्न हुआ और यह यत्न स्थिर रह सका तो जो प्रभु मौजूद है वही का वही प्रकट हो गया। कोई नई चीज नहीं निकलती।

जीवकी परभावसे विविक्तता—भैया! जीवका जितना परिणमन है वह सब जीवमय है और अजीवका जितना परिणमन है वह सब अजीवमय है। इस कारण जीवका अजीव कुछ नहीं करता, अजीवका जीव कुछ नहीं करता। सम्बन्ध बना हुआ है यह निमित्तनैमित्तिक भावके कारण सम्बन्ध बना हुआ है। जो यह भ्रम है कि मै हुक्म देता हू तब मेरे भाई या मेरे नौकर काम करते हैं, यह आपका सोचना बिलकुल भ्रम है। यदि उस मित्रका, उस भाईका काम करनेका परिणाम न बने तो वह नहीं कर सकता है। आप सोचते हो आपके सोचनेसे जैसा आप कहते हैं तैसा मान जाता है यह सोचना भूल है। बच्चेके मनमें अपना हित न जंचे तो बापकी बात नहीं मानता है। बाप भी बच्चेका कुछ नहीं करता है बापके आगे बच्चा थोड़ा हाथ जोड़ तो दे फिर तो उस बापको उस बच्चेका चाकर बनकर सेवा करनी पड़ती है। कोई किसी की बात नहीं मान सकता। सब अपने-अपने सुखके लिए कषाय परिणाम रखकर अपना अपना प्रवर्तन किया करते हैं।

निजभावके अनुसार प्रवृत्तियां—प्रत्येक जीव मात्र अपनी परिणतिसे परिणमता है, दूसरेकी परिणतिसे नहीं परिणमता है। इसके लिए क्या ज्यादा दृष्टान्त दे। अपने जीवनमें हजारों घटनाए ऐसी हुई होंगी कि

जिसे हम समझते हैं यह मेरा बहुत मित्र है, बहुत आज्ञाकारी है और कहो कभी उसके द्वारा बड़ा धोखा खा जाये। जिसे आप मानते हो कि यह हमारा बड़ा दुश्मन है कहो वही कभी मित्र बन जाय। तो जैसे जैसे अपना परिणाम बनता है वैसे ही वैसे अपनी प्रवृत्ति होती है।

अपना वैरी अपनी वैर कल्पना—एक राजा किसी शत्रु पर चढ़ाई करने जा रहा था। शत्रु भी अपनी जगहसे चढ़कर आ रहा था। रास्तेमें एक मुनि महाराज मिल गए, उनके दर्शन किये। दर्शन करके बैठ गया, उपदेश सुना। कानोंमें सेनाकी कुछ आवाज आई। राजा चौकन्ना होकर झट सम्हल कर बैठ गया। कुछ और निकट आए तो वीरासनमें बैठ गया। कुछ दिखने सा लगा तो तलवार पर हाथ लगाया, कुछ और निकट आया तो तलवार निकाली। मुनि कहते हैं कि राजन् यह क्या कर रहे हो? तो राजा बोला महाराज शत्रु ज्यों ज्यों निकट आते जाते हैं त्यों त्यों मेरा क्रोध उमड़ता जा रहा है। मैं उसका नाश करूँगा, ऐसा संकल्प कर रहा हू। मुनि बोले राजन् तुम बहुत ठीक काम कर रहे हो। ऐसा ही करना चाहिए। मगर एक शत्रु तो तुम्हारे अन्दर ही घुस गया, उसे जल्दी निकालो। उसका नाश करो। महाराज मेरे अन्दर कौन सा शत्रु घुस गया? महाराज बोले कि तुम्हारी जो दूसरे जीवको शत्रु मानने की कल्पना है वह कल्पना ही तुम्हारा शत्रु है और यह शत्रु तुम्हारे अन्दर घुस गया है। सोचा ओह सर्व जीवोंका एक स्वरूप है। कोई किसीका बिगाड़ नहीं करता, कोई किसीका वैरी नहीं है। सिर्फ कल्पनामें मान लिया है कि यह मेरा वैरी है। बस यह कल्पना ही मुझे दु ख दे रही है। अब तो उसके वैराग्य बढ़ा और वहीं साधु दीक्षा ले ली। अब तो समस्त शत्रु और राजा आ गए और सब चरणोंमें गिरकर शीश झुकाकर चले गए।

निर्वैर और ज्ञानमय आत्मस्वरूप—भैया! इस जीवका कोई वैरी नहीं है। कोई जीव किसीका विरोधी नहीं है। सबकी अपनी-अपनी कषायके अनुसार चेष्टा होती है। उसमें जिसे बाधक मान लिया जाता है उसको शत्रु कहते हैं। और जिसे साधक मान लिया जाता है उसे मित्र कहते हैं। पर ये जो राग द्वेषकी हठे हैं वही परेशानीमें डाल रही हैं। जीव कल्याणमूर्ति है, ज्ञानानन्दघन है, प्रभुस्वरूप है, अत्यन्त स्वच्छ है। सारे विश्वको एक साथ जान ले ऐसी शक्ति है। यह दूसरेकी बात नहीं कही जा रही है, यह आपकी स्वयकी बात है। मगर समागममें आई हुई तुच्छ चीजोंमें आसक्ति करके, मोह करके इतने बड़े कल्याणरूपको बरबाद कर रहे हो। जैसे द्वेषमें बरबादी होती है वैसे ही रागमें बरबादी होती है।

राग और द्वेष दोनों ही मलिन भाव हैं— और प्रभुताके नाश करने वाले भाव हैं।

हठसे विडम्बना--एक मास्टर और एक मास्टरनी थे। मास्टर जी कालेजमें पढ़ाते थे और मास्टरनी जी किसी कन्या पाठशालामें पढाती थीं। दोनो पुरुष स्त्रीने छुट्टीके दिनके लिये सोचा कि कल क्या खाना चाहिए? सो आपसमें तय हुआ कि मूंगकी मगौडी कल बनना चाहिए। सामान जुटाया खूब मेहनतसे अब मंगौडी बनाया तो २१ बनी सख्यामें। अब जब मास्टर जीमने बैठे तो १० परोस दीं मास्टरको और ११ अपने लिए रख लिया। तो मास्टर बोला कि ११ मंगौड़ी हम खायेंगे, मास्टरनी बोली कि हम ११ मगौड़ी खायेंगे हमने मंगौड़ी बनानेमें बहुत श्रम किया है। दोनोमें यह तय हुआ कि हम तुम दोनों चुपचाप हो जाये, जो पहिले बोलेगा वह तो १० मगौड़ी खायेगा, और जो बादमें बोलेगा वह ११ मंगोड़ी खायेगा। अब उन दोनोमें हुज्जत हो गयी। सो चुपचाप बैठे। एक दिन हो गया, दो दिन हो गए, दोनों ही भूखे बैठे रहे। दोनों ही भूखसे लस्त पस्त हो गए थे। अभी एक दिन अनशन करके आप ही देखलो तो पता पड़ जायेगा कि बेहोशी सी आ जाती है कि नहीं। सो वे दोनों अधमरेसे पडे थे। मगर हठ जो लगी है उसका फल तो बुरा ही होगा। पहिले जो बोल देगा वह १० ही मंगौड़ी पायेगा। सो दो तीन दिनके बाद वे मरेसे हो गये। तो लोग लकड़ीके किवाड चीरकर भीतर घुसे, भीतरसे जजीर लगी थी। देखा कि मास्टर मास्टरनी दोनों मर गए।

लोगोंने सोचा कि भाई ले चलो दो अर्थी क्यों बनाए? एक ही में दोनों को मरघटमें ले चलो। वहां लकड़ी कडा इकट्ठा किया, दोनोंको लिटा दिया। आग लगानेमे जरा सी देर थी। मास्टरनी सोचती है कि अब तो हम भी मरे और ये भी मरे। अब तो दोनों ही मरेंगे। हठ करने मे कुछ धरा नहीं है। हठ छोड़ना चाहिए। अब भाग्यकी बात है कि उस दिन २० आदमी आए थे जलानेके लिए गिनतीके। मास्टरनी बोली-- अच्छा तू ही ११ खा लेना हम १० को खा लेवेगी। वे २१ थे, सो सबने सोचा कि ये तो दोनों ही भूत भूतनी बन गए। भूत तो हम सबमें से ११ को खा लेगा और भूतनी १० को खा लेगी। सो इतना सुनकर सब जान बचाकर भाग गए। फिर जब निकले तो कहा कि देखो हठमें कोई सार नहीं है। दोनों ही मर जाते तो क्या होता?

हठसे हानियां--तो भैया! जरा जरा सी बातोंमे जो इतनी हठ हो जाती है कि हम कभी दूसरेका गौरव भी नहीं कर सकते हैं--चलो दूसरा कोई अगर सुखी होता है तो होने दो, अपनी हठ छोड़ो। हठ छोडने में

अपनी बिगाड़ कुछ नहीं है। हठ रखनेकी जो आदत है इस आदतसे भीतरमें रागद्वेषकी वासना प्रबल हो जाती है। प्रथम तो यह बात है कि कोई जीव किसी दूसरे जीवका कोई परिणमन नहीं करता। सब केवल अपनी-अपनी सृष्टि बनाते जानेमें मस्त रहा करते हैं। संसारकी ऐसी ही स्थिति है। मेरा ऐसा स्वरूप है कि किसी पर मेरा अधिकार नहीं, मेरा मुझ पर ही अधिकार है। अपनेको सुधार लें अथवा बिगाड़ लें। हम ही अपनेको कुछ भी कर सकते हैं, दूसरेका कुछ नहीं कर सकते हैं। जब कभी सच्चे ज्ञानकी झलक होती है और अकिंचन जानें और किसी क्षण यदि ऐसा भाव बनाएं कि कुछ भी चाह न आए, चाहे हजारों आवश्यकताए पड़ी हुई हों, मगर किसी समय कुछ भी चाह न आए, सर्वसे अत्यन्त विविक्त होकर केवल ज्ञानस्वरूप मात्र पर दृष्टि जाए तो यही अपने उद्धार का उपाय है। और जो कुछ हठ करके रहेगा उसके हाथ कुछ भी न लग पायेगा।

हठीके हाथ कोयला—एक नाई था। सो सेठजी की हजामत बना रहा था। जब छुरा मुँहके पास लाया तो सेठ डरने लगा। कहा, देखो अच्छी तरह हजामत बनाना, हम तुम्हें कुछ देंगे। नाई ने जब गलेके छुरा फेरा तो फिर सेठ डरा। फिर कहा कि अच्छी तरह बनाना, हम तुम्हें कुछ देंगे। नाई ने सोचा कि सेठ कोई अच्छी चीज देंगे। जब हजामत बन चुकी तो ८ आने देने लगे। बोला यह नहीं लेंगे, हम तो कुछ लेंगे। दो रु० दिया, बोला नहीं लेंगे, पाच रुपया दिया, बोला नहीं लेंगे। १० रुपया दिया, नहीं लेंगे। गिन्नी देने लगा--बोला नहीं लेंगे, हम तो कुछ ही लेंगे। सेठ परेशान हो गया। कहा अच्छा भाई प्यास लगी है सो उस आलेसे वह गिलास उठा दो, हम दूध पी लें फिर तुम्हें कुछ देंगे। झट दौड़कर नाई गया। उठाया तो गिलासके दूधमें कुछ पड़ा हुआ नजर आया। उसे देखकर उससे न रहा गया, बोला--सेठ जी इसमें तो कुछ पड़ा है। क्या कुछ पड़ा है ? हा। तो अपना कुछ उठाले। अब बतलावो उसे क्या मिला ? कोयला। अब यह देखो कि सेठ असर्फी तक दे रहा था पर नहीं लिया, वह अपनी हठ पर अड़ा ही रहा सो उसे कोयला मिला। इसी तरह लाखों की चाह हो, करोड़ोंकी चाह हो, कितना भी वैभव मिल जाए पर शाति उससे नहीं होती हैं। शाति तो तभी मिल सकती है जब कि अपने को इस जगतमें सबसे भिन्न जानकर रहें। इसी लक्ष्यसे अपना चरम विकास हैं।

धर्मके लिये ही जिन्दगी—भैया! मैं जी रहा हू तो धर्मके लिए जी रहा हू ऐसी भावना आनी चाहिए। यह बात सच्ची कही जा रही है।

धन विघट जायेगा, परिवार विघट जायेगा, शरीर विघट जायेगा, केवल एक धर्म ही साथमे रहेगा। तो यह निर्णय रखो अन्तरमें कि हम जीवित हैं तो धर्मके लिए जीवित हैं, धनके लिए नहीं, परिवारके लिए नहीं। ये सब स्वप्नवत् हैं, मायारूप हैं। इसी प्रकार इस मोहकी नींदमे जो कुछ दिख रहा है वह इस कालमें सच मालूम हो रहा है यह सब बिलकुल झूठ है, मायारूप है। आप हमें नहीं जानते, हम आपको नहीं जानते और फिर भी सम्बन्ध आप इतना बनाए जा रहे हैं। आप हमें जानते हैं क्या? नहीं जानते और मै आपको जानता हू क्या? नहीं जानता। यदि मैं आपको जानता होता, आप मुझे जानते होते तो आप और हम स्वय ज्ञानमय हो गये होते, फिर वहां व्यावहारिक प्रवृत्ति करने का काम ही नहीं होता। सो इस समस्त विश्वको मायारूप जानकर इसमे मोह न करना, इसमें उपेक्षा भाव रहे, आत्महितकी धुनि रहे इसीमें ही अपना कल्याण है।

ण कुदोचिवि उप्पण्णो जम्हा कज्ज ण तेण सो आदा।
उप्पादेहि ण किंचिवि कारण मवि तेण ण स होई ॥३१०॥

परिणमनकी अपने-अपने द्रव्यमे तन्मयताके कारण कार्यकारणपनेका अभाव—प्रत्येक पदार्थ अपने आपमें ही परिणमन करते हैं, इस कारण उनका जो भी परिणमन है वह उन्हीं पदार्थोंमे तन्मय है। आपका परिणमन चाहे शुद्ध हो चाहे अशुद्ध हो, वे सब आपसे अभिन्न हैं। तो जब सभी द्रव्यों का अपना-अपना परिणमन अपने अपने द्रव्यसे अभिन्न है तब यह कैसे कहा जा सकता कि अमुक पदार्थ अमुक दूसरेसे उत्पन्न हुआ है? जब सर्व पदार्थोंका परिणमन उन ही में निजमें तन्मय हैं तो कौन सी ऐसी गुञ्जाइश है जो यह कहा जाय कि अमुक पदार्थ अमुक दूसरे से उत्पन्न होता है। यह उपादानकी दृष्टि रखकर बात की जा रही है, किन्तु सर्व विशुद्धका निरूपण निश्चय दृष्टिसे होता है, व्यवहार दृष्टिसे सर्व विशुद्ध का निरूपण नहीं होता अर्थात् सबसे पृथक् केवल अपने स्वरूप मात्रका वर्णन निश्चय दृष्टिसे ही सम्भव है और निश्चय दृष्टिमे परकी दृष्टि ही नहीं है। सो वहां निमित्तनैमित्तिक भावकी दृष्टि ही नहीं है। एक पदार्थ ही देखा जा रहा है और उसके बारेमें वर्णन किया जा रहा है कि ये पदार्थ अपनेमें ही अपना परिणमन करते हैं।

कार्यकारणपनेके अभावसे कर्तृकर्मत्वका अभाव—भैया! जब कोई पदार्थ किसी भी पदार्थसे उत्पन्न नहीं हुआ है तो वह कार्य कैसे हो सकता है? यह बात आत्माकी है, तो आत्मा कार्यरूप नहीं है और कोई पदार्थ

किसी दूसरेको उत्पन्न नहीं कर सकता है, फिर वह कारण कैसे हो सकता है ? इस कारण आत्मा कारण भी नहीं है और आत्मा कार्य भी नहीं है। जरा कोल्हूमें बालू डालकर देखो तेल उत्पन्न होता है कि नहीं। तेल तिल से ही पैदा होता है, सरसों से तेल नहीं निकलता। तिलसे ही तेल निकलता है। सरसोंसे जो निकलता है उसका नाम लोगों ने तेल रख लिया। तिलसे जो उत्पन्न हो उसे तेल कहते हैं। पर तेलकी समानता है, तिलसे उत्पन्न होने वाली वस्तुकी तरह वह परिणति है इसलिए सबका नाम तैल रख दिया। सरसोंका नाम सरसोंल रखलो, बादामका नाम बदोंल रख दो। रूढ़िवश कितने ही नाम बोल दिए जाते कि जिनका नाम अर्थानुसार फिट नहीं बैठता मगर सब समझते हैं। तो बालूमें तेल उत्पन्न नहीं होता, इसलिए बालू तेलका कारण नहीं है और तेल बालूका कार्य नहीं है। इसी तरह जीवकी परिणति पुद्गलसे नहीं होती इसलिए जीव की परिणति पुद्गलका कार्य नहीं है। और उनके परिणामोंका कारण पुद्गल नहीं है, इसलिए जीव और अजीवमें कार्य कारण भाव नहीं है।

विशुद्धताका भाव परविविक्तता—यहां सर्व विशुद्ध तत्त्व निरखा जा रहा है। सर्व विशुद्ध तत्त्व तब ही निरखा जा सकता है जब किसी भी परकी ओर दृष्टि न हो। केवल उस ही स्वरूपकी दृष्टि हो जिस स्वरूपको देखना है और वर्णन करना है। क्रम क्रमसे होने वाली जितनी भी अवस्थाएँ हैं उन अवस्थाओंसे उत्पन्न होता हुआ यह जीव-जीव ही है, अजीव नहीं है। जीवकी अवस्थाओं पर दृष्टि बिल्कुल न दें तो जीवको यहां कौन पहिचान सकता है ? मनुष्य, पशु, तिर्यञ्च, नारकी मुक्त जीव इन सबके सहारे ही हम जीवकी चर्चा किया करते हैं। तो ये जितने भी जीवके परिणमन हैं वे सब जीवमय हैं अजीव नहीं हैं। इसी प्रकार अजीवको भी निरखना जो उनका परिणमन है उन परिणमनोंसे उत्पन्न होते हुए वे सब कुछ अजीव ही हैं, जीव नहीं हो सकते हैं क्योंकि समस्त द्रव्य अपने ही परिणमनके साथ तादात्म्य रखते हैं, दूसरेके परिणमनसे उनका तादात्म्य नहीं है।

परके द्वारा परके परिणमनकी अशक्यता – कोई मनुष्य किसी भाईको समझाता है, भाई हमारी बात तो तुम मान ही लो, तो उसके कहनेसे क्या वह बात मान लेता है ? उसके मनमें आए तो मानता है। कहता है भाई हमने बात तुम्हारी पूरी मानी है. अरे वहां उसने उसकी बात रत्ती भर भी नहीं मानी। कोई किसीकी बात सीधा नहीं मानता है। बात मानना तो उनका परिणमन है और उन परिणमनोंका तादात्म्य उस मानने वाले के साथ है, दूसरेके साथ नहीं हो सकता है, इसलिए एक जीवका किसी

दूसरे जीवके साथ कोई कार्य-कारण सम्बन्ध नहीं। और न किसी जीवके साथ इसका कार्य-कारण सम्बन्ध है। जीव अपने परिणामोंसे उत्पन्न होता है। उसका अजीवके साथ कारण कारण कैसे होगा? जैसे सोनेका गहना बनाना है तो भाई चांदी ले जावो तो क्या क्या बन जायेगा? चांदीकी ही चीज बन जायेगी। सोने से वास्तविक सोनेकी चीज बनेगी। सोनेके आभूषणका चांदीके साथ कोई कार्य-कारण भाव नहीं है। इसी प्रकार जीवके परिणामका अजीवके साथ कोई कार्य-कारण भाव नहीं है?

विवेकीके भुलावा क्यों?—भाई! बच्चा हो तो भूल करले। भींतमें यदि सिर लग जाय तो उसकी मां भींतमें ३-४ थप्पड़ मार दे तो शांत हो गया। इस भींतने मुझे मारा था तो देखो अम्माने भींतको कैसा मारा? तो बच्चा हो तो भले ही भूल कर जाय, मगर जो बुद्धि रखता हो और ऐसी भूल करे कि मुझे अमुक अजीव ने सुख दिया, अमुक अजीव ने दुःख दिया तो वह उसका विवेक नहीं है। यह उसकी मौलिक भूल है। वह संसारमें रुलता चला जा रहा है। समस्त द्रव्योंका किसी भी अन्य द्रव्यके साथ उत्पाद्य-उत्पादक भाव नहीं है। हालांकि निमित्तनैमित्तिक भाव बिना कोई विभावका कार्य नहीं होता। फिर भी पदार्थका परिणमन उस ही पदार्थसे निकलता है, किसी दूसरे पदार्थसे नहीं निकलता है।

परका परमे अकर्तृकर्मत्व—भैया! रोटी आटे से ही बनती है, धूलसे नहीं बन सकती है, यह कितना विश्वास है। वैसे ही हाथ जरा धूल पर चलावो और इटावाकी धूल तो आटे के ही बराबर चिकनी है, रूँदनेमें आ जायेगी, वेलनेमे आ जायेगी (हँसी) तो जैसे रोटी आटेसे ही बनती है, उपादान उसका अन्न है, धूल आदिक नहीं है, इसी प्रकार कोई भी कार्य हो, मान आए, लोभ आए, कोई परिणमन हो, उसका उपादान मैं ही हूं, मेरे क्रोध दूसरोंसे नहीं आता, मेरे से ही बनता है। मेरे विषय कषाय, मेरे सुख दुःख मेरेसे ही बनते हैं, किसी दूसरेसे नहीं बनते हैं। यदि कोई पदार्थ किसी दूसरे से पैदा होने लगे तो संसारमें अंधेर मच जाय। फिर तो कोई पदार्थ नहीं रह सकता है। यह पूर्ण वैज्ञानिक बात वस्तुस्वरूपके बारेमें कही जा रही है। वैज्ञानिक लोग भी यह मानते हैं कि जो जो पदार्थ सत् है उसका कभी विनाश नहीं होता। उसका परिणमन चलता रहता है। और उन दो पदार्थोंके सम्बन्धमें भी, निमित्त-नैमित्तिक भावमें भी जो बात बनती है उन दो की दशा उन दो में अलग अलग बनती है। तो जब एक द्रव्यका दूसरे द्रव्यके साथ कार्य-कारण भाव सिद्ध नहीं होता तो तुम यह कैसे कह सकते हो कि यह अजीव जीवका कर्म है। यह जीवका परिणाम अजीवका फल है, यह बात सिद्ध नहीं होती।

छायापरिणतकी छाया—अच्छा देखिये जितनी जगहमें यह छाया हो रही है यह छाया किसकी हो रही है ? यह भींतकी छाया है ? नहीं। जहां आप बैठे हैं यह छाया इस जगहकी छाया है और भींत उस उसमें निमित्त है। अगर भींत की छाया होती तो भींतमें रहती। जिसकी जो चीज होती है वह उसमें रहती है। भींतका रूप है, भींतका जो कुछ है वह भींतमें मिलेगा, भींतसे बाहर न मिलेगा, पर भींत उसमें निमित्त है। और छाया जमीन की है। इस तरह व्यवहारमें यह छाया हाथकी हो गयी, बीचमें छाया बिल्कुल नहीं है। आप लोगोंको भ्रम भले ही हो जाय कि जमीन पर भी छाया है और जमीनसे चार हाथ ऊपर भी छाया है। पर जमीनसे एक सूत भी ऊपर छाया नहीं है। अरे है तो छाया जमीन की। ऊपर कोई पुद्गल चीज रखी हो तो छाया है, नहीं तो नहीं है। जैसे तख्त पर छाया है वह तख्त की है, जो जमीन पर छाया है वह जमीनकी छाया है और जहा कुछ न हो वहा कुछ नहीं है।

प्रकाशपरिणतका प्रकाश— भैया ! उजाला भी उजेलेमें है। उस पुद्गल का ही उजाला है। कभी देखा होगा कि जब अधेरी रातमें आप टार्च जलाते हैं तो उस भींत पर तो उजेला मिलेगा पर उस भींत और टार्चके बीचमें उजाला न मिलेगा। आप कहेंगे कि मिलता है, थोड़ी थोड़ी किरणें मिलती हैं। तो उस बीचमें जो सूक्ष्म पुद्गल फिर रहे हैं, जो आपको कूड़े की तरह नजर आ रहा है वह उसका ही उजाला है, आकाशमें जरा नहीं है जब कि बीचमें कोई चीज खड़ी कर दें तो उस चीज पर तेज उजाला हो जाता है और कुछ चीज न हो तो एक मामूली उजाला रहता है, सो वह मामूली उजाला भी वहाके फिरने वाले सूक्ष्म मैटरका है। कोई उजाला नामकी अलगसे चीज नहीं है। जिस पुद्गलका उजाला है उसकी वह चीज है।

उत्पाद्य उत्पादक सम्बन्ध न होनेपर भी निमित्तनैमित्तिक सम्बन्धका प्रसार-- सो भैया ! जब ऐसी स्थिति है कि जिसका जो परिणमन है वह उससे ही निकलता है, उसमें ही तन्मय है। तब यह ख्याल बनाया कि मेरा धन है, मेरा वैभव है, मेरा घर है, मेरा परिवार है, यह सब इतना कठिन भ्रम है कि जिसका फल संसारमें रुलना ही रहता है तो यह निश्चय करो कि जितने भी पदार्थ हैं—जीव हों, परमाणु हों, प्रत्येक पदार्थ अपनेमें अनन्त शक्ति रखते हैं और जितनी शक्तियां हैं उतनी उनकी अवस्थाए बन रही हैं। तो वे पदार्थ अपने गुणोंमें और अपनी अवस्थाओंमें ही तन्मय हैं फिर यह प्रश्न होता है तो फिर यह ससार बन कैसे गया ? जब किसी पदार्थका किसी अन्य पदार्थके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है तो फिर वह बन

कैसे गया ? उत्तर देते हैं।

कम्मं पडुच्च कत्ता कत्तारं तह पडुच्च कम्माणि।
उप्पज्जंति य णियमा सिद्धी दु ण दीसए अण्णा ॥३११॥

विभावका साधक निमित्तनैमित्तिक भाव—कर्मोंका आश्रय करके तो कर्ता होता है और उनमें परस्पर निमित्तनैमित्तिक भाव है। अन्य प्रकार से कर्ता कर्मकी सिद्धि नहीं है। अच्छा एक बात पहिले बतलावो—पिता पहिले होता है कि पुत्र पहिले होता है। पुत्र पहिले होता होगा ? क्यों जी, शायद पिता पहिले होता होगा। पिता पुत्र दोनों एक साथ होते हैं, क्यों कि जब तक पुत्र नहीं होता तब तक उसका पिता नाम कैसे पड़ा ? यह फलाने हैं, यह फलाने हैं, ये नाम तो पहिलेसे हैं, मगर पिता तो पहिले नहीं है। पुत्रकी अपेक्षासे बाप नाम पड़ा है, पिताकी अपेक्षासे पुत्र नाम पड़ा है। इस कारण पिता और पुत्रका होना दोनों एक साथ हैं। इन दोनोंमें परस्पर निमित्तनैमित्तिक भाव है, उसके कारण वह पिता, उसके कारण वह पुत्र होता है। इसी प्रकार कर्मोका उदय आता है और आत्मा मे विभाव पैदा होते हैं, तो यह बतलावो कि उदय पहिले आता कि विभाव पहिले होता है ? सुननेमें ऐसा लगता होगा कि जैसे पिता पुत्रकी बात सुनकर ऐसा जान लेते हैं कि वाह पिता पहिले हुआ पुत्र बादमें हुआ। इसी तरह यह लगता होगा कि उदय पहिले आता है राग बादमें, पर ऐसा नहीं है, जिस समय उदय है उस समय राग भाव है। रागका होना, कर्मो का उदय होना दोनों एक साथ हैं। विभाव है नैमित्तिक भाव।

साथ होनेपर भी कार्यकारणभाव सम्बन्ध—अच्छा दीपकका जलना पहिले होता है कि प्रकाशका होना पहिले होता है ? दीपक पहिले हुआ कि प्रकाश पहिले हुआ ? एक ही समयमें होते हैं। पर एक ही समयमें होकर भी आप यह बतलावो कि प्रकाश दीपकका कारण है कि दीपक प्रकाशका कारण है। अब निमित्तनैमित्तिक भाव पर आइए। तो दीपक प्रकाशका कारण है, एक साथ होने पर भी दीपक कारण है और प्रकाश कार्य है। तो एक साथ बहुतसी चीजें होती हैं। पर उनमें निमित्त-नैमित्तिक भाव जैसा हुआ करता है वैसा ही है। अब जैसे कर्मके उदयका निमित्त पाकर आत्मामें राग परिणाम हुआ तो वैसे ही आत्मामें वैराग्य परिणामका निमित्त पाकर वहां कर्मोका क्षय भी तो हो जाता है। तो कर्मोकी दशा बनानेके लिए आत्माका परिणाम कारण पड़ता है और आत्माके परिणाम बनाने के लिए कर्मोकी अवस्था कारण पड़ती है, ऐसा परस्परमें निमित्तनैमित्तिक व्यवहार होने पर भी परमार्थतः इनका परस्पर में कार्य कारण भाव नहीं होता है, क्योंकि हो गया ऐसा, परन्तु अपने

अपने स्वरूपमें सब द्रव्य रह रहे हैं। उनको अपनेसे बाहर मुलकनेकी फुरसत नहीं है। इस कारण किसी द्रव्यका कोई अन्य द्रव्य न कार्य है और न कारण है।

स्वतन्त्रता सत्तासिद्ध अधिकार--यहां सर्व विशुद्ध भावको दिखाया जा रहा है, प्यौर, सबसे न्यारा, केवल सत्त्वमात्र स्वरूपकी दृष्टि की जा रही है। इस दृष्टिमें इस जीवमें केवल जीव ही जीव नजर आते हैं। और अजीवमें अजीव ही नजर आते हैं। ऐसा है वस्तुका स्वातन्त्र्य सिद्धान्त। भारतकी आजादीके लिए सबसे पहिला नारा था तिलकका और भी हों तो हम नहीं जानते। तो प्रथम नारा यह हुआ 'कि आजादी हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है।' जब हम भी मनुष्य हैं और अंग्रेजों! तुम भी मनुष्य हो और मनुष्योंका आजाद रहना उनका जन्मसिद्ध अधिकार है, तो परिस्थितियां भले ही बन जाया करती हैं, पर मनुष्य क्या गुलाम रहनेके लिए पैदा होता है? उसे तो आजाद रहनेका जन्मसिद्ध अधिकार है। जनसिद्धान्त इससे बढकर बतलाता है कि वस्तुकी आजादी होना सत्तासिद्ध अधिकार है। जन्मकी बात तो जाने दो, वह तो ४०-५० वर्ष पहिले हुआ, पर हमारा आपका आजाद रहना तो सत्तासिद्ध अधिकार है कि हम आप स्वतत्र हों।

कठिन ससर्गमे भी वस्तुत्वका अव्यय--निगोद अवस्थामें जीवका कर्म का शरीरका कितना शोचनीय सम्बन्ध रहा, जिससे जीवका पता ही नहीं है कि है कि नहीं है। पृथ्वी भी जीव है पर उसके बारेमें लोगोंकी श्रद्धा देरमें होती कि जीव भी है। तो जहा जड़ जैसी अवस्था हो जाय, ऐसा शरीर धारण किया इस जीव ने, फिर भी जीव आजाद ही रहा। कठिन मेलके बावजूद भी जीव अजीव नहीं बन गया, अजीव जीव नहीं बन गया।

पराधीनतासे पराधीनताका अभाव—भैया 'यह जीव पराधीन भी होता है तो स्वतन्त्रतासे पराधीन होता है, परतंत्रतासे पराधीन नहीं होता है। कोई मनुष्य किसी दूसरे जीवसे राग करके या वह सुहा गया, उसके प्रति आकर्षण हुआ और उसके पराधीन बन गया तो वह अपनी कल्पनासे अपने विचारोंसे अपनी ही ओरसे अपने भीतरका भाव बनाकर ही तो पराधीन हुआ है, या उस दूसरे मनुष्यके हाथ पैरमें वध गया क्या? गाठ लग गयी क्या? या कोई जबरदस्ती करता है क्या? क्या कोई वस्तु किसी दूसरे वस्तु पर पराधीनता लादती है? नहीं लादती है। यह जीव ही खुद स्वतंत्र होकर परतत्र बनता है। तो यद्यपि इस विश्वमें एक द्रव्य दूसरे द्रव्यके साथ निमित्त नैमित्तिकभाव है 'तिस पर भी प्रत्येक द्रव्य

केवल अपने ही परिणमनमें अपने हीपरिणमनसे परिणमता रहता है। किसी दूसरे पदार्थके साथ इसका सम्बन्ध नहीं है।

मर्जीसे बन्धनका अपनाना--अहा देखो तो भैया ! यह मोही जीव उचक-उचक कर खुद अपना ही भाव बनाकर विषयोंमें उलझता है और पराधीन बनता है। विषय इसे पराधीन नहीं बनाते। कभी भोजन ने आप पर जबरदस्ती की है क्या कि तुम खा ही लो हम बैठे हैं बड़ी देरसे थालीमें ? अरे यह जीव उचक कर ही स्वयं अपनी आजादीसे रागके पराधीन होकर पहुचता है। यह जीव पराधीन भी बनता है तो अपनी आजादीसे पराधीन बनता है, किसी दूसरे की जबर्दस्तीसे पराधीन नहीं बनता है। बहाना करना दूसरी बात है।

अपराध छपानेका बहाना--एक मनुष्य स्वसुराल जा रहा था, तो उसे रात्रिमें दिखता नहीं था। शामको स्वसुरालके गेवडेमें पहुंचा। तो उसे उस समय स्वसुरका बछड़ा मिल गया। उसने बछडेकी पूंछ पकड़ी। जहां वह बछड़ा जायेगा वहां ही स्वसुरालका घर है। बछडे की पूंछ पककर वहा पहुंच गया। जिससे लोग यह न कहें कि यह बेवकूफ है सो वह पूछसे घसीटते हुए, रगड़ खाते हुए किसी तरहसे पहुचा। उसने एक बहाना बना लिया कि मुझे एक बछड़ा मिला था दहेजमे सो वह दुबला हो गया है ? सो मुझे बछडेका सोच है। यह उसने यों बहाना बना लिया कि कोई यह न जान पाये कि रातको दिखता नहीं है। जब देर हो गयी, भोजन बनाया। साले साहब आए, साली साहब आयीं, सो यही कहे दामाद कि मुझे बछडेका अफसोस है। तो हाथ पकड़कर ले जायेगी क्यों कि दिखना तो है नहीं। अजी तो क्या है ? दो एक महीनेमें तगड़ा हो जायेगा। तो पकड़ कर उन्हे खाना खिलाने ले गए। रसोईमें बैठाल दिया। भूख तो लगी ही थी। सासने दालमें घी कड़ाकेका डाला। सोचा, घी को गरम किया। गरम घी डालनेमें छनछल सी आवाज हुई तो उसने समझा कि बिल्ली आ गयी है तो एक थप्पड मारा। उसको बडी शरम आयी कि अभी तक तो पोल ढकी रही। किसी तरहसे अधपेट खाकर उठा, सो शर्मके मारे एक लठिया लेकर बाहर चला गया। जाते-जाते क्या हुआ कि एक खाई खुदी हुई थी सो वह उस खाईमें गिर गया। पहिले गौने में खुदी न थी, वह उसमें गिर गया। अब सुबहके समय सास गयी कपड़े धोने। छींट गिरे दो चार गालियां उसे दीं। बादमें देखा कि ये तो दामाद साहब पडे हैं, उस पुरुष ने कहा कि मुझे तो बछडेका सोच है। सारे ऐब ढाकनेके लिए वह केवल एक ही शब्द बार बार बोलता जाय।

दर्शनमोह महापराध छपानेमे चारित्रमोहका बहाना--भैया ! सो यहां

मोह कर रहे हैं व्यर्थका और कोई पूछे कि यह व्यर्थका मोह क्यों है ? तो कहेंगे कि प्रजी मोह नहीं है, चारित्र मोहका उदय है। चाहे वहा श्रद्धा ही बिगड़ रही हो। कहेंगे कि हम क्या करें ? छोटे बच्चे हैं, इनको छोड़ कर हम जायें तो ये मारे मारे फिरेंगे और हमें लोग उल्लू कहेंगे। तो यह चारित्र मोहका उदय है। ऐसा एक शब्द मिल गया है सो अपने सारे ऐब उसी शब्दको कहकर छिपाते हैं। जो अपनेको भूले हुए हैं उनकी अपने आप पर दृष्टि नहीं है।

जीवका ज्ञातृत्व—जीव अकर्ता है, इस रूपमें अपने आपकी श्रद्धा हो जाय तो इस ज्ञानीके व्याकुलता नहीं रहती। व्याकुलता होती है काम करनेके भावकी। जीव स्वभावत अकर्ता है। इस प्रकरणमें जीवको अकर्ता इस तरहसे सिद्ध किया है कि जगतमें प्रत्येक द्रव्यका परिणमन उसही द्रव्यमें तन्मय है, फिर कहां गुञ्जाइश है कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्यका परिणमन कर दे। कोई भी पदार्थ अपने आपके स्वरूपसे बाहर अपना परिणमन नहीं करता है। इस तरह यह बात निर्णीत होती है कि जीवका स्वभाव दीपककी तरह जगमग टिमटिमाते रहनेका है। इससे बाहर इस जीवका कुछ फैलाव नहीं है। लेकिन अपने आपमें महद्गुणरूप फैलाव है।

जीवका विस्तार--जीव कितना बड़ा है ? इसे ज्ञान विषयकी अपेक्षा कहा जाय तो यह लोक और अलोकमें फैला हुआ इतना बड़ा है। और प्रदेशकी अपेक्षा कहा जाय तो जीव देहप्रमाण फैला हुआ है। स्याद्वादके बिना जीवतत्त्वका यथार्थ निर्णय होना कठिन है। यह आत्मा ज्ञानकी अपेक्षा लोकालोकप्रमाण है और यही आत्मा प्रदेशकी अपेक्षा देहप्रमाण है। इन दोनों अशोंमें यदि एक अशको तोड दिया जाय और निर्पेक्ष होकर कुछ माना जाय तो सिद्धि नहीं होती है। ज्ञानविषयकी अपेक्षा व्यापक है, इस बातको न माना जाय तो जीव क्या रहा ? अचेतन सा रहा और जीव देहप्रमाण है यह नहीं है और एकातत यह आत्मा सर्व व्यापक है। तो हम क्या रहे और हम कहासे निकले, क्या सत्ता है ये सब अधेरेमें बातें रहती हैं। यों तो श्रद्धाके कारण जो जहा आगममें लिखा है वैसा माना जाता है, पर चित्तमें उतरे, अनुभव जगे, ऐसी बात प्रमाण द्वारा निर्णय हुए बिना दिलमें नही उतरती है। यह आत्मा इतना विस्तृत है कि जिसकी स्फुरायमान चैतन्यज्योतिमें ये सारा तीन लोक रूपी आगन छुरित हो गया है। सारे लोकमें उसका फैलाव हो गया है।

विवेककी आवश्यकता--यह आत्मा विशुद्ध है, केवल जानकर रह जाता है, ऐसा इसका स्वभाव है। आकुल व्याकुल होना जीवका स्वभाव नहीं है, फिर भी यहा जो बन्धन देखा जा रहा है कर्मोके साथ और अपने

रागादिकोंके सा. यह सब अज्ञानकी ही विकट महिमा है। जीव हम और आप सब स्वभावसे ज्ञानमय हैं और आनन्द स्वरूप हैं। पर अज्ञानके कारण एक अंधेरा छा गया है। कैसा विकट अज्ञान कि यह जीव घरके दो चार लोगोंसे बँध जाता है कि जो कुछ हमारा श्रम है, जो कुछ हमारा उद्यम है, जान है वह सब इनके लिए है। और कषायके आवेशमें मोह और तृष्णासे अनुरक्त होकर अपना जीवन खोखला कर डालता है। हालांकि है यह गृहस्थावस्था, पर विवेक तो सब जगह होना चाहिए। ऐसी सावधानी बनाए रहो कि अपने आपका भान बना रहे और परपदार्थोंका ऐसा लोभ न रहे कि आवश्यक होने पर भी अपने लिए या परके लिए सदुपयोग नहीं किया जा सके।

भाग्यका पीछे लगा रहना--गुरु जी सुनाते थे कि 'मड़ावरामें उनका ही एक मित्र था, जिसका नाम था रामदीन। सो वह ऐसा उदार था कि जितना मिल सके पितासे ले लेकर, जिसे चाहे बांटना, खिलाना पिलाना, गरीबोंको कुछ न कुछ देना, यह उसकी आदत थी। तो जब बहुत बहुत खर्च करने लगा तो पिता ने कहा बेटा, हमने हजार दो हजार रु० रख रखे हैं तुम्हारे विवाहके लिए, ये काम आयेंगे। बोला कि जो होगा देखा जायेगा। पहिले जो हमारी इच्छा है और जिस तरह हमारा उदारता में चित्त जा रहा है पहिले वह काम होने दो। एक ही वह लड़का था सो रामदीनकी बात भी रखनी पड़ती थी। बाप जो दे सो खर्च कर दे। अब कुछ घरमें न रहा, तो सोचा कि अब जो रामदीन बड़ी उदारतासे दीन दुखियोंको खिलाता पिलाता था अब वह गरीब बनकर न रहेगा। गांव छोड़ दिया। पहुच गया बनारस। वहां जाकर एक महन्तकी सेवामें रहने लगा। भाग सुधरे। महंतने रामदीनको अपनी गद्दी दे दी। जब बनारसमें गुरु जी जा रहे थे तो सामने से हाथी पर चढ़ा हुआ रामदीन महंतसाही के साथ आ रहा था। तो हाथीसे उतर कर गुरु जीसे मिलकर कहा कि क्या हमें आप जानते हैं कि हम कौन है? थोड़ी देरमें कहा कि क्या तुम रामदीन हो? कहना है कि अब मैं रामदीन नहीं हू। अब तो जो हू। सो हू

परिस्थितियां--भैया! पुराणोंमें भी देख लो-- श्रीपालका भाग्य था ना, तो देशसे भी निकल गए पर ज्योंके त्यों अमन चैनसे रहे। कितने ही राजा किसी कारण देशसे पृथक हो गए मगर उनका भाग्य था सो दूसरे देशके राजा बन गए। ऐसा अनेक पुराणोंमें आता है। और जिसके पापका उदय आता है तो कितना ही कोई उसकी रखवाली करे, उसकी रक्षाका यत्न करने पर भी वह सब बेकार जाता है तो चिंता करना है अपने श्रद्धा ज्ञान और आचरणकी, बाह्यकी चिंतासे कुछ बनता नहीं है।

इसलिए उस चितामें क्या दिमाग उलझाना, साधारणतया कर्तव्य समझ कर उसे करना। तो अपना जो मुख्य ध्येय है उसको छोड़कर जो बंधनमें पड़ गया है जीव, यह सब उसके अज्ञानकी कोई गहन महिमा है।

अकर्तृत्व--यहां बात क्या बतायी जा रही है कि अपना सर्व विशुद्ध स्वरूप देखो, सही स्वरूप देखो। यह मैं आत्मा धन वैभवसे जुदा हू, उनका कुछ करने वाला नहीं। शरीरसे जुदा हू, शरीरका भी करने वाला नहीं। और जो कर्म बँधते हैं उन कर्मोंसे जुदा हू, इन कर्मोंका करने वाला नहीं हूं। और जो रागादिक विभाव होते हैं उनसे जुदा हू और इनका भी करने वाला नहीं हू, जो होता है वह निमित्त पाकर हो जाता है, पर भावों का करने वाला मैं नहीं हू। और जो भी शुद्ध परिणमन चलता है चलेगा, जीवके स्वभावके कारण पदार्थके द्रव्यत्व गुणके कारण होता है, होगा, उनका भी करने वाला मैं नहीं हू। एक दूसरेका कर्ता नहीं है और एक एकका करना क्या? इसलिए 'करना' शब्द अध्यात्मशास्त्रमें कुछ मायने नहीं रखता है।

अकर्तृत्वका एक दृष्टान्त द्वारा समर्थन--जैसे रस्सी पड़ी है और लाठी के द्वारा उस रस्सीको गोल-गोल कर दें। अब देखते जाना। इस लाठीने रस्सीका क्या काम किया? लाठी कितनी है? जितना कि उसका विस्तार है। मोटी है, लम्बी है, उस लाठी ने अपने आपमें अपना घुमाव किया। लाठीसे बाहर जो रस्सी है उस रस्सीमें लाठीका कोई अश नहीं गया, कोई परिणति नहीं गयी, कुछ नहीं गया। इस कारण व्यवहारी लोग व्यवहारसे ही ऐसा कहते हैं कि लाठीने रस्सीको गोल कर दिया। लाठी ने तो लाठीको ही इस तरह चलाया। उसका निमित्त पाकर रस्सी भी मुड़ गयी। तो एक दूसरेको करे क्या और एक एकको करे क्या? कोई किसी लाठीको खूब घुमाये तो इस अकेले ने अपनेसे ही अपने को विकल्प रूप किया और वहां निमित्तनैमित्तिक परम्परावश लाठी ने अपनेको खूब घुमाया। अरे यह अकेला एक ही है पुरुष, उसने क्या किया? ऐसा परिणाम किया। अत करना शब्द व्यवहारी लोगोंकी भाषा है, करता कोई कुछ नहीं है।

आत्मगौरव--भैया! जीवको अकर्ताके रूपसे देखें तो वहां सर्व विशुद्ध आत्माके मर्मका ज्ञान होता है। इस मर्मका जिन्हें पता नहीं है वे बाहरमें सयम और त्याग करके भी अहकारका पोषण करते हैं और अहंकार जितना है वह सब विष है। किस पर घमड होना, काहेका अहंकार करना? गौरव करें तो अपने ज्ञानानन्द स्वभावका गौरव करें, लोगोंपर रोब जमानेका गौरव करें तो वह अहकारमे शामिल है। मैं

आचरणसे न गिर जाऊँ, मैं श्रद्धानसे न गिर जाऊं, ऐसा अपने आपमें अपना गौरव रखना है। इसे कहते हैं वास्तविक गुरुता और लोग मुझे जानें, इसे नाक वाला, इस नाक आंख कानकी मुद्राको लोग हलका न समझ जायें, कुछ नहीं किया, कोई ऐसा बेकारसा न समझ जाय, इसके लिए अपना प्रभाव जताना, यह तो आत्मगौरवमें नहीं है, किन्तु यह अहङ्कारमें है। भैया! इस लोकमें बड़े-बडे पुरुष नहीं रहे, राम, रावण, हनुमान तीर्थंकर कोई पुरुषयहां नहीं रहे, कोई मुक्त गया, कोई स्वर्ग गया, फिर किस बात पर गर्व करे? कौनसी चीज यहां सारभूत मिली? एक कल्पना द्वारा मान रहे हैं, यह मेरा है, यह मेरा है। मोही-मोही हैं ना, सो दूसरे भी कहते हैं, हा हा यह हमारा, यह तुम्हारा है। कोई तीसरा हो तो बतावे कि यह तुम्हारा है कैसे?

मूछमक्खनका शेखचिल्लीपन—एक पुरुष था जिसका नाम था मूछ-मक्खन। ऐसा भी नाम कभी सुना है क्या? हुआ क्या कि किसी श्रावक के यहा मट्ठा पीने गया। मूँछ उसके बहुत बडी थी। सो जो मट्ठा पिया और पीनेके बाद मूछमे हाथ फेरा तो कुछ मक्खनका कण हाथमें आ गया। उसने सोचा कि और रोजिगारोंमें तो शका रहती है सो रोज १० ५ बार श्रावकोंके यहां जाए, मक्खन पीवें और मूछोंमें हाथ फेर कर मक्खन इकट्ठा कर लें तो इस तरहसे कुछ हो दिनोंमे काफी घी इकट्ठा हो जायेगा। सो वह दसों जगह जावे, मट्ठा पीवे और मूंछपर हाथ फेरे। मक्खन जोड़ता जाय वह एक डब्बेमे। साल डेढ सालमें उसने २, ३ सेर घी जोड लिया।

मूछमक्खनका इन्द्रजाल—अब जाडेके दिन थे। माघका महीना था, झोपड़ीमें वह रहता था। उसी झोंपडीमें वह घी का डब्बा लटक रहा था। सो एक दिन वह सोचता है कि कलके दिन यह घी वेचूँगा तो मिल जायेंगे ५-७ रुपये। और उससे फिर एक बकरी खरीद लूँगा। उसके बच्चे, घी दूध आदि वेचकर एक गाय ले लेंगे। फिर भैंस ले लेंगे। फिर बैल ले लेंगे, फिर जमीन ले लेगे, जमींनदार हो जायेंगे, फिर मकान बनवायेंगे, शादी करेंगे, बच्चे होंगे कोई बच्चा कहेगा कि चलो दद्दा, मां ने रोटी जीवनेको बुलाया है। तो कहेंगे कि अभी नहीं जायेंगे। अपने आप कह रहा है मनमें। फिर बच्चा आयेगा, कहेंगा कि चलो मां ने रोटी खानेको बुलाया है, वह भूखो बैठी है, तो कहेंगे कि अभी नहीं जायेंगे। तीसरी बार कहेगा तो इस तरहसे लात फटकारकर मार देंगे और कहेंगे कि अभी नहीं जायेंगे। सो आवेशमें आकर लात फटकार दी। वह लात उसकी घीके डब्बेमे लग गयी। नीचे आग जल रही थी। झोंपड़ी जल उठी।

मूढ़मक्खनका और परिग्रहियोंके समान रुदन—अब वह बाहर जाकर रोता है, अरे भाई हमारा मकान जल गया, हमारे बच्चे जल गए, हमारे गाय बैल जल गये, हमारा सारा वैभव खत्म हो गया। देखने वाले लोग कहते हैं कि अभी कल तक तो इसके मकान न था, स्त्री बच्चे न थे, कुछ भी न था, भीख मागता था और आज कहता है कि मेरे ये सब जल गए। पूछा कि भाई कैसे जल गए ? उसने अपनी सारी कहानी सुनाई। किसी सेठजी ने कहा कि अरे कुछ जल तो नहीं गये हैं, तू कल्पना करके ही तो रो रहा है। वहां एक विवेकी पुरुष खड़ा था, उसने समझाने वाले सेठ जी से कहा कि जैसा यह कहता है वैसा ही तो तुम भी कहते हो। कल्पना करके यह मेरा है, यह मेरा है ऐसा कहते हो और दु खी होते हो, पर तुम्हारा कुछ है नहीं। तुम्हारे निकट जरूर है, मगर तुम्हारा है कुछ नहीं और तुम जिसे मानते हो कि यह मेरा है वह तुम्हारे निकट भी रहने को नहीं है। सेठ जी तुम्हारा यह मानना मिथ्या है कि यह मेरा है। यदि ऐसा तुम मानते हो तो तुम्हारेमें और इसमें क्या अन्तर है ?

पर्यायबुद्धिसे क्लेशप्रवाह—तो यह जीव कल्पना करके अपनेको नाना परिणतियों रूप मानकर अहकाररसमे डूब रहा है। यह सब अज्ञानकी महिमा है। भीतर देखो मर्ममें यह मायाजाल कुछ नहीं पाया जाता है। बड़े-बड़े शास्त्र ज्ञान करके देखनेसे लगता है कि यह तो कुछ भी बात नहीं। और लोगोंने इतनी बात भुला रखी है कि वह तो केवल ज्ञानानन्दस्वरूप है। प्रभुकी प्रभुता इस बातमें ही है कि वह ज्ञाता तो रहे समस्त विश्वका परन्तु निज आनन्दरसमें ही लीन रहे। भ्रम न आए। बाह्यपदार्थोंसे ज्ञान और सुख माननेका उसे विभ्रम कभी न बैठेगा, ऐसी प्रभुमें त्रिकाल सामर्थ्य रहती है। ऐसा ही स्वरूप अपना है। पर अपनेको जाने बिना हम दु खी हो रहे हैं।

सिंहकी अधेरीसे भयभीतता—आजकल चैतका ही तो महीना है। इस मौसमका एक कथानक है कि कहीं गेहू कट रहे थे। सो किसान-मालिक नौकरोंसे बोला कि जल्दी काटो—जल्दी चलो, अधेरी आने वाली है। अधेरी कैसी है ? अरे तुम जानते हो, हमें जितना शेरका डर नहीं है उतना डर अंधेरीका है। यह बात सुन लिया शेरने। अब वह शेर डरा कि मुझसे भी कोई बड़ी अधेरी होती है। यह किसान मुझसे जितना नहीं डरता उतना डर इसे अधेरीसे है। अधरी मुझसे भी कोई बड़ी चीज है। ऐसा सोचकर वह शेर डर कर बैठ गया। उसी दिन एक कुम्हारका गधा खो गया था, सो वह अपना गधा ढूँढते-ढूँढते उसी शेरके पास पहुच गया। सोचा कि यह गधा है सो उसे दो एक गाली देकर उठाया। दो एक

डडे भी जमाए। और कान पकड़ कर लेकर चल दिया अब सिंह ने समझ लिया कि आ गई अधेरी सो अधेरीके डरके मारे कुम्हारी मनचाही तरहसे कान पकड़ कर ले गया। शेर वहां डरता-डरता चला गया। रात के समय शेरको बांध दिया।

अधेरीका विनाश--जब सुबह हुआ व अंधेरी न रही, उजेला हुआ तो शेर देखता है कि अरे मै कहा बनराज और कहां गधोंके बीचमें। एक बड़ी दहाड़ मारी तो पासमें बधे हुए सब गधे वगैरह घरमें घुस गए और यह छलांग मारकर जंगलमें पहुंच गया। सो ऐसा लगता है कि अधेरी है कुछ नहीं। केवल कल्पनाकी अधेरी है। कोई किसीको खिलाता पिलाता है क्या? कोई किसीका अधिकारी है क्या? सब जीवोंके अपने-अपने कर्मोंका उदय है। और अपने-अपने उदयके अनुसार अपना-अपना कार्य करते हैं।

परका परमें अकर्तृत्व—अच्छा बतलावो एक मिलमे यदि हजारों नौकर काम करते हैं तो नौकर मालिककी सेवा कर रहा है, चाकरी कर रहा है या मालिक उन सब हजारों नौकरोंकी चाकरी कर रहा है? अरे कथञ्चित मालिक हजारों नौकरोंकी चाकरी कर रहा है, उन्हें आजीविका से लगाए है, उनकी खबर रखता है सो वह हजारों नौकरोंकी चाकरी करता है और वे हजारों नौकर मालिककी चाकरी करते हैं ऐसा तो दुनिया ही देखती है। वस्तुत कोई किसी अन्यका कुछ नहीं करता है। जिनका जितना जो उदय है उस उदयके अनुसार उसका कार्य चलता है। यह सोचना भ्रम है कि मेरे पर बड़ा बोझ लदा है और मुझे बड़ा सचय बनाए रहना चाहिए। ये सब बाते बिल्कुल व्यर्थकी हैं, जो होने को होता है वह स्वय होता है।

सम्पदाके आगमन व निर्गमनकी पद्धतिका अप्रकटपना—लक्ष्मी आती है तो पता नहीं पड़ता कि कहांसे आती है और जब लक्ष्मी जाती है तो पता नहीं पड़ता कि कहासे जाती है? जैसे नारियलके फलके अन्दर पानी होता है ना, अच्छा बतावो पानी कहासे उसके अन्दर घुस गया? बड़ा कठोर तो उसका ढक्कन है। जब उसे किसी चीजसे फोड़ो या पत्थर पर पटको तो मुश्किलसे फूटता है। ऐसे कठोर ढक्कन वाले नारियलमें यह पानी कहासे आ गया? और हाथी कैंथ खा लेता है, जब तो खूब दलदार वजनदार कैंथ खा लिया। अब पेटसे उसकी लीदके साथ जब कैंथ निकलता है तो पूराका पूरा निकलता है। न उसमे छेद मिलेगा, न उसमें दरार मिलेगी और उठाकर देखो तो उस कैंथकी खोल लगभग डेढ तोलेके वजनकी निकलेगी और कहां तो वह था कोई पावभरका। बताओ वह रस कहासे

निकल गया। न वहां छिद्र दिखता है, न वहा दरार दिखती है तो जैसे उस कैंथका सारा सार निकल गया, कुछ पता नहीं पड़ा, इसी तरह जब लक्ष्मी जाती है, निकल जाती है तो पता नहीं होता है और जब आती है तो पता नहीं होता है। इसका क्या सोचना ?

पुण्य पापके उदयका परिणमन--एक सेठका नौकर था। सो हवेलीके नीचे कोठरीमे रहता था। उसे एक दोहा बड़ा याद आता था—होंगे दयाल तो देंगे बुलाके। कौन जायेगा लेने देंगे खुद आ के॥ दसों बार वह यही दोहा गाये। एक रात सेठकी कोठरीमें कुछ चोरोंने छेद कर दिया। जब भींत कुछ फटी और जाना कि चोरोंने यह उद्यम किया तो वहीं बैठे-बैठे कहता है कि देखो ससुरे यहा तो सिर मारते हैं और फलाने तालाबके बड़के नीचे जो असर्फियोंका हंडा गड़ा है उसे खोद नहीं लेते। चोरों ने सोचा कि ठीक कह रहा है, चलो खोदें तो मिले असर्फियोंका हंडा। उस हडे पर तवा जड़ा था। खोदा तो तवा निकला। कुछ ततैयों ने आकर उन्हें काटना शुरू किया। चोरों ने सोचा कि वह बड़ा चालाक निकला। ततैयोंसे हमें कटा दिया। सोचा कि इस हडेको ले चलो और उसकी कोठरीमें डाल दो। हंडा ले गए और उसकी कोठरीमे उसी छेदमें से उडेर दिया, सब असर्फी उसके कोठेमें आ गईं। तो वह दोहा कहता है कि--होंगे दयाल तो देंगे बुलाके। कौन जायेगा लेने देंगे खुद आके।

नरजन्मका प्रयोजन धर्मपालन—भैया! चिंता काहेकी है? न लाइलोन पहिनो तो मोटे ही कपड़े सही। बिगड़ता क्या है? और न पहिने कानके ततैया बिच्छू तो उससे क्या बिगड़ गया सो बतलावो। और आजकल की शोभा तो बिना आभूषणके रहनेमें है। बिगड़ा क्या बतलावो? न रसगुल्ले खाये, सीधी दाल रोटीसे पेट भर ले तो उसमें क्या बिगड़ गया? हम आप सब जो जन्मे हुए हैं सो केवल धर्मके लिए जन्मे हुए हैं। एक धर्म का ही सारा सच्चा सहारा है, न हुआ लाखोंका धन तो क्या बिगड़ा? जो उदयके अनुसार आपके पास हो, बस, स्वपरके उपयोगके लिए विवेकपूर्वक व्यय करते रहो। क्या चिंता है? जीवन अच्छा गुजारो और प्रभुसे अपना स्नेह लगावो और ज्ञानमें अपना समय बितावो। मर जायेंगे तो कमसे कम अगला भव तो अच्छा हो जायेगा। यहाके लोग क्या साथ निभायेंगे?

हितरूप उपदेश—सो भैया! ऐसा चित्त बनावो कि किसी चीजको परवाह नहीं है। जो होगा उसको देखेंगे और जमाना भी बडे संकटका है। कुछ पता किसीको तो है नहीं कि क्यासे क्या गुजरता है? जो होगा सो देखा जायेगा। पर वर्तमान विवेक तो न त्यागो। धर्मका और ज्ञानका

संचय तो न त्यागो। सो ऐसा ही साहस बनाएँ कि उदयके अनुसार तो है आजीविका और हिसाब, किन्तु अपने पुरुषार्थके अनुसार है एक आत्मकल्याण। सो आत्महितके अर्थ अपना पुरुषार्थ ज्ञान कमाने और धर्म पालनका करे। ऐसा जीवन व्यतीत हो तो उसके कुछ हाथ लगेगा।

स्वरूपविस्मरणका परिणाम—यह जीव यद्यपि अपने स्वरूपसे चैतन्यमात्र है, प्रभुवत् ज्ञान और आनन्दका पिटारा है, किन्तु अनादि कालसे कर्म उपाधिके संयोगमें रहकर यह अपने स्वरूपको भूलकर नाना प्रकारके शरीरोंके भेष लादे लादे फिर रहा है। जगत्के शरीरों पर दृष्टि दो तो पता होगा कि हम किस-किस प्रकारके कष्टोमें अभी तक रहे हैं? जगत्में दिखने वाले जीवोंके कष्ट देखो घोड़ा, ऊँट, पशु, बैल इन पर मनुष्योंकी कैसी दृष्टि रहती है। जब तक इनसे कुछ स्वार्थ निकलता है तब तक ही उन्हें रखते हैं घर पर। जब बूढे हो गए, उनसे कोई स्वार्थ नहीं निकलता तब उन्हें जहां चाहे बेच डालते हैं, चाहे उनकी कोई हत्या भी कर दो जब तक उन्हें पालते भी हैं लादते हैं तो बहुत बोझ लादते और कोड़ोंसे मार मार कर उन्हें जोतते हैं। हम आपको कोई एक गाली भी दे दे तो एक गाली भी नहीं सहन कर सकते। उस गालीको सुनकर इतनी परेशानी हो जाती है कि बाणकी तरह हृदय भिद जाता है और उससे बदला लेनेकी रात दिन सोचा करते हैं। एक गालीके ही सुन लेने पर हम आप पर ऐसा प्रभाव हो जाता है कि रात दिन चैन नहीं आती है। तो भला बतलाओ जिन पशुवों पर छुरी चलाई जाती है, जिन पशुवोंको कोड़ोंसे पीटा जाता है ऐसे उन पशुवोंके दुःखों का क्या ठिकाना?

किसकी कहानी—वे पशु और कोई नहीं हैं। हम और आप भी ऐसे ही कभी थे। कितनी ही तरहके जीव हैं। यह तो है सामने दिखने वाले जीवोंकी कहानी। भला कीड़े मकौड़ोंको देखकर, बचा बचाकर कौन चलता है बल्कि कुछ लोग जूतोंसे रगड़कर देखते हैं कि यह किस तरहसे तड़फता है और बेदर्द होकर जो चाहे जूतोंसे रगड़कर मार डालते हैं। रेशमके कपड़े बनाए जाते हैं। रेशमके कीड़े खौलते हुए पानी की कड़ाही में डाल दिए जाते हैं और वे जब मरते हैं तो अपने मुखसे तार छोड़ते हैं। उन तारोंका संग्रह करते हैं। उनसे रेशम बनता है। जो रेशमके कपड़े बड़ी रुचिसे आप पहिनते हैं और खरीदते हैं। मंदिरोंके लिए भी कि उसके ऊपरका चँदोवा अच्छा लगेगा, अगल बगलके पर्दे अच्छे लगेंगे, वे रेशमके कीड़ोंसे बनते हैं। कितने ही जीवोंकी हिंसा होती है, उनके मुँहसे तागा निकलता है। उसी रेशमसे ये कपड़े बनाए जाते हैं। भला जो स्वयं रेशमका कीड़ा है वही उस दुःखको जान सकता है। यहां तो

खौलते हुए पानीका एक बूंद ही हाथ पर पड़ जाय तो कितनी परेशानी हो जाती है और यदि दूसरेसे गलतीसे गिर जाय तो उससे कितना लड़ने लगते हैं ? यह है रेशमके कीड़ोंकी दुर्दशा। यह सब किसकी कहानी है ? हम आप सबकी कहानी है।

एकेन्द्रिय व विकलत्रिक अवस्थामे दुर्दशा—तो जगतमें कितने प्रकारके जीव हैं ? इस जगतमे अनन्तानन्त जीव हैं। वे सब दुःख हम आपने भोगे। जब जमीन हुए थे तो लोगोंने खोद-खोदकर मिट्टी काढा था, पत्थर को खोदकर सुरगसे फोड़कर इस जीवकी हत्या की थी। क्या हम आप कभी जलके जीव नहीं हुए थे ? प्राय. हुए थे। लोगोंने जलको गरम करके खौला करके अग्निमें डाल करके इस जीवको मार डाला था, हम आप अग्नि हुए तो राखसे दबोच कर व पानी डालकर बुझा दिया था। यह सब अपनी ही कहानी चल रही है। हम आप कभी हवा भी हुए थे। देख लो हवाकी क्या हालत है ? उसे रबड़में रोक दिया और मुह बंद कर दिया। अब भरी रही, वहीं पडी-पड़ी हवा मर जाती है। हवाको भी हवा न मिले तो वह जिन्दा नहीं रह सकती है। यह जीव वनस्पति हुआ तो वनस्पतिको भी भेदा, छेदा। क्या-क्या नहीं हुआ इस जीवको ? विकलत्रय हुआ तो उनकी कौन परवाह करता है ?

पशुगतिमें असह्य दुर्दशा—पशुवों को लोग खाने तक लगे हैं। उन्हें जिन्दा भी लोग आगमें डाल देते हैं। जो मासभक्षण करते हैं उनके क्या दया ? छुरी से उनकी हत्या कर डालते हैं और या तो उन्हें आगमें भून कर खा डालते हैं। मांस खानेकी एक खोटी आदत है। उन्हें क्या परवाह है। इसी तरह पशुवोंकी बात देखो—सूकरोंको भालेसे छेदकर गिरा देते हैं और धर्मका नाम भी ले लेकर जहा चाहे बलि कर डालते हैं। तो ऐसी-ऐसी दुर्दशा भोगी हम आपने।

वर्तमान सुयोगका सुयोग—उन सब दशावोंके समक्ष आज विचार करते हैं तो हम और आपने कितना ऊंचा सौभाग्य पाया, कितना दुर्लभ नरजीवन पाया, अपने मनकी बातोंको दूसरों को सुना सकते हैं, दूसरोंके मनकी बातोंको अपन सुन सकते हैं, समझ सकते हैं। ऐसा ऊंचा भव प्राप्त किया और कुल भी श्रेष्ठ पाया, धर्म भी श्रेष्ठ पाया। जहां आत्माकी सावधानी रह सके, जहा अहिंसाका अपने व्यवहारमें बर्ताव किया जा सके, ऐसा श्रेष्ठ धर्म भी प्राप्त किया। वीतरागताका जहां पोषण मिल सके, जिससे वास्तविक शांति और अनाकुलता उत्पन्न होती है। तो बतलावो इतना उत्कृष्ट समागम पाकर भी हम आप कुछ न चेते, मोह मोहमें ही रहे, जिन्हें गुजर

जाता हैं, जिनका वियोग हो जाता है उनको ही अपना सर्वस्व मान मानकर यह जिन्दगी बिता दी तो भला बतलावो तो सही कि कुछ शांति भी कहीं पावोगे ? जो शांति का घर है ऐसे प्रभुकी भक्तिमें मन नहीं लगाया जाता है, शांतिका खजाना भरा है, ऐसे निज ज्ञायकस्वरूप मे उपयोग न पाया तो फिर भला बतलावो कि पावोगे कहां शांति ?

सम्यक् ज्ञानका आदर—भैया ! ये मलिन जीव जो स्वय बेचारे असमर्थ हैं, विवेकरहित हैं उन मलिन जीवों पर हम कुछ आशा लगाए कि इससे आनन्द मिलेगा यह बड़ी भूल है। सुख और शांति चाहना है तो आवो वीतराग सर्वज्ञदेव परमात्माके गुणोंके स्मरण की छायामें। शांति चाहते हो तो आओ अपने शुद्ध ज्ञानस्वरूपके स्मरणमें। इन दो ठिकानोंके अलावा तीसरा कोई ठिकाना ऐसा नहीं है जहा आप शाति प्राप्त कर सकें। तो भाई अब अपने स्वरूपकी ओर निहारो और ममता कम करो। यह नहीं कहा जा रहा है कि आप लोग अभी अपना घर छोड़दें या रोजगार छोड़ दें, परघरका मुंह तकें। यह बात नहीं कहीं जा रही है, किन्तु ज्ञान की बात ज्ञानसे करनेमें कौनसे आलस्यका प्रश्न हैं ? रह रहे हो घरमें रहो, जो काम कर रहे हो करते रहो किन्तु इतना ज्ञान बनाए रहनेमें इस आत्माको कौनसी तकलीफ हो रही है ? समझ जावो कि जगतके सभी जीव एक समान हैं। यहा न मेरा कोई है और न मुकाबलेतन कोई पराया है। स्वरूपकी दृष्टिमें सब मेरे ही समान है। और व्यक्तिकी दृष्टि में सब मेरेसे अत्यन्त भिन्न हैं।

परसे रक्षाकी मान्यतारूप सकट—भैया ! यही तो बडी आपत्ति है। जो आपको इन अनन्त जीवोंमें से एक दो जीवोंको अपने सिर पर रखना पड़ रहा है। इसीमें अपना हर्ष मानते हैं, यही तो आपत्ति है। ये अध्रुव हैं, इनमें उपयोग लगाया ये ही सकट हैं जिससे ऐसा दुर्लभ नरजीवन पाया वह यों ही गवांया जा रहा है। सत्य ज्ञान बनानेमें आपको कौन सी परेशानी है। जानते रहो—सभी जीव मुझसे अत्यन्त भिन्न हैं। एक भी जीव मेरा नहीं है। इस शरीररूपी मन्दिरमें विराजमान यह मै कारण-परमात्मा स्वयं ज्ञानानन्दसे परिपूर्ण हू। इसे कोई कष्ट नहीं है। इसको दूर करनेके लायक कोई काम नहीं है। बाहरमें कुछ किया ही नहीं जा सकता है। यह मैं अपने आपमे ही कुछ करता हू, कुछ भोगता हू, किसी भी प्रकार रहता हू। अपने आपमें ही मै रहता हू, किसी परपदार्थमें मेरा कोई परिणमन नहीं चलता। ऐसा जानकर हे आत्महित चाहने वाले जीवो ! अब उस ज्ञानकी व्यापारमें कमी न करनी चाहिए। और चिंता भी क्या करें ? चिंता तृष्णासे हो जाया करती है। तृष्णाका भाव नहीं रखें

तो कोई चिंता नहीं। कष्ट तो वर्तमानमें कुछ है ही नहीं। मगर तृष्णाका जो परिणाम लगा है उससे चिंता बनाते हो और उससे कष्ट मानते हो। तृष्णाको छोड़ो।

तृष्णाके अभावका परिणाम—एक बार देशमें कुछ अन्नकी कमी हो गयी, अकाल पड़ गया। दो पड़ौसी थे। एक पड़ौसीके पास तो ग्यारह महीनेका अनाज इकट्ठा हो गया था और एक पड़ौसीके पास एक महीने का अनाज इकट्ठा था। ११ महीनेके अनाज वाला मनमें सोचता है कि एक साल कैसे गुजरेगा? हमारे पास तो ११ महीनेका ही अनाज है। सोचा कि ऐसा करें कि पहिले एक महीना अनशन रख लें। न खा करके पहिला महीना गुजारें, फिर ११ महीने बड़े आरामसे रहेंगे। दूसरे पड़ौसीने सोचा कि हमारे पास एक महीनेका अनाज तो है, इसे सुखसे खायें, बादमें जैसा भाग्य होगा वैसा सुयोग मिल जायेगा। चिंता किस बातकी? उस एक महीनेके अनाज वालेने एक महीना सुखसे गुजारा और इस ११ महीनेके अनाज वाले ने १ महीना अनशन तो क्या करे ३ दिनमें ही टाय टाय बोल गया। अब क्या था? ११ महीने के अनाज का भी उपयोग उस एक महीने के अनाज वालेने कर लिया। तो भविष्य की चिंता बनाकर वर्तमानमें पाये हुए आरामको भी नहीं भोगना चाहते हैं। और चिंता करके गुजारा करनेसे धर्मसे भी विमुख रहते हैं और शांतिसे भी विमुख रहते हैं।

सुखका ज्ञानसे सम्बन्ध—भैया! जरा सोचो तो जिसके पास एक लाखका धन है, कदाचित् १ हजारका टोटा आ जाय, ९९ हजार रह जाएँ तो वह एक हजार पर दृष्टि देकर दुखी होता है। हाय, हाय, एक हजार नहीं रहा। उस १ हजार पर दृष्टि देकर ९९ हजारका सुख वह नहीं ले पा रहा है और एक मनुष्य एक हजार का ही धनी था और उसे १ हजार और मिल गए तो वह खुश हो रहा है, धर्म कर्मकी भी याद कर रहा है, शांति से अपना जीवन भी बिता रहा है। वह सुखी है। तो धनसे सुख नहीं होता है। एक निर्धन पुरुष अपने विचार उत्तम रखता है, तृष्णासे दूर रहता है वह सुखी है और एक करोड़पति पुरुष भी एक अपने धनकी रक्षाकी चिंतामें और वृद्धिकी चिंतामें रात दिन परेशान रहता है। सो सुख शांतिका सम्बन्ध धनसे नहीं है। अपना मन्तव्य आप ऐसा न बनाएं कि धन अधिक रहेगा तो मुझे सुख रहेगा। सुखका कारण ज्ञान है, विवेक है। विवेक है तो सुख प्राप्त होगा और अविवेक है तो वहां सुख नहीं मिल सकता।

अविवेकमें अपराध भैया! अविवेकमें यह जीव क्या करता है? अपराध तो अनेक करता है, पर उन सब अपराधोंको संक्षेपमें संग्रहीत किया

जाय तो वे अपराध तीन होते हैं। पहिला अपराध तो परको आपा मानना और परको अपना मानना, अहंभाव और ममताभाव, अज्ञान भाव। हैं नहीं अपनके और कल्पना कर लिया—मेरा है, लो बस दुःख हो गए। किसीके ससुरालमें साला नहीं है, सासके एक ही लड़की है, तो अब दामाद खुश हो रहा है, अब तो यह सब धन मेरा है और कदाचित् सासके लड़का हो जाय तो उसी दिनसे कल्पनामें आ गया कि अब तो हमे न मिलेगा। पहिले कल्पना करके आनन्द मान रहा था, अब कल्पना करके दुःखी हो रहा है। सोना जिसके घरमें है, आज दिन १४० का भाव हो गया तो हिसाब लगाकर अपनी हैसियत समझते हैं, और कुछ समय बाद भाव कम हो गया तो दुःखी हो गए, हाय मेरा धन कम हो गया। हलांकि कभी उसे बेचना नहीं था, सास बहूके पहिननेका गहना था, फिर भी कल्पनामें धनी और निर्धनता की बात आ जानेसे हर्ष और विशाद मानने लगते हैं।

अज्ञानीकी उन्मत्त दशा—पागल जैसी दशा इस अज्ञान अवस्थामें हो जाती है। जैसे कोई नदीके निकट पागल बैठा हो, वहांसे बहुतसे मुसाफिर गुजर रहे हों, सो किसीको नहाना या पानी पीना था, मोटरमें आए, खड़ी कर दिया, पानी पीने चले गए। पागल मानता है कि यह मेरी मोटर आ गयी। वे तो पानी पीनेके बाद मोटरमें बैठकर चले जायेंगे। अब पागल सिर धुनता है कि हाय मेरी मोटर चली गयी। इसी तरह यह है पृथ्वीकाय चीज रुपया पैसा, लेकिन अब तो बनस्पतिकायके भी रुपया पैसा होने लगा है। कागजके रुपये बनते हैं। तो ये पृथ्वीकाय और वनस्पतिकाय ये दाम पैसा अपन सदा रखते हैं और कदाचित् जीवोंके उदयानुसार यह रुपया पैसा आता रहता है। आया और गया। अब यह रुपया पैसा जब आता है तब यह जीव अपने को मानता है कि मैं बड़ा हो गया हूं और जब चला जाता है सब कुछ तो अपनेको मानता है कि मैं हल्का हो गया हूं। यह मान्यता है। यह पता नहीं है कि उसका विकल्प करनेसे क्या होना है? उदय अनुकूल है तो न जाने कहां-कहासे यह लक्ष्मी आ जाती है, और उदय प्रतिकूल है तो किस किस उपायसे नष्ट हो जाती है।

दौलत—इस लक्ष्मीका नाम दौलत है। बोलते हैं ना उर्दूमें। दो का अर्थ है दो, लात का अर्थ है लात अथवा पैर। तो लक्ष्मीके दो लात हैं। सो जब यह आती है तब यह पुरुषकी छाती पर लात मारकर आती है। तो पुरुषके छाती पर लात लगनेसे छाती टेढ़ी हो जाती है। तो जब धन आता है तो अभिमानके मारे छाती पसारकर दृष्टि ऊंची करके यह जीव चलता है और जब यह लक्ष्मी जाती है तो पीठपर लात मारकर जाती है

जिससे कि कमर झुक जाती है, दुर्बल गरीबसा लगने लगता है। ऐसा इस दौलतका प्रयोजन है। पर धीर, गम्भीर पुरुष ऐसा है जो लक्ष्मी आए तो हर्ष न माने, लक्ष्मी जाय तो हर्ष न माने।

लक्ष्मी शब्दका मर्म—भला देखो तो भैया! इस खोटे कालका प्रभाव कि लक्ष्मी नाम तो है ज्ञानलक्ष्मीका, और कोई दूसरी चीज नहीं है। कोई समुद्रमें बैठा हो, दोनों तरफ हाथी खड़े हों, माला लिए हुए या कलसा डाल रहे हों, ऐसी लक्ष्मी कहीं नहीं है। आप अरबपतियोंसे पूछ लो कि कहीं लक्ष्मी देखी है? लक्ष्मी नाम है ज्ञानलक्ष्मी का। लक्ष्मी शब्दका अर्थ है लक्ष्म, लक्ष, लक्षण। ये तीनों एकार्थक शब्द हैं। आत्माका लक्षण आत्माका लक्ष्य, आत्माकी लक्ष्मी ज्ञान है। ज्ञानका नाम लक्षण है। लक्षण लक्ष्मी है, लक्ष्य है और ज्ञानस्वरूप इस विश्वकी उत्कृष्टता उपादेय है। सो सारभूत होनेसे दुनियाकी निगाह पूर्व समयमें एक ज्ञानलक्ष्मीकी ओर लगी रहती थी।

बालकोंका मुनिवनमे अध्ययन—गुरुवोंके सत्संगमें विद्याध्ययनके लिये रईस लोग भी छोटे बच्चोंको गुरुवोंके साथ भेज देते थे। बस भिक्षा मांगो और विद्या पढ़ो। राजा लोगोंके लड़के पढ़ते और भिक्षा मांगते थे। जब वे लड़के बड़े होते थे विवाह योग्य १८-२० वर्षके तब उनको सोचने दिया जाता था कि बेटा विचार करो, तुम किस धर्मको निभा सकते हो? तुम्हारे पालनेके लिए दो धर्म हैं—गृहस्थधर्म और मुनिधर्म। यदि तुम मुनिधर्म पाल सकते हो तो तुम्हें इतने दिन रहकर अदाज हो गया होगा, उम्र भी इस योग्य हो गयी है। तुम विचार कर सकते हो, मुनिधर्म पाल सकते हो तो मुनि हो जावो पर केवल भेष मात्रसे मुनि नहीं कहलाता, किन्तु भीतरसे अनादि अनन्त ज्ञानस्वभावको पकड़े रहें ऐसी निरन्तर जहां वृत्ति होती है उसे मुनिधर्म कहते हैं। तुम्हारे अन्दरमें यदि ज्ञान पुरुषार्थ चल सकता है तो मुनि होओ और गृहस्थधर्म निभा सकते हो तो गृहस्थधर्म निभावो। उनमें से कोई बालक गृहस्थधर्म निभाता था, कोई मुनिधर्म।

शिक्षित बालकका गृह प्रवेश—उस समयकी बात है जब माता पिताके कहनेसे गृहस्थधर्ममें प्रवेशकी बात तय हो जाती है तो माता पिता जगल से अपने बालकको ले आते हैं। अब तो उसकी शादी करना है ना। १५, १६ वर्ष जंगलमें रहनेसे उसका शरीर मलिन हो गया, बाल बड़े हो गए। कोई अंग्रेजी कटिंग तो वहां हो न सकती थी। तो अब सब स्त्रियां मिल कर उसका दस्तूर करती हैं, बाल बनवाती हैं और उबटना करती हैं, तेल लगाती हैं, जिसका रिवाज आज तक चल रहा है। दुल्हाके उबटन लगता

है। अरे रोज-रोज शरीरको साबुनसे तो धोते हैं फिर क्या उबटना करने का ढोंग करते हो ? पर यह तो रिवाज है। यही रिवाज प्राचीन समयसे चला आ रहा है। जंगलमें रहकर गुरुवोंसे विद्याध्ययन करते थे और भीख मांगकर अपना उदर भरते थे। राजावोंके लड़के, करोड़पतियोंके लड़के, उन लड़कोंका उबटना और तेल होना सही था। पर वह रिवाज आज तक चल रहा है, और वह रिवाज यह स्मरण दिलाता है।

विशुद्ध आत्मतत्त्वकी दृष्टिकी प्रेरणा—भाई प्रकरणकी बात यह है कि इस मनुष्य-जन्मका सदुपयोग यह है कि अपने आपको ज्ञानसे भर लेना और ज्ञानमात्र निहार कर संतुष्ट और शांत रखना। कर्मोंका काटना, संसारसे छूटने का उपाय बना लेना, यह है मनुष्यजन्मकी सफलताका काम। इसलिए विषयकषायोंमें मोह ममतामें ही यह समय मत गुजारो। सर्वविशुद्ध आत्मतत्त्वकी आराधना करो। यह समयसारका सर्वविशुद्ध अधिकार है जो प्रवचनोंमें चलेगा। तैयारीके साथ उसे सुनेंगे तो कुछ दिनोंमें ही यह सरल हो जायेगा।

> चेया उ पयडीयट्ठं उप्पज्जइ विणस्सइ।
> पयडीवि चेययट्ठं उप्पज्जइ विणस्सइ ॥३१२॥
> एवं बंधोउ दुण्हपि अण्णोण्णप्पच्चया हवे।
> अप्पणो पयडीए य संसारो तेण जायए ॥३१३॥

संसारके होनेका कारण—आत्मा प्रकृतिके अर्थ उत्पन्न होता है और विनष्ट होता है और प्रकृति भी आत्माके अर्थ उत्पन्न होता है और विनष्ट होता है। यहां उत्पन्न होने और विनष्ट होनेका अर्थ है पर्यायविभावोंमें बदलते रहना। आत्मा विभाव किसलिए करता है ? आचार्य ने यहां यह उत्प्रेक्षा की है कि विभावोंके प्रयोजनके लिए प्रकृति उत्पन्न होती है, प्रकृति के प्रयोजनमें आत्मा विभावरूप परिणमता है अर्थात् आत्माके विभावोंका निमित्त पाकर कार्मोंमें कर्मत्व अवस्था आती है। इस ही का दूसरा अर्थ यह है कि प्रकृतिका निमित्त पाकर आत्मा अपनेमें विभाव परिणमन करता है। इसी तरह प्रकृति भी, कर्म भी क्यों बनते हैं ? वे आत्मामें विभाव उत्पन्न करनेके लिए बनते हैं, ऐसी आचार्यदेवकी उत्प्रेक्षा है। इसी प्रकार आत्मा और प्रकृतिमें परस्परमें निमित्तनैमित्तिक भाव है और इसी कारण यह संसार उत्पन्न होता है।

शुद्ध वर्णनके पश्चात् जिज्ञासाका समाधान—इससे पहिले सर्वविशुद्ध ज्ञानका स्वरूप बताया जा रहा था यह आत्मा विशुद्ध केवल ज्ञानानन्द ज्योतिस्वरूप है। यह कर्ता भोक्ता बंध मोक्ष सर्व विकल्पोंसे परे है, ऐसा

उत्कृष्ट वर्णन करनेके बाद श्रोताको यह प्रश्न उत्पन्न हो जाता है, तो फिर यहाँ जो कुछ दिखता है संसार यह क्या है अन्य लोग तो इसको स्वतन्त्र मायारूप मानते हैं, किन्तु स्याद्वादकी पद्धतिमें कहा जा रहा है कि इस आत्मामें और कर्ममें परस्पर निमित्तनैमित्तिक भाव है और इसी कारण यह ससार उत्पन्न हुआ।

दृष्टियोका कार्य--दृष्टियोंका काम अपने विषयको देखना है। वे दूसरेकी विषयोका निषेध नहीं करते। जैसे आखका काम--जिस ओर निगाह दे उस ओर दिखा देनेका काम है। पीछेकी चीजको मना करनेका काम आखका नहीं है। इसी तरह नयोंका काम अपने विषयको देखनेका है। दूसरे नयके विषयको मना करनेका काम नहीं है। जब सर्व विशुद्ध ज्ञानका स्वरूप देखा जा रहा है तब केवल एक सहज ज्ञायकस्वरूप ही दृष्टि में लिया जा रहा है। उस दृष्टिमें बध, मोक्ष कर्ता, भोक्ताकी कल्पना नहीं है। पर ज्योंही दूसरी आखोंसे देखनेको चले तो फिर यह ससार इतने मनुष्य, इतने पशु, इतने तिर्यञ्च ये सब कहासे आए यह जिज्ञासा होना प्राकृतिक है। पदार्थ तो प्रत्येक विशुद्ध हैं, केवल अपने सहज स्वरूप हैं। फिर यह सब कहासे पैदायस हो गयी ? तो उत्तर देना ही पड़ेगा।

शुद्ध द्रव्यमें अशुद्धपरिणतिकी जिज्ञासाका समाधान--यद्यपि प्रत्येक पदार्थ अपने सहजस्वरूप मात्र है फिर भी जीव और पुद्गल इन दोनोंमें वैभाविकी शक्ति पायी जाती है सो दोनों परस्पर एक दूसरेका निमित्त पाकर विभावरूप हो जाते हैं। यह दृश्यमान सर्व कुछ स्वतंत्र माया नहीं है किन्तु आधारभूत परमार्थ द्रव्यकी अवस्था विशेष हैं, सो जब तक यह जीवके पदार्थको नियत-नियत स्वलक्षणको नहीं जानता है शरीर क्या है, मै क्या हू, इन दोनोंके नियत लक्षणोंको नहीं पहिचानता है तब तक शरीर में और आत्मामें एकत्वका अध्यवसान करेगा ही। पता ही नहीं है उसे भिन्न भिन्न स्वरूपका और जब एकत्वका अध्यवसान करेगा तो सारे ऐब सारी गल्तिया उसमें आने लगेंगी।

अध्यवसान और आत्मशक्तिका दुरुपयोग--अध्यवसान कहते हैं अधिक निश्चय करनेको। भगवानसे भी ज्यादा निश्चय करनेका नाम अध्यवसान है। अब समझ लो ससारी जीव भगवानसे आगे बढ चढ कर बननेमें होड़ मचा रहा है। भगवान नहीं जानता है कि यह इनका घर है पर ये हम आप डटकर जान रहे है यह मेरा मकान है, यह उनका मकान है। तो भगवानसे भी बढ़कर आप लोग निश्चय करते जा रहे हैं। इसे कहते हैं अध्यवसान। भगवान झूठको नहीं जाना करता मगर संसारी जीव झूठको बहुत अच्छा परखते हैं और साचकी ओरसे आखें बन्द किए रहते है। तो

किसी मामलेमें भगवानसे बढ़कर उनसे होड़ मचाकर ये संसारी जीव चल रहे हैं। ये परपदार्थोंमें और निज आत्मतत्त्वमें एकत्वका निश्चय किए हुए हैं। इस कारण ये सब जाल बन रहे हैं। एक परिवारका पुरुष परिवारके दूसरे पुरुषके लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर क्यों किए जा रहे हैं? उसके लिए अपना अमूल्य मन क्यों सौंपे जा रहे हैं? उसका कारण है कि उसे परिवारके उस मायामय पर्यायपर एकत्वकी बुद्धि लगाए हैं, इस कारण उसे वही सब कुछ प्रिय दिखता है।

कल्पित आत्मीयकी प्रियतमता—एक सेठके यहां एक नई नौकरानी आयी। सेठानीका लड़का एक स्कूलमें पढ़ता था। वह लड़का रोज अपने साथ दोपहरका खाना, कलेवा मिठाई वगैरह ले जाता था। एक दिन जल्दी-जल्दीमें वह लड़का कुछ न ले जा सका। अब सेठानीने नौकरानी से कहा जो कि उसी दिनसे नौकरी पर आयी थी कि देखो फलाने स्कूलमें जावो और यह मिठाई मेरे लड़केको दे आना। तो नौकरानी कहती है कि हम तो आपके लड़केको पहिचानती नहीं हैं। सेठानीको था अपने बच्चे पर बड़ा घमंड कि मेरे बच्चा जैसा सुन्दर रूपवान प्यारा दुनियामें कोई है ही नहीं। सो सेठानी मुस्करा कर बोली—अरे स्कूलमें चली जावो और तुम्हें जो सबसे प्यारा लगे वही मेरा लड़का है, उसको मिठाई दे आना। अच्छा साहब। मिठाई लेकर चली नौकरानी। उसी स्कूलमें नौकरानीका भी लड़का पढ़ता था। मगर वह लड़का काला कुरूप, चपटी नाक, बहती नाक वाला था। नौकरानी जब पहुंची स्कूलमें तो उसने सारे लड़कोंको देखा, उसे सबसे प्यारा बच्चा खुदका ही लगा। उस लड़केको मिठाई देकर वह चली आयी। शामको जब सेठानीका लड़का घर आया तो कहा, मां आज तुमने मिठाई नहीं भेजी। सेठानी नौकरानीको बुलाती है कहती है क्यों तुझे मिठाई दी थी ना? तू ने मेरे लड़केको मिठाई नहीं दी? तो नौकरानी कहती है कि मालकिन आपकी मिठाई हमने आपके लड़केको दे दी थी। अरे यह तो कह रहा है कि नहीं दिया। बड़ी गुस्सा हुई। तो नौकरानी कहती है कि आपने कहा था ना कि जो लड़का सबसे प्यारा लगे उसीको मिठाई दे देना। सो हमने स्कूलमें तीन चार सौ लड़कोंको देखा, सबसे प्यारा बच्चा हमको हमारा ही लगा, सो उसे खिला दिया।

अज्ञानका अंधेरा—तो भाई क्या खेल हो रहा है? अपने घरके माने हुए दो चार जीवोंपर कैसा अपना तन, मन, धन न्यौछावर किया जा रहा है। ये संसारी मोही प्राणी जिनसे रंच भी सम्बन्ध नहीं है, जैसे सब जीव हैं वैसे ही ये जीव है पर मोहका, अज्ञानका अंधेरा बहुत बड़ी

विपत्ति है। इससे आत्माको शांति नहीं प्राप्त होती है। इस अज्ञानके कारण इस आत्मामे और कर्ममें परस्पर निमित्तनैमित्तिक भाव बढ़ा चला जा रहा है और अनेक सकटोंको यह जीव झेलता है। संकट झेलना तो इसे पसद है पर मोह छोड़ना पसद नहीं होता। जब अज्ञानकी अंधेरी छायी है, ज्ञानमे प्रवेश नहीं है अपने आपका भान ही नहीं है, जैसा स्वतत्र स्वरूप है उसकी खबर ही नहीं है तो कैसे मोहका परित्याग करे?

मोहीका शुद्ध स्वरूपमें अविश्वासपर एक दृष्टान्त—भैया! मोही प्राणीको यह विश्वास ही नहीं है कि यदि समस्त परपदार्थोंका विकल्प छोड़ दें, मिथ्यात्व त्याग दें तो आत्मामें स्वाधीन सहज अनुपम आनन्द प्रकट होता है। ऐसा इस मोहीको विश्वास ही नहीं है। जैसे किसी भिखारीने ५-७ दिनकी बासी बफूड़ी रोटिया अपने झोलेमें भर रखी हैं और फिर भी तृष्णावश जगह-जगहसे रोटी मागता फिरता है। उस भिखारीको कोई सज्जन कहे कि ऐ भिखारी, तू इन बासी बफूड़ी रोटियोंको फेंक दे, मैं तुझे ताजी पूड़ी दूगा तो क्या भिखारी उन रोटियोंको फेंक देता है? नहीं। उसे विश्वास ही नहीं होता है। वह सोचता है कि मैं इनको फेंक दू जो मुश्किलसे कई दिनोंमे कमाया है और न मिलें पूड़िया तो कैसे गुजारा चलेगा? वह नहीं फेकता है। हॉ वह सज्जन यदि अति दयालु हो तो पूड़ियोंका टोकना आगे धरदे और फिर कहे कि अब तो फेंक दो। तो शायद है कि वह उन रोटियोंको फेंक देगा। तिस पर भी शायद है। क्यों कि शंका होगी कि कहीं यह फुसला न रहा हो। दिखा तो दी हैं पर शायद न दे। उसकी झोलीमें छोड दे तो शायद फेंक सकता है।

मोहीका शुद्धस्वरूपमें अविश्वास—इसी प्रकार जन्म-जन्मका परवस्तुवोंका भिखारी कई बारकी भोगी हुई, खाई हुई वस्तुवों का सचय किए हुए है। बासी बफूड़ी जूठे भोगोंका यह सचय किए हुए है। इसको कुन्दकुन्दाचार्य अन्य आचार्य महापुरुष समझा रहे हैं कि तू इन जूठे भोगोंको छोड़ दे तो तुझे अनुपम आनन्द मिलेगा। पर इसे कहासे विश्वास हो। सोचता है यह मोही प्राणी कि यह तो धर्म बाल बच्चे खुश रखनेके लिए किया जाता है। अपनी घर गृहस्थी सुखसे रहे इसलिए किया जाता है और इसके करनेकी यह ही पद्धति है। यों धर्म करते जावो और इस इस तरह सुख भोगते जावो। यह उपदेश है ससारके सुख भोगने का कि धर्म करते जावो और सुख भोगते जावो। ऐसा मान रखा है मोही जीवने।

अज्ञानीकी धर्मविधिका एक दृष्टान्त--जैसे एक गॉवके पटेलको हुक्का पीनेकी बड़ी आदत थी। चलते-चलते हुक्का पीता जाय। सो वह घरमें

हुक्का पीता जाय और अपने बच्चेसे चिलम भरवा ले और पीता जाय। कहता जाय—देखो बेटा हुक्का पीना बहुत खराब है, हुक्का नहीं पीना चाहिए, स्वयं गुडगुड करता जाय। कहता जाय कि देखो इस हुक्केमें बड़े ऐब हैं—पेट खराब हो जाय, तम्बाकूके रंगके कीडे पड जाएँ, मुँहसे दुर्गन्ध आए, हुक्का न पीना चाहिए और गुड़गुड़ करता जाय। अब पटेल तो गुजर गया। अब वह लडका घरमें प्रमुख हो गया। सो वह भी रातदिन हुक्का पीवे। सो एक समझदार बोलता है कि तुम्हारे बापने तो दसों वर्ष तुमको समझाया था कि हुक्का न पीना चाहिए, पर तुम्हारे मन में नहीं उतरा। तुम हुक्का पी रहे हो। तो लडका बोला कि पिता जी यह बताते थे कि हुक्का पीनेकी विधि यह है कि पासमें लड़केको बैठाल लो और उसको कहते जावो कि हुक्का न पीना चाहिए और पीते जावो। तो यह हुक्का पीनेकी विधि है।

अज्ञानीकी धर्मविधि—ऐसी ही संसारके सुख भोगनेकी यह विधि है कि मंदिर आते जावो, वेदीके पैर पड़ते जावो, कुछ काम करते जावो, बैठते जावो। यह विधि है भोगों के भोगनेकी। ऐसा मान रखा है इस मोही जीव ने। जब तक मोहका विष दूर नहीं किया जायेगा तब तक शांतिकी मुद्रा भी दिखनेमें न आयेगी। मोह करते-करते अब तक भी तो शांति नहीं पायी। फिर भी आशा लगाए है कि शांति मिलेगी। वर्तमानका जीवन देख लो—हुए कुछ कृतार्थ क्या कि अब कोई काम नहीं रहा। खूब सुख भोग लिया, बेचैनी वही, क्लेश वही, आकुलता बढ गयी, फिर भी खेद है कि अन्तरमें आशा यह लगाए है कि आगे सुख मिलेगा। इस बात का खेद नहीं है कि आप घरमें रह रहे हैं। यह कोई खेदकी बात नहीं है। खेदकी बात तो यह है कि आशा ऐसी लगाए हुए हैं कि आगे मुझे इस धन वैभव परिवार विषय भोगसे चैन मिलेगी—यह है खेदकी बात। कर्म अपना कुल बढ़ाने के लिए सदा उद्यमी रहते हैं, यह विभाव अपना कुल बढानेके लिए सदा तत्पर रहता है जो कि जड़ है, अचेतन है, चिदाभास है, पर यह चेतन प्रभु अपना कुल बढ़ानेके लिए रंच उद्यम नहीं करता।

अज्ञानीके आद्य दो अपराध—यह जीव अनादि कालसे ही तीन चार अपराधोंमें लग रहा है। पहिला तो यह अपराध है कि जो परिणमन होता है, जो पर्याय मिलती है उसको ही मानने लगता है कि यह मैं हू। दूसरा यह अपराध कि इसही के बलबूते पर यह मान्यता उठ खड़ी होती है कि ये परपदार्थ मेरे हैं। इसमें उदारता नहीं प्रकट हो पायी। चाहे पापका उदय आए तो यह अच्छी तरह ठुक पिट जाय। पर अपने मन

पर, चित्तमें यह उदारता नहीं आ पाती कि मेरा क्या है ? जगतमें यदि किसी दूसरेका उपकार होता है थोडेसे त्यागमें, उदारतामें तो इससे बढ़ कर हमारे लिए खुशीकी बात क्या होगी ?

अज्ञानीका तृतीय अपराध—तीसरा अपराध है परका कर्ता समझ लेना। मैं जो चाहूं सो कर सकता हूं। परका कर्तृत्वका भार इस पर बहुत बुरी तरह लदा हुआ है। और इसी रागमें फसे हुए प्राणी रात दिन बेजार रहते हैं। अमुक काम करनेको पड़ा है। सुबह हुई तो थोड़ा मंदिर जानेका काम पड़ा है, फिर दुकान जानेका काम पड़ा हुआ है, अब अमुक काम पड़ा है। एक न एक काम रहनेकी धुनि इस पर सदा सवार रहती है। किसी भी क्षण यह जीव नहीं देख पाता कि मैं सर्व परपदार्थोंसे न्यारा केवल अपने आपमें अपना परिणमन करता हुआ रहा करता हूं। मैं अपने ज्ञानानन्द आदिक गुणोंके परिणमन करनेके अतिरिक्त और कुछ नहीं कर पाता हूं, ऐसा यह अपनेको अनुभव नहीं कर सकता।

आकिञ्चन्य भावका महत्त्व—अकिंचन माननेमें जो महत्त्व प्रकट होता है वह सकिंचन समझनेसे नहीं प्रकट होता। अकिंचनस्वरूपकी सेवासे आनन्दकी नदियां उमड़ पड़ती हैं। जैसे कि पहाड़ पर कोई पानीका बूँद नजर नहीं आता ऐसे निर्जल पहाड़में से नदियां फूट निकलती हैं पर समुद्र जिसमें लबालब पानी भरा हुआ है उसमें से एक भी नहीं निकलती। जो अपनेको अपने उपयोगमें अकिंचन देखे हुए हैं या अकिंचन जो प्रभु है उनके तो आनन्दकी सरिता बह निकलेगी, किन्तु जो अपनेको सकिंचन माने हुए हैं—मैं घर वाला हूं, धन वाला हूं, सुन्दर-स्वरूप हूं, इज्जत पोजीशन वाला हूं, इस प्रकार जो अपनेको सकिञ्चन मान लेता है वह खारे समुद्रकी तरह है। उसमेंसे आनन्दकी एक भी धारा नहीं बह पाती और जो अपने को अकिञ्चन तका करता है मेरेमें अन्य कुछ नहीं है, मैं केवल निज स्वरूप मात्र हूं, शून्य हूं, ऐसा जो अपनेको अकिञ्चन समझते हैं उन जीवोंमें आनन्द सरिताका प्रवाह बह निकलता है। यह तो धर्म है कि अपनेको सबसे न्यारा केवल ज्ञानानन्दमात्र अनुभव करलें। यह बात हो सकी तो हमने धर्मका पालन किया।

बंधमूल निमित्तनैमित्तिकभाव—यह जीव अनादि कालसे ही अपने-अपने नियत लक्षणोंका ज्ञान न करनेसे परपदार्थोंमें और निज आत्मामें एकत्वका निश्चय करता है और इस एकत्वके निश्चय करनेसे कर्ता होता हुआ यह जीव प्रकृतिके निमित्त अथवा प्रकृतिका निमित्त पाकर अपना उत्पाद और विनाश करता है, प्रकृति भी जीवका निमित्त पाकर अपना उत्पाद और विनाश करती है। इस तरह आत्मा और प्रकृतिमें यद्यपि

परस्पर कर्ताकर्मभाव नहीं है तो भी एक दूसरेका निमित्तनैमित्तिक भाव होनेके कारण दोनोंमें ही बंध देखा गया है।

प्रकृतिविस्तार—प्रकृति बोलते हैं कर्मोंको। कर्मोंके भेदोंमे प्रकृतियां बतायी गयी हैं, सो प्रकृति नाम मात्र कर्मके भेदोंका नहीं है, किन्तु कर्मका भी नाम प्रकृति है और कर्मके भेदोंका नाम भी प्रकृति है। कर्म कितने होते हैं? कर्म आठ होते हैं जाति अपेक्षा, और उन कर्मोंके भेद कितने होते हैं? भेद होते हैं १४८ संक्षेप करके। किन्तु होते हैं अनगिनते। जैसे ज्ञानावरणके भेद ५ हैं—मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मनःपर्यय ज्ञानावरण और केवलज्ञानावरण। तो मतिज्ञानावरणमें कई भेद हो सकते हैं। जितने पदार्थोंका मतिज्ञान रुक सकता है उतने मतिज्ञानावरण होते हैं। जैसे घटज्ञानावरण, पटज्ञानावरण, मंदिर ज्ञानावरण गृहज्ञानावरण, जितने पदार्थोंके मतिज्ञान होते हैं सो उनके आवरण हों तो उतने ज्ञानावरण होते हैं। ये अनगिनते ज्ञानावरण हो गए। इसी तरह श्रुतज्ञानावरण, सभी ये अनगिनते होते हैं। दर्शनाज्ञानावरणमें देखो तो उनके भी इसी तरह अनगिनते भेद हैं। अवधिज्ञानावरणमे जितने पदार्थोंका अवधिज्ञान न हो, जिस निमित्तसे वे निमित हैं उतने ही हैं और भी मोटे रूपसे देखलो।

नाम कर्मकी पर्याय ९३ बतायी हैं। उनमें से किसी भी एक प्रकृति का नाम ले लो। जैसे एक शुभ नाम प्रकृति है, शुभ नाम प्रकृतिके उदयका निमित्त पाकर अग शुभ होता है तो कोई कम शुभ है, कोई अधिक शुभ है इस तरहसे कितनी प्रकारकी शुभ प्रकृतिया हो जाती हैं। वर्ण नामक प्रकृति है। कोई किसी वर्ण का है, कोई किसी और उन वर्णोंके भी कितने की वर्ण हैं, तो कितने भेद हो गए? ये कर्मोंके भेद अनगिनते होते हैं। प्रकृतिकी अपेक्षा और अनुभागकी अपेक्षा अनन्त कर्म होते हैं और प्रदेश की अपेक्षा अनन्तकम होते हैं। प्रकृति और स्थितिकी अपेक्षा असंख्यात कर्म होते हैं।

बन्धन और अवधि—इन कर्मोंका और इन जीवोंका परस्परमें निमित्तनैमित्तिक भाव है, कर्ताकर्म भाव नही है क्योंकि प्रत्येक द्रव्यका परिणमन उसमें ही तन्मय होकर रहता है। कर्मोंका जितना जो कुछ परिणमन है वह कर्मोंमें ही तन्मय होकर होता है। आत्मा और कमका पुरुष और प्रकृति नाम रखा है। जब तक पुरुष और प्रकृतिमे भेदविज्ञान नहीं होता है तब तक यह जीव ससारी है, कर्ता है, भोक्ता है, जन्ममरण की परम्परा बढाने वाला है और जब प्रकृति और पुरुषमें भेद विज्ञान हो जाता है तब वह जीव अकर्ता है, अभोक्ता है। इस ज्ञानी संतकी पद-पद

में, प्रत्येक क्षणमें अपने आपकी ओर उन्मुखता हुआ करती है। सो जब तक यह निमित्तनैमित्तिक भाव चलता जा रहा है तब तक इन दोनोंका भी बंध देखा गया है। जीव और कर्म ये दोनों परस्पर बध गए।

बन्धनमे दोनोका विपरिणमन—यहा ऐसा नहीं जानना है कि यहा केवल जीव ही बँधा है। जीव भी बँधा है और कर्म भी बँधा है। जीव अपने स्वभावकी स्वतंत्रता न पाकर रागद्वेषादिक अनेक पराधीनताके भावोंमें जकड़ा है और ये कर्म अपनी स्वतन्त्रता खोकर जीवके साथ बँधा हुआ है और देखो जीवमें तीव्र अशुभ परिणाम हो तो उदयमें आने वाले कर्मोंकी उदीरणा हो जाती है। जीवमें तीव्र शुभ और निर्मल परिणाम हो तो उदयमें आने वाले कर्मोंकी उदीरणा हो जाती है। इस जीवके विभाव को निमित्त पाकर कर्मोंमें बनना बिगड़ना ऐसी पराधीनता कर्मोंमें भी है।

पराधीनताके विनाशका उपाय—यह पराधीनता कब मिट सकती है जब यह जीव अपने स्वरूप को सभाले कि यह मैं आकाशकी तरह निर्लेप शुद्ध ज्ञायक स्वभावमय चेतन तत्त्व हू। इस मुझ आत्माका किसी भी पर-भावसे कोई सम्बन्ध नहीं है। ऐसा भेद विज्ञान पाकर अपनेको ज्ञानमात्र स्वरूप मानें तो इस जीवका बधन रुकता है। इस आत्माके और कर्मोंके बधनके कारण यह ससार चल रहा है और इस कारण इन दोनोंमे कर्ता कर्मका व्यवहार होता है। भेदविज्ञान होने पर पराधीनताका विनाश होता है।

विचित्र बन्धन—देखो यहा भी कितना विचित्र बंधन है कि परका परिणमन देखकर अपने आपमें अपनी विचित्र कल्पना बनाना। ज्ञानका काम तो यह है कि परकी बातोंको परकी ओरसे देखना, अपनी ओरसे न देखना। अपने विचारोंके मुताबिक परमे परिणमन हो, इस प्रकार नहीं देखना किन्तु जैसा हो रहा हो वैसा उपादान और परिणमन सर्व योग जानकर मात्र ज्ञाता रहना, यही है ज्ञानका काम। देखो सभी जीव अपने अपने भावोंके अनुसार अपनी-अपनी प्रवृत्तिमें लगे है। जो जैसा चाहता है वह वैसा अपना वातावरण चाहता है। किन्तु किसी का वातावरणमें अपना अधिकार नहीं है। अपनेको ही सयत करके अपनेको ही केन्द्रित कर समझाकर अपने आपको अपनी अनाकुलताके अनुकूल बना सकना इस पर तो अपना अधिकार है, किन्तु किसी परजीवके परिणमन पर अपना कोई अधिकार नहीं है।

स्वतन्त्रताके विनाशसे दु खविनाश—भैया! और दु ख है क्या इस ससारमें? पदार्थ हैं और प्रकार और हम मानते हैं और प्रकार। पदार्थ है विनाशीक और हमारे कब्जेमें जो कुछ है उसके प्रति विश्वास बनाए

रहते हैं कि यह अविनाशी है। चीजें मिटती हैं तो औरोंकी मिटा करती होंगी, हमारी नहीं मिटतीं। परिवारके लोग गुजरते हैं तो औरोंके गुजरा करते हैं अपने परिवारके लोगोंमें, ये भी मिटेंगे ऐसी कल्पना तक नहीं उठती। पदार्थ हैं सब भिन्न और अशरण किन्तु जीव अपना शरण पर-पदार्थोंसे मानता है किन्तु कोई शरण न होगा, न माता, न पिता, न भाई न भतीजे। अरे वस्तुस्वरूप कहीं बदल दोगे? क्या उनके गुण और पर्यायें खींचकर तुम अपनेमें रख सकोगे? क्या अपने गुण और पर्याय उनमें रख सकोगे? वस्तुस्वरूप तो नहीं बदल सकता। तब फिर कैसे कोई किसीका शरण होगा? ऐसी स्वतंत्रताका भान जब ज्ञानी पुरुषके होता है तब उसके कर्ता कर्मका व्यवहार समाप्त हो जाता है।

प्रशंसा द्वारा अपराधीकी खोज—स्कूलमें लडके नटखटी हों और कोई लड़का कोई काम बिगाड दे तो मास्टर यों पूछता है कि भाई यह काम बड़ी चतुरायी का दिया है, कितना सुन्दर बना दिया इस चीजको? बड़ी बुद्धिमानी का काम किया है किसीने, किसने इस कामको किया है? तो बिगाड़ने वाला लड़का बोल देता है कि मैंने किया है। लो पकडा गया। कर्तृत्व बुद्धिका आशय आनेसे वह पकड़ा गया। अच्छा सभी भाई अपने घरसे बँधे हैं, अपने परिजनसे बंधे हैं, अपनी तृष्णादिक भावोंसे बंधे हैं, तो भला बतलावो कि ये आजादी से बँधे हैं या जबरदस्ती से बँधे हैं? आजादीसे बँधे हैं। कोई दूसरा जबरदस्ती नहीं कर रहा है। खुद ही राग उठता है और खुद ही बँधते हैं।

निमित्तपना और आश्रयभूतपना—विभाव होनेमें निमित्त कर्मोंका उदय है, बाहरी पदार्थ भावोंमें निमित्त नहीं होते। हमारे रागद्वेषादिक भावोंमें कर्म निमित्त हैं सिर्फ। ये चीजें निमित्त नहीं हैं। इसको बोलते हैं आश्रयभूत। जैसे एक गुहेरा जानवर होता है तो लोग उसके सम्बन्धमें कहते हैं कि जब यह काटता है किसीको तो तुरन्त मूतता है और उसमें लोट जाता है और उसका अपने ही मूत्रमें लोट जाना यह विषको बढ़ाने वाला होता है जिससे दृष्ट पुरुष मर जाता है। तो क्या उस गुहेरामें कुछ ऐसा वैर भाव है कि पुरुष को काटे और तुरन्त मूतकर लोट जाय? ऐसा नहीं है, किन्तु गुहेरेका मूतना इस ही भांतिसे हो कि वह किसी चीज को दबा कर, काटकर ही हो। किसी भी चीजको काटकर मूत्र करे। मनुष्य हो, जानवर हो या कोई लकडी हो। वह यों ही काटकर अपने मूत्रमें लोटता है। सो ये रागद्वेष जो उत्पन्न होते हैं वे कर्मोंके उदयका निमित्त पाकर होते हैं। इन बाहरी विषयभूत पदार्थोंका निमित्त पाकर नहीं होते। ये निमित्त ही नहीं होते, किन्तु कर्मोंका निमित्त पाकर उठ

सकने वाले रागद्वेषादिकके समय जो हमारी पकड़में आ गया, आड़में आ गया, ज्ञानके विषयमें आ गया बस उसका उपयोग बनाकर हम राग-द्वेष कर डालते हैं। इसी कारण चरणानुयोगकी पद्धतिसे बाह्य पदार्थोंका त्याग करना बताया है।

त्यागका प्रयोजन—बाह्य पदार्थोंका त्याग करने से परिणाम शुद्ध हो ही जाएँ ऐसा नियम तो नहीं है, पर रागद्वेष उत्पन्न होनेके आश्रयभूत हैं परपदार्थ। सो ऐसा यत्न करते हैं कि इस आश्रयभूतसे दूर रहें तो नो कर्म न रहनेसे ये कर्म निष्फल हो सकते हैं। तो निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध जीवके विभावोंका कर्मोंके साथ है इन बाह्य पदार्थोंके साथ नहीं है। तभी तो कुछ ऐसी शंका हो जाती है। जो इस बाह्यपदार्थको भी निमित्त मानते हैं कि देखो अमुक निमित्त मिला और फिर भी क्रिया नहीं हुई। अरे वह निमित्त है कहां, वह तो आश्रयभूत है। क्या कभी ऐसा अटपट परिणमन देखा सुना कि क्रोध प्रकृतिका उदय आ रहा हो और यह जीव मान कर रहा हो? नहीं, तभी तो निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध यह है, पर निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध होने पर भी पदार्थोंके स्वरूप पर दृष्टि दें, उनके अस्तित्वको देखें तो वहां कर्ता कर्म सम्बन्ध नहीं है। कर्म जीवमें कुछ भी कार्य नहीं कर सकते हैं, जीव कर्ममें कुछ भी कार्य नहीं कर सकते हैं।

स्वतन्त्र परिणमन—भैया! जीव जो करेगा सो अपना कार्य करेगा। कर्मोंमें जो परिणमन होगा सो उसका अपना होगा, पर इन दोनोंमें परस्पर निमित्तनैमित्तिक भाव है। जैसे मोटे रूपमें अभीका दृष्टांत लो। आपने पूजा वालोंको रोका तो वे और जोरसे बोलने लगे और पूजा वाले जोरसे बोलने लगे तो आपमें और रोष आने लगा। इस सम्बन्धमें आपका पूजकोंने कुछ नहीं किया, आप अपनेमें ही कल्पना बनाकर हाथ पैर पीटकर बैठ गए और पूजकोंका आपने कुछ नहीं किया, वे भी अपनी शान समझकर अपनी कल्पनासे अपने आप और जोरसे चिल्लाने लगे। हम आप अपने परिणमनसे अपनी चेष्टा करने लगे, वे अपने परिणमनसे अपनी चेष्टा करने लगे। ऐसा ही सब जगह हो रहा है, घरमें भी ऐसा ही होता है। एक पदार्थ दूसरे पदार्थका कुछ भी परिणमन कर सकनेमें समर्थ नहीं है। पर निमित्तनैमित्तिक भावका खण्डन भी नहीं किया जा सकता। न हो निमित्तनैमित्तिक भाव तो बतलावो यह सारा संसार कहां से आ गया? कैसे हो गया?

अपनी दृष्टि—भैया! हैं ये सब पर, अपना कर्तव्य तो यह है कि ऐसी दृष्टि बनावो जिस दृष्टिके प्रतापसे संसारके ये सब संकट टल जाएँ। वह दृष्टि क्या है? निमित्तकी दृष्टि बनानेसे संकट नहीं टलते। हैं वे

निमित्त, पर उनकी दृष्टिसे संकट दूर नहीं होते। संकट दूर होंगे तो एक अद्वैत शुद्ध निज ज्ञायक स्वभावकी उपासनासे संकट दूर होंगे। धर्मके पदोंमें चतुर्थगुणस्थानसे लेकर जहां तक बुद्धिपूर्वक यत्न है, अथवा जहां अबुद्धि पूर्वक भी यत्न है, मोक्ष मार्गके लिए वहां केवल एक ही काम हो रहा है। वह क्या काम ? अपने सहजस्वरूपका आलम्बन। जहां जानन हो पाता है वहां हमारे धर्मका पालन है। पूजा करते हुए में जितनी दृष्टि अपने शुद्ध स्वभावकी रुचि लेकर अपने आपमें मग्न होनेके लिए चलती है उतना तो धर्मपालन है और जितना यहां वहांके बाहरी लोगोंको देख कर पूजामें उत्साह और चिल्लाहट बढ़ती है वह तो धर्मका पालन नहीं है।

अज्ञानी और ज्ञानीकी भक्ति--भगवानकी मुद्राको देखकर यदि शांति रसकी ओर हम चलते हैं वह तो है भगवानकी पूजा और चार आदमियों को दिखाकर यदि हम कुछ लयके साथ जोरसे पूजा पढने लगते हैं तो वह है चार आदमियोंकी पूजा। जिसका जहां लक्ष्य है उसकी वही तो पूजा कहलाती है। यह शांति रसका परिणामी भगवानके गुणोंसे प्रेम कर रहा है। तो यह राग और चिल्लाहटसे अधिक बोलने वालेके उन चार व्यक्तियोंके गुणों पर आसक्ति है, ये लोग जान जायेंगे कि ये बडे भक्त हैं तो हम कृतकृत्य हो जायेंगे, उसके मनमें यह परिणाम है। और इस शांति रसके प्रेमीके हृदयमें यह परिणाम है कि प्रभु जैसी शान्त छवि निष्कषाय परिणाम निज आनन्दरसमें मग्नता यदि मुझमें आ सके तो मैं कृतकृत्य हो जाऊँगा।

रागका विपाक--यह जीव स्वभावसे यद्यपि अकर्ता है। जीवका स्वत: परिणमन ज्ञाता द्रष्टा रहनेका है। तो भी अनादि कालसे अज्ञान भावके कारण परमें और आत्मामें एकत्व बुद्धि होनेसे लो यह भी मिट रहा और ये भी मिट रहे हैं। पुरुष और स्त्रीमें परस्परमें राग होता है तो लो पुरुष भी बरबाद हो रहा है और स्त्रीका भी आत्मा बरबाद हो रहा है ? भाई भाईमे यदि यह सासारिक राग बढ़ रहा है तो वहां यह भी बरबाद हो रहा है और वह भी बरबाद हो रहा है। राम भगवान और लक्ष्मण नारायण इन दोनोंमें कितनी प्रीति थी ? भाई-भाईकी प्रीतिका इतना जबरदस्त उदाहरण राम और लक्ष्मणका ही है। इतना स्नेह करके रामने कौनसा आराम लूटा और लक्ष्मणने कौनसा आराम लूटा ? लक्ष्मणका रामसे स्नेह होनेके कारण हार्ट फेल हो गया था और रामको लक्ष्मणसे स्नेह करनेके कारण कुछ कम ६ माह तक विभ्रममें रहना पड़ा था तो परस्परमें स्नेह करनेसे क्या आराम लूट लिया यही ? हालत सबकी

हैं। रागके फलमें केवल क्लेश ही हाथ आयेंगे, आनन्द हाथ न आयेगा।

आत्माकी प्रभुता—आत्माकी प्रभुता स्वच्छ ज्ञाता द्रष्टा रहनेमें है। परन्तु अज्ञानी जीव अपनी सहज प्रभुताको भूलकर विकल्प करनेमें व भोगने और परके अधिकारी माननेमें अपनी प्रभुता समझने लगे। ये कर्ता भोक्ताके विकल्प प्रभुताकी हीनता करने वाले हैं। लेकिन मोहका अज्ञान जो छाया है इस कारण इस जीवको इन ही दुष्कल्पनाओंमें अपनी बुद्धिमानी मालूम होती है। आचार्यदेव कहते हैं कि उसे मैं करूँगा, मैं करता हू, ये सब विकल्प, ये सब बातें निन्दाकी हैं। प्रशसाकी नहीं हैं, जब कि लोग इसही पर झुकते हैं कि यह बात प्रसिद्ध हो कि मैंने किया। जब कि जैन सिद्धान्त और वीरका सदेश अध्यात्मयोगमें यह है कि अपनेको अकर्ता मानो। जब कि अपराधी मोही जन जगतके मायामय पुरुषोंको जन्म मरणके दु ख भोगने वाले जीवोंको अपना कर्तापन जताने का बड़प्पन समझते हैं। आत्माकी प्रभुता है समस्त विश्व ज्ञानमें आता रहे, ज्ञानका पुञ्ज रहे, उपयोगसे ऐसा ही वह ध्रुव अविचल सामान्य ज्ञानस्वरूप अनुभवमें आता रहे कि यह उपयोग इसके ज्ञेय ज्ञानस्वरूपमें मग्न हो जाय, ऐसा जो समतारसका और अनुपम आनन्दका अनुभव है, यही है आत्माकी प्रभुता।

अन्त स्पर्शके लिये प्रेरणा—भैया! जब तक यह जीव शुद्ध आत्माके सम्वेदनसे च्युत रहता है और प्रकृतिके नृत्यके लिए प्रकृतिके निमित्तको पाकर यह रागादिक भावोंको करता है, तब तक यह बँधता है, दु ख भोगता है, स्वरूपको नहीं अनुभवता है। दु खसे दूर होना हो तो अपने स्वरूपका आदर करें और औपाधिक जो विकल्प हठ कषाय विषय इच्छा जो कुछ अनर्थ भाव हो रहे हैं, इनसे विश्राम लेकर कुछ अपने अन्तरमें उतरें। क्या यह जीवन केवल विषय कषायोंके लिए है। किसके जीवनमें ऐसे दो चार अवसर नहीं आए कि उसही समय इस देहको छोड जाते। यह गर्भ में भी मर सकता था, जन्मते समयमें भी मर सकता था, अब बड़ी उम्रमें भी पानीमें अग्निमें दंगोंमें अनेक ऐसे प्रसग आए होंगे जिसमें आयु समाप्तिकी सम्भावना न थी। यदि तभी गुजर गए होते और गुजर कर किसी परभवमें जन्म ले लिया होता तो यहाके मकान वैभव, यहाके समुदाय फिर अपने लिए कुछ होते क्या? यदि आयु सयोगवश अब भी जीते बचे हुए हैं तो कर्तव्य है कि जितना जल्दी हो सके आत्मज्ञान करें। जब तक यथार्थ ज्ञान नहीं होता तब तक यह जीव अज्ञानी है, मिथ्यादृष्टि है और असयमी है। इस ही तत्त्वको कुन्दकुन्ददेव अब दो छदोंमें कह रहे हैं।

जा एसो पयडीयट्ठ चेया रोव विमुंचए।
अयाणओ हवे ताव मिच्छा इट्ठी असंजओ ।।३१४।।

जया विमुंचए चेया कम्मप्फलमणंतयं।
तया विमुत्तो हवइ जाणओ पासओ मुणी ।।३१५।।

मिथ्या आशय—जब तक यह जीव पदार्थोंके प्रतिनियत लक्षणोंका ज्ञान न होनेसे अपनी प्रकृतिके स्वभावको जो कि अपने आपके बंधनका कारण है नहीं छोड़ता तब तक इसे स्व परका एकत्व ही ज्ञात रहता है इस कारण अज्ञानी ही कहलाता है। हमारा स्वभाव है ज्ञाता द्रष्टा रहना और प्रकृतिका स्वभाव है कि अपनेको बंधनमें और दुःखमें डालना। कैसा बिगाड़ हुआ है इस जीवका कि इस जीवमें एक विचित्र प्रकृति भी पैदा हो गयी भावप्रकृति, जिसके बंधनमें पड़ा हुआ यह जीव निरन्तर आकुलित रहता है। अपने और पराये पदार्थोंमें उस एकत्वस्वरूपका ही विश्वास बनाए है जिसके कारण यह जीव मिथ्यादृष्टि है। मिथ्यादृष्टिका अर्थ है संयोगदृष्टि। मिथ्या, मैथुन, मिथुन, संयोग ये सब एक ही अर्थके बताने वाले हैं मिथ् धातुका अर्थ है सम्बन्ध। सम्बन्धकी दृष्टि हो, इसे कहते हैं मिथ्यादृष्टि।

मिथ्यात्वनाशका उपाय—मिथ्यात्व कैसे मिटे? इसके लिये यह ध्यान में आए कि किसी पदार्थका किसी पदार्थके साथ सम्बन्ध नहीं है। तो मिथ्यात्व मिट गया। जो जैसा है उसे वैसा ही मान सके, लो मिथ्यात्व मिट गया। जो जैसा है उसे वैसा न मान सके, सो मिथ्यादर्शन है। निज निज ही है और पर पर ही है, इनमे विविक्तता न समझकर स्व, परको एक ही बात माने, इसके मायने है मिथ्यादर्शन। यह गृहस्थावस्था अनेक विकल्पजालोंसे भरी हुई है। किसी भी सुख चैनकी जरा स्थिति पर पहुंच भी जाय तो कुछ नये विकल्प और खड़े कर लेता है। तो सम्बन्ध मानने का नाम है मिथ्यादर्शन। मिथ्यादर्शन कहो, मोह कहो, अज्ञान कहो एक ही बात है। बस सम्बन्ध न मानिये, यही मिथ्यात्वनाशका साधन है।

अज्ञान और मोह मिथ्यादर्शनके नामान्तर—एक ही चीजको भिन्न-भिन्न पर्यायोंसे देखते हैं तो भिन्न भिन्न शकलें मालूम होती हैं, इस विपरीत आशयसे हमे ठीक ज्ञान नहीं होता, इसी ढंग मे जानते है तो इसका नाम है अज्ञान। इसी विपरीत आशयको इस प्रकार देखो कि यह सम्बन्ध माने हुए है इस दृष्टिसे देखते हैं तो उसका नाम है मिथ्यादर्शन। इस विपरीत आशयको जब इस ढंगसे देखते हैं कि देखो यह कैसा बेहोश है कि ज्ञानानन्दनिधान निज तत्त्वका इसे परिचय ही नहीं हो पा रहा है। तो इसका नाम होता है मोह।

मोहके परिहारकी कठिनता—यह मोह परिणाम ही इस जीवका घात करने वाला है और यही छोड़ा जाना कठिन हो रहा है। जैसे चूहोंकी सभामें सम्मिलित होकर बिल्लीके उपद्रवोंका बखान करलें, चर्चा करलें कि बिल्लीके गलेमें घंटी बँधी होती तो उसके आ जाने पर अपन लोगों को खबर हो जाती। बिल्ली जब आयेगी तो घंटीकी आवाज सुनकर अपन बिलमें घुस जायेंगे, सुरक्षित हो जायेंगे, इसी तरह मनमें खूब आता है सबके कि इस मोहमें बड़े उपद्रव हैं। इस मोह उपद्रवको समाप्त करना चाहिए। अरे लगता क्या है? घर ही बैठे रहें, केवल जानना भर है सही। किन्तु सही न जानकर पर-परमें ही लग रहे हैं और उनकी ही ओर बढ़े जा रहे हैं। यह मोहत्याग ही तो एक कठिन लग रहा है, पर कठिन है नहीं।

आत्मावधानका ध्यान—जहां यह कहा गया है कि जैन सिद्धान्तका लाभ लेना है तो अपरिग्रह बुद्धि रखो। पर परिग्रह बुद्धि और जकड़ी जा रही है जहां यह बताया गया है कि कीड़े मकौड़े एकेन्द्रिय आदि जीवों पर भी करुणा बुद्धि रखो, वहां पचइन्द्रियोंका भी गौरव न रखनेका भाव रखकर बरबाद हुए जा रहे हैं। कितनी विपरीत प्रवृत्ति आजके जगतमें हो रही है? जैसे सरकारी स्थानोंपर अच्छे सुन्दर अक्षरोंमें लिखा रहता है "भ्रष्टाचार पाप है" इसके करनेसे देशकी हानि है। ऐसा लिखा रहता है फिर भी उसी जगह भ्रष्टाचार होते रहते हैं। इसी तरह यह मनुष्य बातें बहुत कहता है धर्मके लिए, पर जग नहीं पाता है। ऐसा मोहका तीव्र नशा पड़ा हुआ है। फल क्या होगा, पछतावा मिलेगा। वियोग होगा। कहींको कोई, कहीं को कोई चला जायेगा, और इस मोहकी नींदमें इस मायामय मूर्तियोंको निरखकर विकल्प बनाए गए हैं जिनमें आकुलता भरी रहती है। भैया! यह जीव विकल्प करके दुःखी होता है। जब अज्ञान लगा हुआ है और मिथ्यादृष्टि हो रही है तब स्व और परकी एकतारूपसे परिणमन भी यह जीव कर रहा है। कर नहीं सकता एक भी परिणमन किन्तु विकल्पमें मान रहा है यह। इस तरह यह जीव असयमी होता है और तभी तक पर और अपनेमें एकत्वका निश्चय करनेसे कर्ता बन रहा है।

कर्तृत्वके आशयकी निःसारता—एक सेठ ने बहुत बड़ी हवेली बनायी थी, हवेली बनाकर उसके महान् उद्घाटनका प्रोग्राम रखा। समस्त नगर-वासियोंको बुलाया गया। बड़े ढंगसे सभा की गयी। कवि-सम्मेलन विद्वानोंके भाषण, धार्मिक समारोह आदि अनेक प्रोग्राम रखे। उनके बीच वह सेठ बोलता है कि भाई इस हवेलीमें यदि कोई त्रुटि हो तो बतलावो,

उस त्रुटिको निकलवा दें। चाहे कोई हवेलीका हिस्सा गिरवाकर ठीक करना पडे, वह भी ठीक करवा दिया जायेगा। अभिमान पोषनेके अनेक ढग होते हैं। कोई अभिमान विधिवचन कह करके पोषता है, कोई मना करके भी। अजी मैं क्या करता हूं, आप सबकी कृपा है। ऐसे आशयमें भी यह बात बनी हो सकती है कि ऐसा तो ये जान रहे ही हैं कि इन्होंने यह चीज बनाई, अब साथ ही यह भी जान लें कि देखो इतना बडा काम करके भी कितना नम्र पुरुष है। तो कहां बचकर जाय। यदि अन्तरमें कषायका उदय है तो उसीके अनुरूप तो प्रवृत्ति होगी। सो सबने कहा कि सेठ जी यह तो बहुत ऊँची हवेली बनी है, इसमें कोई त्रुटि नहीं है, सब जगह बड़ी शोभा है, बड़ी सुन्दरता है।

एक मानो कोई जैन ही उठा और बोला सेठ जी! हमें तो इसमें दो गलतियाँ जबरदस्त मालूम होती हैं। सेठ अपने इंजीनियरोंसे कहता है कि इनकी बात सुनो। ये दो गलतिया बताते हैं, उनका जल्दी सुधार करो। अच्छा साहब। अब वह गलती बताना शुरू करता है। सेठ जी इसमें पहिली गलती तो यह मालूम हो रही है कि यह हवेली सदा न रहेगी। अब इजीनियर लोग सुनकर दग हो गए। इस गलतीको कैसे मिटाए? अच्छा बतावो श्रीकृष्ण जी की हवेलियां महावीर स्वामीकी हवेलियां, रामचन्द्र जी की हवेलियां किसीने देखी है। रही भी हैं क्या? खूब पक्के मकान बनवाये होंगे, पर आज उनका पता भी है क्या? तो सेठ जी एक गलती तो यह है कि यह हवेली सदा न रहेगी। सेठ जी और इजीनियर आखें फाड़ फाडकर सुन रहे हैं, पलक हो नीचेको नहीं गिरतीं। आश्चर्यमें भर गए। अफसोसमें आ गए कि यह गलती कैसे मिटाई जाय? अच्छा भाई एक त्रुटि तो यह है, दूसरी त्रुटि बतलावो। सेठ जी, इसमें दूसरी त्रुटि यह है कि इस मकानका बनाने वाला भी सदा न रहेगा।

त्रुटि और नखरा— भैया! प्राय सब ही के साथ ये दोनों त्रुटिया लगी हैं। किस पर नखरा बगराया जाता है। किस पर अभिमान पोषा जाता है। नखरा किसे कहते हैं जानते है आप लोग। न खरा इति नखरा। जो बात खरी न हो उसका नाम नखरा है। कितना अभिमान पोषा जा रहा है। अभिमान के आश्रयभूत बातें ८ होती है। एक तो ज्ञानका सबसे बुरा अभिमान है, जो ज्ञान अभिमानके नाश करने के लिए हुआ करता है उस ही ज्ञानसे अभिमान पोषा जाय तो कितना बड़ा अभिमान है? केवलज्ञान होनेसे पहिले किसको कहा जाय कि यह पूर्वज्ञानी है। सब अधूरे हैं। अभिमानका दूसरा साधन है प्रतिष्ठा। दसो आदमी बात पूछने लगे तो अब लम्पाकी तरह ऐंठे जा रहे हैं, और यदि न उदय होता इतना

अच्छा तो हाथ जोड़-जोड़कर मरते या नहीं मरते, बतावो। मिल गया सुयोग तो उसका क्या अभिमान करना ? तीसरी अभिमानकी बात होती है अच्छे कुलमें पैदा हो जाना। लोग श्रेष्ठ कुलमें पैदा होनेका भी तो अभिमान करते हैं। अजी मैं अमुक कुलका हू। अरे जो जिस कुलमें उत्पन्न होता है उसका कुल भले ही नीच हो, अत्यन्त नीचकी बात छोड़ो जिसमें पैदा हुआ पुरुष भी मान सके कि हम छोटे कुलमें पैदा हुए हैं, किन्तु प्राय· सभी अपने कुलको श्रेष्ठ मानते हैं। तो कुलका अभिमान, जातिका अभिमान। जाति क्या कहलाती है ? मां जिस घरमें पैदा होती है उस घरका जो कुल है वह जाति कहलाती है। मेरी मा बडे ऊचे घराने की है, ऐसा अभिमान होना यह जातिका अभिमान है। बलका अभिमान मैं बलवान हू, इसी प्रकार तपका अभिमान, ऋद्धिका अभिमान, शरीरकी सुन्दरताका अभिमान।

अभिमानका कटु फल- भैया ! इन सब अभिमानोंके कारण एक दूसरेको तुच्छ गिनते हैं, और जहां एक दूसरे को तुच्छ गिना वहां विवाद और विपदाएँ खड़ी हो जाती हैं। सामर्थ्य होते हुए भी उस सामर्थ्यका उपयोग न कर सके, यह फूट राक्षसीका प्रसाद है और व्यर्थकी कुबुद्धि, जिससे सर्वसम्पन्नता होकर भी उसका आराम नहीं भोगा जा सकता है। ये एक ही धर्मके मानने वाले भी भाई-भाई गोत्र भिन्न भिन्न जाति का ख्याल रखकर परस्परमें एक दूसरेको किसी प्रकार तुच्छ देख देखें तो बहुत ही खेदकी बात है। हम दूसरोंका आदर करेंगे तो दूसरे भी आदर करेंगे। हम दूसरेको तुच्छ गिनेंगे तो दूसरे भी तुच्छ गिनेंगे। भला आप किसीसे सत्कारतासे भरे सत्कारपूर्ण वचन बोलें और वह आप से कटुतासे पेश आए, ऐसा प्राय· नहीं होता है। और आप किसीके प्रति कटुतासे पेश आएँ और वह आपको फूलोंकी माला पहिनाए, यह भी कठिन बात है।

विचारकी सावधानी—यह तो हुई वचनोंकी बात, जिसका असर सीधा पड़ता है पर ऐसी ही बात मनकी होती हैं। आप सबके सुखकी बात सोचेंगे तो सब आपके सुखकी बात सोचेंगे, और आप सबके क्लेश की बात सोचेंगे तो सब भी क्लेशका दाव देखेंगे। इन सब पर्याय बुद्धियों को समाप्त करके एक अपने आनन्दमय ज्ञानपुञ्ज सहज स्वभावका दर्शन तो मिले, हिम्मत बनाकर भूल जावो इन समस्त बाह्य चेतन और अचेतन के संगको। आपका एक अणु भी कुछ नहीं है, रचमात्र भी कोई पदार्थ अपना नही है। वस्तुके स्वरूपको देखलो।

आत्माका विशुद्ध स्वरूप—इस सर्व विशुद्ध अधिकारमें सबसे पहिले

मूलभूत यह बात बतायी गयी है कि प्रत्येक द्रव्य जिस-जिस पर्यायसे परिणत है, वह उस-उस पर्यायसे ही तन्मय हो सकता है, किसी अन्य पदार्थकी पर्यायसे रंच भी नहीं मिल सकता है। इस मूल उपदेशने सारे विवादको खतम कर दिया। जब वस्तुकी स्थिति ऐसी है तो वहां सम्बन्ध की गुञ्जाइश क्या और कर्ता कर्म माननेकी गुञ्जाइश क्या? मैं ज्ञानमात्र हू, केवलज्ञानकी क्रिया करता हूं। और विभाव में हू तो चाह आदिकी भी क्रियाएँ कर लेता हू, पर इसके अतिरिक्त और कुछ करनेमें समर्थ नहीं हू।

भेदविज्ञानका प्रताप—जब ही यह जीव भिन्न-भिन्न स्वलक्षणोंका ज्ञान होनेसे प्रकृति स्वभावको छोड देता है, तब ही यह जीव निजको निज परको पर जाननेसे ज्ञानी होता है। और ऐसा ही भिन्न-भिन्न स्वतन्त्र-स्वतंत्र निरखनेसे सम्यग्दृष्टि होता है, और फिर परसे उपेक्षित होकर अपनी शुद्ध वृत्तिसे परिणम कर यह सयमी बनता है, जब पर और निज के एकत्वका अभ्यास नहीं करता तब यह जीव अकर्ता हो जाता है। अपनेसे शुद्ध केवल ज्ञानमात्र निहारना, यह यदि बन सका तो इससे बढ़ कर न कुछ सम्पदा है और न कुछ पुरुषार्थ है। इस कारण सर्व यत्न करके विनाशीक तन, मन, धन, वचनको न्यौछावर करके एक अपने आपके अन्तरङ्ग स्वरूपका भान करनेमें लग जायें, इस आत्मज्ञानसे ही इस नर जन्मकी सफलता है। सब कुछ पाया पर एक यह आत्मज्ञान न पाया तो सर्व बेकार हैं।

प्रभुतावाधिनी अज्ञानवृत्ति—इस प्रकरणमें यह बताया जा रहा है कि आत्मा तो स्वरूपसे सर्व विशुद्ध है। इसमें एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय आदिक पर्यायोंकी बात लपेटना और रागद्वेषादिक विभावोंकी बात कहना, इसकी प्रभुताको बरबाद करना है। यह आत्मा अपने आप अपने सत्त्वके कारण केवल ज्ञानज्योतिर्मय अनन्त अनाकुलता स्वरूप अकर्ता, अभोक्ता, बध मोक्षकी कल्पनासे रहित केवल ज्ञानपुञ्ज है। अनादिसे अनन्त काल तक केवल शुद्ध चैतन्यस्वरूप है। शुद्धका अर्थ है किसी परद्रव्यको ग्रहण किए बिना अपने स्वरूप मात्र होना। सो इस आत्माका स्वरूप सदा अंतरमें एकरूप चला आ रहा है। परन्तु यह कितनी अज्ञानकी विचित्र महिमा है कि सारा इसका चमत्कार विपरीत हो गया है। सारा मामला उलटा हो गया है। जैसे कोई बात करता जाय, सही सही बात हो, फिर भी कोई ऐसी अधिक चूक बन जाय कि सारा मामला उलटा हो जाय, इस तरह यह सब विपरीत मामला चल रहा है जीवका।

विडम्बना और कल्याणका हेतु—ये सब विडम्बनायें एक अपराधके ही कारण हैं। वह क्या कि निजको निज परको पर न जान सका और

जब निजको निज परको पर जान लिया तो सारे उल्टे किए हुए अनादि के मामले एकदम सही रूपमें परिणत हो जायेंगे, ये सब रपट टल जायेंगे। जैसे कोई वकील हो, न्यायालयमें कुछ बात कहता जाय, यदि सारीकी सारी बातें अपने पक्षके विपरीत हो जायें और मामला खराब हो जाय। शुरूसे अंत तक यहा वहाकी बकता रहा। नशेमें था, था ज्ञानी। जब वह नशा कम हुआ और चेत आया कि मैंने तो सारी बातें उल्टी कह डालीं तो जजसे कहता है कि सुनिये जज साहब हमारे पक्षके विरुद्ध कोई भी वकील जितनी बातें कह सकता था उतनी बातें अभी बतायीं, अब उन सबका निराकरण सुनिए, लो अब सारी की सारी बातें सही हो जायेंगी। तो इसी तरह अनादिकालसे स्व और परके एकत्वका अभ्यास करके यह जीव कुयोनियोंमें जन्ममरणके दु ख भोग रहा था। एकाएक ज्ञानज्योति चमकी, सत्यस्वरूप जाना, वस्तुकी सीमा पहिचानी, परभावका त्याग किया, अपने स्वभावमें आया कि अब इसका सब कल्याणरूप प्रवर्तन होने लगा।

अज्ञान और ज्ञानमे आदरका विषय—भैया ! अज्ञान दशामें विकल्पोंका आदर था, चेतन अचेतन सबका आदर था, परतु ज्यों ही उसके निर्विकल्प अवस्थामें हितकी बुद्धि प्रकट हुई और नि.शक अत्यन्त एकाकी स्वरूपमें रहनेका भाव हुआ, अब वह अपने स्वरूपमें समानेकी धुनिमें लग गया है। तो जब तक यह जीव अज्ञानी रहता है तब तक तो यह कर्ता और भोक्ता है और जब अज्ञान दूर हो जाता है, वस्तुकी स्वतंत्रता पहिचान लेता है तब इसका कर्ताकर्मभाव समाप्त हो जाता है और जैसे कर्तापन जीवका स्वभाव नहीं था पर अज्ञानसे कर्मका कर्ता बन गया, इसी तरह भोक्तापन भी जीवका स्वभाव नहीं था किन्तु अज्ञानसे यह कर्मफल का भोक्ता बन रहा है। अज्ञान न रहे तो यह स्वरसका भोक्ता होकर अपने अनन्त आनन्दमें मग्न हो जायेगा। बस, दो ही तो निर्णय हैं। एक ज्ञानका विलास और एक अज्ञानका विलास।

अज्ञानमें अस्थिर कल्पनायें—आज जो लड़का आपके घरमें है और पड़ौसीके यहा मरकर जन्म ले ले तो उससे तो आपकी प्रीति नहीं रहती। और आज ऐसे लड़के से जिससे कि नफरत है, आप जिसे पराया जानते हैं वह मरकर आपके घरमें जन्म ले तो आप उससे ममता करने लगते हैं। अरे जो अच्छा हो उसे ही अपना मान लो। पैदा हुए व कुछ बड़े हुए बच्चेका कुछ अच्छेपनका तो पता पड़ेगा, किन्तु अच्छा हो या बुरा हो कैसा ही हो, पैदा होनेसे पहिले ममता हो गयी। हमारा बच्चा होगा। तो जब तक यह अज्ञान रह रहा है तब तक यह जीव दु खी है।

चैतन्यमहिमा—यह आत्माराम केवल चैतन्यमुद्राका धारी है और अपने आपमें वसा हुआ जो ध्रुव धर्म है ज्ञानप्रकाश, उसका अधिकारी है। यह औपाधिक भावसे परे रहनेके स्वभाव वाला है। कर्मफलोंके भोगनेका इसका स्वभाव है ही नहीं। जो इसे पहिचानते हैं उनको यह प्यारा है, यह केवलज्ञानसे जाना जाता है। ऐसा हृदय इस आत्मस्वरूप को नहीं जान सकता कि जाप भी दे रहे, पूजा भी कर रहे, पर घरकी खबर आ रही है, धनकी, परिवारकी भी खबर आ रही है। ऐसी परदृष्टि की तीव्रता वाले पुरुषोंके यह ज्ञाननिधान आत्मा भगवान प्रकट नहीं होता। यह समस्त परपदार्थोंसे भिन्न है। जो इस आनन्दमय अपने स्वरूपको तक लेता है वह इस जगतसे विरक्त रहता है, उसके ममत्व नहीं होता।

वस्तुविज्ञान—भैया! वस्तुस्वरूपके विज्ञानकी महिमा अतुल है। यदि यह वस्तुविज्ञान न मिले तो यह सर्वत्र दु:खी ही दु:खी है। ठहर तो सकता है नहीं यह अपनेमे, शाति पायेगा कहां? जो जीव शाति पाते हैं वे अपने आपमें समाते हुएकी पद्धतिसे पाते हैं। परकी ओर झुके हुआ कोई सतोष नहीं प्राप्त करता। तो परसे उपेक्षा करके अपने इस आत्मस्वरूप को देखो और इन सर्वजालोंसे उठकर मुक्त होओ। प्रभु वीरके भक्त हम तब कहायेंगे जब प्रभु वीरके उपदेश पर हम चलें। उनका उपदेश यही तो है कि ऐसा ज्ञान प्राप्त करो जिससे विषय और कषायके उपयोग दूर हों। यही मुक्तिका उपाय है। धनकी तृष्णा करनेके वजाय ज्ञानकी तृष्णा करो। देखो जिसकी जिसमें रुचि है वही तो उसे प्रिय है। कोई कहता है कि शक्कर मीठी होती है, कोई कहता है कि दाल मीठी है, कोई कुछ मीठी बताता है, तो जिसका जहां मन लग गया वही मीठा उसे लगता है। जरा ज्ञानकी उन्निनीषा उत्पन्न तो हो, देखो कितना आनन्द आता है?

ज्ञानकी हितकारिता व स्वाधीनता—भैया! धनकी कमाई तो है पराधीन, पर ज्ञानका अर्जन है स्वाधीन। धनकी कमाईमें तो है शका, बीचमें नष्ट हो जाय, कोई छुड़ा ले, लूट ले, पर ज्ञानकी कमायीमें शका नहीं, कोई लूट नहीं सकता है। तो जरा धन और ज्ञान इन दोनोंका मुकाबला तो करो। ज्ञानमें तो आदिसे अंत तक लाभ ही लाभ है और धनमें लाभ नहीं है। मान लिया कि मैं अच्छा हू, मेरी इज्जत है, पोजीशन है और धन से क्या हो सकता है? मानपोषण। अभी जो भिखारी लोग भीख मागते हैं वे २०-५० जब इकट्ठे होते हैं तो उनमें जो अच्छे ढंगसे भीख मागना जानता है, जिसने सबसे ज्यादा भीख माग लिया वह उनमें से अपनेको महान् समझता है। वह समझता है कि ये सब मुझसे छोटे हैं। तो कहां अपना सुख ढूंढ रहे हो, मुकाबला तो करो जरा धनका और ज्ञानका।

लक्ष्मी व सरस्वतीका प्राय' अमिलन—पंडित विद्वान् कवि लोग ये फक्कड़ देखनेमें लगते हैं, किन्तु सन्तोषधन से भरपूर हो सकते हैं ये। कहते हैं ना कि लक्ष्मी और विद्याकी हमेशा लड़ाई रही, जहां उल्लू वाहन हो वहां हंसवाहन नहीं रहता। लक्ष्मी की सवारी क्या बताथी? लक्ष्मी उल्लू पर सवार रहती है और सरस्वती हंस पर सवार रहती है। ऐसे विरुद्ध सवारी वाले ये दोनों इकट्ठे कहा मिलेंगे? अभी कुछ यहीं देख लो कि संतुष्टि अत प्रसन्नता सरस्वती याने ज्ञानकी ओर झुकनेमें रहती है या लक्ष्मीकी ओर आंख फाड़नेमे रहती है? अरे कोई यह सुनकर बुरा न माने, वे समझले कि हम लक्ष्मी वाले हैं, नहीं तुम अपने आपको यह समझ लो कि हम लक्ष्मी वाले हैं ही नहीं। फिर बुरा कैसे लगे? अपनेसे विशाल धनिकों पर दृष्टि दो फिर आप किसे कहेंगे कि यह धनी है? उसे धनी कहोगे तो उससे बडे धनीका मुकाबिला कर लो। नाम फिर बनावो भैया, आप लोग कोई कमेटी बनालो और निर्णय करलो कि किसको धनी कहा जाय? कर लो निर्णय। और निर्णय हो जाय तो हमे भी बता दो, क्योंकि हमें जगह-जगह जाना पड़ता है तो हम लोगोंको सुना देंगे। क्या आप लाख वालेको धनी कहेंगे? जरा लाख वालेके सामने किसी करोड़पतिको खड़ा कर दो तो लो वह लखपति उसके सामने गरीब हो जायेगा।

ज्ञानमे सर्वदा निराकुलता—भैया! धनके अर्जनमें आदिसे अंत तक कहीं चैन नहीं, किन्तु ज्ञानके अर्जनमें आरम्भसे अत तक लाभ ही लाभ है। अनन्त कर्म कटें, आनन्द मिले, जरा भी क्लेश न रहें। धनमें केवल कल्पनासे जरासा सुख मानते हैं, सो वह सुख भी क्षोभके कालमें हो रहा है। भैया! विषयोंका सुख शांतिसे कोई नहीं भोगते, क्षोभ करके आकुलता करके भोगते हैं। आकुलता दोनों जगह है। सासारिक सुखमें और विपत्तियोंमें। बस केवल नागनाथ और सापनाथ जैसे शब्दोंका भेद है। इन्द्रियोंको कोई बात सुहावनी लग गयी तो क्या वहां अनाकुलता प्रकट होगी? खूब देख लो। कोई विषय इन्द्रियोंको असुहावना लगेगा। तो क्या उस इन्द्रिय सुखसे कोई ऊची नीची दशा पा लिया? क्या उस सुखमें दु खसे कोई ऊँची दशा पा ली? दोनों ही जगह आकुलता प्राप्त हुई।

आराम व सकट दोनोमे आकुलता—आप लोग जैसे मान लो भिन्डसे कहीं जाते हैं तो टिकट लेनेमें आकुलता, गाडी आनेपर सीट लेनेमें आकुलता, फिर अच्छी सीट मिलने पर आकुलता, गरीब लोग खडे हैं आप सीट पर पड़े हैं पर पैर अच्छी तरह फैला न पाने मे आकुलता। पैर भी पसर गये तो अहकार कर करके आकुलता मचाई जाती है। जगह-जगह देखलो आकुलता ही भरी है। दूसरेसे अपनेको बड़ा माननेमें भी आकुलता

है। अब तो हमें अच्छी जगह मिल गयी ऐसा हर्ष माननेमें भी आकुलता है, और जब बेकार बैठ गये ना, दु:ख न रहा तो विकल्पोंकी कूदाफादी चलने लगी, देखलो सब दशावोंमें ननकी आकुलता। खाने पीनेमें भी देख लो, कौन शांतिसे कौर उठाता और मुँह चलाता है? अशांतिसे ही उठाता है। शांति होती तो कौर उठानेकी क्या जरूरत थी? सभी इन्द्रियोंके भोग आकुलतासे भोगे जाते हैं।

ज्ञानकी अर्ज्यता—भैया! ये वैभव तृष्णाके योग्य नहीं हैं। तृष्णाके योग्य है, जिसे कमावो खूब, ऐसी कोई चीज है तो वह है ज्ञान। तो जब वास्तविक वस्तुस्वरूपका ज्ञान होता है तो इस जीवको अनाकुलता होती है। जानता है कि मेरा कहीं कुछ बिगाड नहीं है। घर गिर गया तो क्या, कोई गुजर गया, तो क्या किसीने इज्जत न की तो क्या? यह सब परपदार्थोंका परिणमन है। किसी ने मेरा नाम नहीं लिया तो क्या? ये सब परपरिणमन हैं। यहां करनेके योग्य तो कुछ काम ही नहीं है। किया भी नहीं जा सकता।

आत्माकी परिपूर्णता—यह मैं आत्मा परिपूर्ण हूं, कृतार्थ हूं। क्या मैं अधूरा हू जो कुछ बननेको पड़ा हू? नहीं, मैं तो सत् हू, परिपूर्ण हू। हममें जब जो परिणमन होता है वह पूरा ही होता है। अधूरा कोई भी परिणमन नहीं होता है। बुरा परिणमे तो पूरा का पूरा परिणम गए, अच्छा परिणमे तो पूरेके पूरे परिणमे। हम अधूरे हैं कहां? मै पूर्ण हू, और मुझमें से जो निकलता है वह पूर्ण ही निकलता है और देखो पूर्णोंकी परम्परा कि दूसरा पूर्ण निकलता है तो पहिला पूर्ण, पूर्ण विलीन हो जाता है। पूर्ण विलीन हो जाता है, फिर भी यह पूर्ण रहता है और इस पूर्ण आत्मतत्त्वमें से पूर्ण-पूर्ण परिणमन चलता रहता है। यहां और क्या नाता है किसीसे? यह मैं आत्मा न परका कर्ता हू, न परका भोक्ता हू। यह मै प्रभुवत् ज्ञान और आनन्दस्वरूप ही हूं। जिसका कार्य ज्ञाता द्रष्टा रहना और आनन्दमग्न होना है।

ज्ञानप्रतिगमन—भैया! किसी भी परपदार्थसे हठ कर लिया जाय, यह कितना उल्टा काम है? किसी क्षण यह जीव अन्य सभीको भुलाकर केवल ज्ञानज्योतिका ही दर्शन करे तो इसके अनाकुलता होगी। बोलते हैं ना, तमसो मा ज्योतिर्गमय। हे ब्रह्मस्वरूप! तू अंधकारसे उठा और मुझे ज्योतिमें ले चल। मा का अर्थ है मुझको। यह मा निषेधात्मक शब्द नहीं है। अंधकार है मोहका और ज्योति है यथार्थ ज्ञानका। तो उस अंधकारसे निकालकर हे आत्मन्! अब तुम उस ज्योतिमे ले चलो, ज्ञानमें ले चलो।

मोहीके मोहकी अरुचिका अभाव—देखो तो भैया! जो बात भोगते

भोगते पुरानी हो जाती है या जिस मित्रसे मिलते-मिलते बहुत दिन हो जाते हैं उससे अरुचि हो जाती है। जैसे पाहुनोंकी यह दशा है। पहिले दिन रहा तो पाहुना, दूसरे दिन रहे तो पई, तीसरे दिन रहे तो बेशरम भई। तो बहुत दिन रहने के बाद इसका इतना आकर्षण नहीं रहता। उससे अरुचि जग जाती है। मगर यह जीव अज्ञानके साथ अनादिसे रह रहा है, पर इसे अज्ञानसे अरुचि नहीं होती। मोह मोहमे ही पल रहा है पर मोहसे अरुचि नहीं होती।

संकट सह कर भी संकटके आश्रयका मोह—घरके बब्बा चाहे कितना ही दु:खी हो जाये, पोता मारें, नाती मारें, सिर पर चढ़ें, बच्चा रोने भी लगे, पर कितना ही समझावो कि बब्बा क्यों दु:खी हो रहे हो। अरे घर छोड़ दो, देखो आश्रममें रहो, अमुक संगमें रहो, तुमको बच्चे दु:खी कर रहे हैं। बहुवें भी तुम्हें अच्छी तरह नहीं रखतीं, खानेका टाइम आया तो कह दिया कि लो, ठूँस लो सारे क्लेश हैं। अरे जरा घर छोड़ दो, आरामसे रहो आश्रममें सत्संगमें। तो बब्बा उत्तर देंगे कि वे बच्चे, लड़के, पोते हमें चाहे मारें, चाहे पीटें पर वे हमारे नाती पोते मिट तो न जायेंगे। हम उनके बब्बा ही बने रहेंगे, वे हमारे नाती पोते ही बने रहेंगे। बब्बाको यह पता है कि हमारे नाती और पोतेका सम्बन्ध सारी दुनिया जानती है, भगवानके यहा रजिस्ट्री है। ये तो न मिट जायेंगे। मोहमें पगे रहते हैं।

पर्यायका व्यामोह—भैया! मुनिराजसे एक राजाने उपदेश सुना। राजा ने अपना अगला भव मुनिराजसे पूछा। तो मुनिराजने बताया कि फलाने दिन इतने बजे मरकर फलानी जगह तुम सडासमें कीड़ा बनोगे। राजा इस बातको सुनकर बड़ा दु:खी हुआ। लड़कोंसे कहा कि देखो अमुक समय पर अमुक जगहमें मैं विष्टाका कीडा बनूँगा, सो मुझे मार डालना। विष्टाका कीड़ा होना मुझे पसद नहीं है। अच्छा दद्दा। वह राजा मर कर कीड़ा हुआ। लड़का उसी स्थान पर उसी समय पहुचा। उसने टट्टीमें वह कीड़ा देखा। जब कीडे को मारना चाहा तो वह कीड़ा उसी मलमें घुस गया उसने मरना नहीं चाहा। इसी तरह जो जीव जिस पर्यायमें पहुचता है वह उस पर्यायमे मोही हो जाता है। अब यह बतलावो कि गैया के जो बछडे हैं वे उस गैयाके लिए अच्छे हैं या तुम्हारे लड़के? गैयाके बछडे ही अच्छे हैं। गैयासे पूछो कि उसे कौन अच्छे लगते हैं? तो उसे तो अपने ही बछडे अच्छे लगते हैं। तो यह जीव जिस जगह जाता है उसी जगहके समागममें मोहमें आसक्त हो जाता है। तो जरा ज्ञानको सभालो अपना कहा कुछ नहीं है। पर कुटेव ऐसी लगी है कि

छोड़े नहीं जा रहे हैं। छोड़कर तो सब कुछ जाना ही पड़ेगा। अपने ही आप पर दृष्टि दें और इस दुर्गम समागमसे लाभ उठावें।

जैनसिद्धान्तका अतुल मूल उपदेश—बन्धुवों ! चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीरकी जन्म-जयन्ती आज मनायी जा रही है। जैनधर्मके सम्बन्धमें और महावीर भगवानके सम्बन्धमें पूर्व वक्तावोंने बहुत कुछ कह ही दिया है। जैसे कि पं० सुमतिचंद्र जी शास्त्रीने बताया कि जैनधर्मके संस्थापक भगवान महावीर नहीं थे किन्तु अनादिसे ही यह धर्म चला आ रहा है। जैनधर्म कहो, वस्तुधर्म कहो, आत्मधर्म कहो सबका अर्थ एक है। तो कोई पूछे कि जैनधर्मकी वे विशेषताएँ तो बतावो जो सबसे निराली विशेषताएँ हों और जिनके बिना हमें कोई शांतिका मार्ग न मिल सके तो वह विशेषता है केवल एक वस्तुविज्ञानकी। पापोंका छोड़ना सभी कहते हैं, तपस्यामें लगना सभी कहते हैं, और यह जैनधर्ममें भी बताया है। राग-द्वेष कषाय बुरी चीज हैं। जिसके कारण परेशानी रहा करती है। सब सुखी हैं, पर जहां रागका कोई भाव आया और किसीसे वैर विरोधका भाव आया वहां दुःखी हो जाते हैं। तो रागद्वेष हटना सब कहते हैं पर ये सारी चीजें कैसे बनें ? उसका मौलिक उपाय क्या है ? वह उपाय साधु संतोंने बताया है। सो जो पारखी होता है, जौहरी होता है, वह उनके मर्मको और गुणोंको जानकर हर्षोल्लसित हो जाता है। मूल उपाय यह बताया है कि तुम जगत्के सभी पदार्थोंका यथार्थ ज्ञान तो करलो।

वस्तुस्वरूपका यथार्थ ज्ञान—यथार्थ ज्ञानके मायने यह है कि कोई भी पदार्थ अपने आप अपनी ओरसे अपने अस्तित्वके कारण स्वयं कैसा है, यह जान लिया तो सारे क्लेश मिट जायेंगे। आज जो इतने अन्याय हो रहे हैं और सभी कर रहे हैं पूर्व वक्तावोंने बताया और जगह भी कहते हैं कि जैन समाज परिग्रहवादमें मस्त हैं, या कदाचित् कभी ईमानदारीसे गिर जाते हैं। हम तो देखते हैं कि यह दुष्कालका प्रभाव है कि जैन ही क्या सभी लोग प्राय ईमानदारीसे हट कर कुदृष्टिमें मस्त है। व्यापार करने वाले व्यापारके ढंगसे अपना दाव बनाकर अन्याय करते हैं तो सर्विस वाले रिश्वत लेकर मस्त होते हैं। जिनसे रिश्वत लेते हैं जो रिश्वत देते हैं उनके दिलसे पूछो कि उन्हें दुःख होता है या नहीं। और एक-एक की बात कहें तो किसीको बुरा माननेकी बात नहीं है। सभी की बात कही जा रही है। इन अन्यायोंका मूल वस्तुस्वरूपका अज्ञान है।

परिज्ञानका दुरुपयोग—वकीलोंका धर्म था कि सच्ची घटना हो तो उसकी पैरवी करें। और जान रहे हैं कि यह घटना झूठ है तो भी उसे हटा नहीं देते कि हम वकालत न करेंगे और हम ईमानदारीसे वकालत

करेंगे। बात झूठ भी है फिर भी कहते हैं कि अच्छा तुम्हारा काम ठीक हो जायेगा। तो जानबूझ कर झूठी घटना सही साबित करनेकी कोशिश करना, रिश्वत लेना, क्या इसे ब्लैक न समझेंगे। उनकी बात अच्छा छोड़ो, अफसर लोग क्या रिश्वत नहीं लेते हैं। वैसे हम इन बातोंमें घुसे नहीं हैं पर हम तो समझते हैं कि कालके प्रभावसे ऐसा ही सर्वत्र प्राय. होता है। हमीं त्यागी लोगोंको देखो—जैसी भीतरमें बात है उसके अनुसार ही कहा बाहरमें अपनी वृत्ति रखते हैं। तो यह क्या हम त्यागी लोगोंका ब्लैक नहीं है? यह दुष्कालका ही प्रभाव है कि ऐसा ब्लैक चल रहा है। हम सबकी कह रहे हैं बुरा नहीं मानना। अफसर डाक्टर त्यागी संयमी, सर्विस वाले सभी लोग ऐसा करते हैं।

साक्षिताकी मट्टीपलीत--कहते हैं कि गवाहका दर्जा जजसे भी बड़ा होता है। गवाह उसे कहते हैं जो साक्षी हो। जैसा देखा हो वैसा ही कहने वाला हो। किन्तु जज स्वयं कह देता है कि अरे तुम्हारा गवाह भी है? इसका पूछनेका मतलब है कि तुम्हारे पक्षकी कोई बात कहने वाला है? नहीं तो यह कहता कि तुम्हारा इस घटनाका कोई गवाह है। वादी प्रतिवादीसे न पूछकर सत्य क्यों नहीं पूछता कि इस घटनाका कोई गवाह है क्या? जज जब यह पूछता है कि तुम्हारा कोई गवाह भी है तो वह कहता है कि हां हां ठहरो ५ मिनट, अभी गवाह बाहरसे लाते हैं। वह गया बाहर किसीसे कह दिया कि यों कहना है तुम्हें २) देंगे। वह दो रुपये लेकर वैसा ही कह देता है। तो क्या यह ब्लैक नहीं है?

वीतरागधर्मकी मान्यता वालोंमें अन्यायकी खटक—भैया! अपराधकी बौछारोंसे अब अधिकतया जैनियोंको ही परेशान किया जा रहा है, उन्हें ही लोग कहते हैं इसका कारण क्या है? इसका कारण यह है कि जैनधर्म के प्रति दुनियाकी निगाह स्वच्छताकी भरी हुई है। इसलिए दुनियाकी निगाह जैनियों पर ही जाती है कि ऐसा ऊंचा तो धर्म है, फिर ये क्यों करते हैं? एक एक सुधरे तो सब सुधरें। अब हम तो तुमसे कहें और हम खुद न सुधरें, तुम तीसरेसे कहो और खुद न सुधरो तो इसका मतलब है कि एक भी नहीं सुधरा और क्रम क्रमसे एक-एक सुधरें तो सुधरनेकी संख्या ज्यादा मालूम पड़े। लोग यह सोचते हैं कि दूसरोंसे बातें खूब कहें, अपन न सुधरें तो क्या हुआ, १० लोग और तो सुधर जायेंगे। पर ऐसा ही सब सोच रहे हैं कि मैं न सुधरूँ और ये सुधर जायेंगे तो कौन सुधरा? बतलावो।

प्रत्येकके दुर्विचारमें सामूहिक विडम्बना—एक बार किसी राजाने मंत्री से पूछा कि मंत्री यह तो बतलावो कि अपने नगरमें सभी प्रजा लोग

सच्चे आज्ञाकारी हैं या नहीं और भक्त हैं या नहीं तो मंत्री कहता है कि महाराज न कोई भक्त है और न कोई आज्ञा मानने वाला है। राजाने कहा कि ऐसी बात नहीं है। हम तो जब नगरमें जाते हैं तो प्रजा लोग मार्गमें हमारे सामने हाथ जोड़कर सिर नवाते। मंत्री ने कहा कि अच्छा हम दो दिनमें परिचय करायेंगे। मंत्रीने नगरमें इत्तला करा दिया कि महाराजा को ५-७ मन दूधकी जरूरत है तो आज रात्रिको आंगनमें जो हौज है उसमें सब लोग अपने अपने घरसे एक एक लोटा भर दूध डालदीजिए। सभी घरमें बैठे-बैठे सोचते हैं कि सब लोग तो दूध ले ही जायेंगे। अपन एक लोटा पानी ले चलें तो वह पानी उस सारे दूधमें खप जायेगा। सभी ने ऐसा सोच लिया। सभी ने एक एक लोटा पानी डाला। पानीसे सारा हौज भर गया। सुबह देखा गया तो साराका सारा पानी था।

हितकी आवश्यकता—भैया! क्या यह ब्लैक नहीं है? जो धर्मके नाम पर खूब भाषण झाड़ें और उसके अनुरूप अपना सुधार न करें। बोलनेके समय अपनी शांतमुद्रा बनालें और अभी बैठे-बैठे गुस्सा हो रहे थे। तो क्या यह ब्लैक नहीं है? तो यह सब कालका प्रभाव है। पर चिंता कुछ नहीं करना है। इस संसारमें न तो कोई आपको जानता है और न कोई हमें जानता है। यहां तो चुपचाप अपनेमें घुसकर अपनेमें कल्याणकी भावना करके अपना सुधार करलें और बिदा हो जायें। यह काम करनेका है, बाहरमें निगाह डालनेका, पैर पसारने का काम नहीं है। ऐसा कोई कर सके तो वह है आत्मवीर और जिसका भवितव्य ठीक होगा वह ऐसा कर सकेगा।

यहां यह बात कह रहे हैं कि जिन-शासनकी सबसे प्यारी देन है वस्तुविज्ञान। पदार्थ स्वयं कैसा है, जो विज्ञानसे सिद्ध हो, युक्तिसे सिद्ध हो, बाबा वाक्य प्रमाणमें बहाना न पड़े वह वस्तुविज्ञान है। हाथमें रखकर सामने चीज रखकर देखलो खूब कि प्रत्येक पदार्थ स्वतंत्र है। पदार्थोंमें मिला जुला जो है उसकी बात नहीं कह रहे हैं। जो एक है। जैसा एक एक जीव है और एक-एक अणु है आदि। ये दिखने वाले सब धोखा है, मिटने वाले हैं। एक-एक अणु एक-एक जीव ऐसे सभी पदार्थ ले लो। वे सब पदार्थ जो अपना परिणमन करेंगे, अपनी अवस्था बनाएंगे। वे पदार्थ अपनी अवस्थामें ही तन्मय होते हैं, दूसरेकी अवस्थामें तन्मय नहीं हुआ करते हैं। खूब निगाह रखकर देख लो। प्रत्येक पदार्थ अपनी नई अवस्था बनाते हैं पुरानी अवस्था विलीन करते हैं और वे वहींके वहीं बने रहते हैं। जो पदार्थोंका स्वभाव पड़ा हुआ है इसीको सत्त्व रज तम कहो, इसीको उत्पाद व्यय ध्रौव्य कहो, यही पदार्थका स्वरूप है।

शान्तिका मूल वस्तुका सम्यक् ज्ञान— पदार्थका यह परिपूर्ण स्वतन्त्र स्वरूप जाननेमें कमाल क्या है ? चमत्कार क्या है कि जहा यह समझ में आ गया कि प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूपसे बाहर नहीं जा सकता। न बाहर किसीका कुछ काम है। यदि ऐसा ही मैं अपनेको जानूँगा तो मोह न रहेगा, वैर किसीसे न मानूँगा, किस पर वैर किस पर राग ? जब राग और वैरकी भावना है तो क्लेश और क्या चीज हैं ? जब तक अन्तरमें ज्ञान न जग सके, अपनेको अकिञ्चन न मान सके तब तक क्लेश नहीं मिट सकता। इसलिए भाई अपने-अपने सुधारकी बातमें लगें, इसीमें भलाई है और इसीसे ही दुर्लभ नरजीवनकी सफलता है। बाहर कहा देखते हो, किसको देखना है ? यह काम कर सके तो समझो ठीक है। यहा दिखाना नहीं, बताना नहीं, सजाना नहीं किन्तु गुप्त ही गुप्त अपने आपमें अपना हित सोचकर अपनेमें श्रद्धा दर्शन, ज्ञान बनाएँ और अपने आपके आत्माका आचरण बनाएँ तो इससे ही सिद्धि होगी, अन्य प्रकार सिद्धि न होगी।

वस्तुके निरखकी दृष्टिया—पारखियोंके परखनेकी दृष्टिया चार होती हैं—परमशुद्ध निश्चयनय, शुद्ध निश्चयनय, अशुद्ध निश्चयनय और व्यवहारनय। परमशुद्ध निश्चयनयमे पदार्थका शुद्धस्वरूप, मात्र स्वभाव देखा जाता है। उसके न बध है, न मोक्ष है, न सयोग है, न वियोग है, न कर्तापन है, न भोक्तापन है, सर्व प्रकारकी कल्पनावोंसे रहित केवल शुद्ध चैतन्यस्वरूपका जो परम शुद्ध निश्चयनय बताया है वह अनादि अनन्त सर्व आत्मावोंसे अत प्रकाशमान है। जो जीव परिणमनमें अशुद्ध भी हो रहे हैं वे जीव भी स्वरसत परमशुद्ध निश्चयनयके विषयके अनुसार अत-स्वरूपी है।

हितका वास्तविक आश्रय—जीव अशुद्ध है वर्तमानमें और यह वस्तु का स्वरूप है कि जीव किसी परका आलम्बन नहीं कर सकता। परपदार्थ इसके उपयोगके विषयभूत तो होंगे पर किसी परपदार्थका आश्रय नहीं किया जा सकता क्योंकि अपने आपसे बाहर अपना आश्रय नहीं बन सकता। बाहर अपने प्रदेश हैं नहीं, तो किसके आश्रय रहें ? सो परपदार्थमें यद्यपि अरहन्त व सिद्ध अनन्त प्रभु हैं किन्तु किसी परपदार्थका कोई अन्य वस्तु आश्रय नहीं कर सकता। भक्त तो केवल अपने गुणोंका परिणमन बनाकर रह जाता है, गुणोंका स्मरणरूप परिणमन करके रह जाता है किन्तु किसी परमात्माका हम आश्रय नहीं कर पाते हैं, उनमें हम प्रवेश नहीं कर सकते हैं, उनका हम अपनी ओर आकर्षण नहीं करा पाते हैं तो परसे तो विविक्त हो गए और हैं खुद अशुद्ध। यदि इस अशुद्ध

को देखे तो शुद्धका विकास नहीं हो सकता। अशुद्धके दर्शनसे अशुद्धके प्रत्यय और आलम्बनसे अशुद्ध परिणमन ही होगा। तब किसका आलम्बन लें जिससे हमारा मोक्षमार्ग प्रकट होवे ? वह है निज शुद्ध आत्मतत्त्व का आलम्बन।

पारखीके सारभूत वस्तुका आदर--एक राजाकी सभामें किसी विद्वान् कविका, विद्वान्का अधिक आदर न होता था तो एक विद्वान् कहता है कि हे राजन्! यदि तुम इन लोगोंमें मद आदर वाले हो गए हो तो क्या तुम ही एक हमारे प्रभु हो ? यदि उन भिल्लनियोंने जिनको गुन्चियोंका ही परिचय है वे यदि मोतियोंको पैर घिसनेमें काम लाती हैं तो क्या वे ही मोतियां पटरानियोंके गलेमें शोभाको नहीं प्राप्त होती ? इसी तरह यदि ज्ञानपुञ्ज इस आत्मतत्त्वका अज्ञानी जनोंने जो किसी प्रतिकूल उदयके कारण अपने सच्चे आशयसे जुदा हुए है, विषय-कषायोंमें आसक्त हैं उन्होंने यदि इस शुद्ध सहज आत्मतत्त्वका आदर नहीं किया है तो क्या यह सहज आत्मतत्त्वयोगी पुरुषोंके उपयोगमें विराजमान् नहीं होता ?

जैन सिद्धान्तका सारभूत यदि कुछ उपदेश है तो वह यह ही है कि अपने अज्ञानको मिटाना। लोकमें कोई किसीके द्वारा बँधा हुआ नहीं। किसीके द्वारा कोई परिचित नहीं, किसीके परिणमाए परिणमता नहीं, किसीसे रंच सम्बन्ध नहीं, फिर क्यों यह अपने स्वरूपसे चिगकर, बाह्य पदार्थोंमें दृष्टि देकर अपने क्षण निष्फल खो रहा है ? इस प्रभुके माहात्म्य को अन्तरमें देखो और अन्तरमें ही निवास करके प्रसन्न रहो अर्थात् निर्मल रहो। ऐसा यदि हम आप नहीं कर पाते हैं तो यह हो-हल्लाका नदीके वेगकी तरह बहता चला जा रहा है। यह वापिस लौटकर नहीं समय आने का है।

शुद्धनिश्चयदृष्टिकी नजर--इस शुद्ध स्वभावी आत्मतत्त्वमें यदि यह विकार आ रहा है अनादिसे तो अपने अज्ञानसे आ रहा है। ज्ञानीका परम शुद्ध निश्चयनय वहां भी केवल अखण्ड आत्मस्वभावको ग्रहण करता है। इस शुद्धस्वभावके अनुरूप विकासकी ग्रहणकी दूसरी दृष्टि है शुद्ध निश्चयनयकी। शुद्ध निश्चयनयका विषय है शुद्ध प्रकाश। अरहंत और सिद्ध प्रभुका जो शुद्ध विकास है उस शुद्ध विकासको यदि इस अपेक्षासे न देखें कि यह कर्मोंके क्षयसे हुआ है और केवल उनमें ही आत्माको देख कर ही शुद्ध विकास निरखें तो यह विकासका निरखना शुद्ध निश्चयनयका विषय है।

अशुद्धनिश्चयदृष्टिकी नजर--अशुद्ध निश्चयनय देखता है पदार्थकी अशुद्ध परिणति। यद्यपि ये पदार्थ परनिमित्तको पाकर ही विभ.वरूप

परिणमते हैं पर निमित्त पाये बिना केवल अपने आप अपने स्वरूपसे अपने ही सत्त्वके कारण विभावरूप नहीं परिणमते, फिर भी अशुद्ध निश्चयनयकी दृष्टि किसी परको न निरखकर केवल एकको देखनेकी है। इस अशुद्ध परिणत एक को इस दृष्टिमें जो जीव रागी है, द्वेषी है, विभावरूप परिणमने वाला है, यह निरखा जाता है। इसे निश्चयनय इसलिए कहते हैं कि उपाधिके निमित्तसे परको नहीं देखता यह।

व्यवहारनयकी नजर—व्यवहारनयका विषय है वैज्ञानिक विषय। निमित्तनैमित्तिक भाव देखना, सम्बन्ध निरखना, उनका कार्यकारण भाव देखना यह सब है व्यवहारका विषय। कर्मोंके उदयका निमित्त पाकर आत्मस्वभावरूप परिणमता हुआ क्या यह व्यवहारनयका विषय है? व्यवहारनयमें यह बात ज्ञात होती है कि ये रागादिक भाव जीवके नहीं हैं। ये पुद्गलकृत हैं, नैमित्तिक भाव हैं, पौद्गलिक हैं।

नयोंके निर्णयसे कल्याणमार्गमें सहयोग—इन चार दृष्टियोंसे जो चार प्रकारका निर्णय होता है ये चारों ही निर्णय आत्माको कल्याणमार्गमें प्रेरणा देते हैं। परम शुद्ध निश्चयनय तो स्पष्ट कल्याण मार्ग दिखाता है। देखो इस अपने अन्तरमें विराजमान शुद्ध चैतन्यस्वरूपको, इसकी दृष्टिके प्रसादसे सर्व मल दूर हो जायेंगे, गुणोंका विकास होगा। तुम तो परमार्थत' जैसे हो वैसे मान लो। क्या फल होगा इसका कुछ विचार न करो। परम शुद्ध निश्चयनय कल्याणमार्गकी सीधी प्रेरणा देता है। शुद्ध निश्चय नय जैसा शुद्धस्वभावके अनुरूप शुद्धविकास हुआ है उस शुद्धविकासको देखकर अन्यकी दृष्टि हटाकर उस शुद्ध विकासकी दृष्टिके मार्गसे शुद्ध स्वभावमें पहुचाता है। यह कोमल प्रक्रिया है, सुकुमार पुरुषोंकी औषधि है, उन्हें खेद न हो, शीघ्र शुद्ध स्वभावमें उनकी पहुच बने इसके लिए परमात्मस्वरूपका स्मरण है। जैसा वह स्वरूप प्रकट हुआ है ऐसी ही वह शक्ति है, अतः उस परम शुद्ध निश्चयनयके विषयमें पहुचना सुगम होता है।

अशुद्ध निश्चयनयके मार्गसे भी साधकका कल्याणकी ओर गमन—तीसरे अशुद्ध निश्चयनयकी दृष्टिमें भी प्रयोजन यह है कि निज अखण्ड स्वभाव में पहुच बने, पर यह कुछ कठिन मार्ग है। नीचा ऊचा मार्ग है, जिस शुद्ध स्वभावके विपरीत यह परिणमन है, इस विपरीत परिणमनको निरखकर हम शुद्ध स्वभावमें पहुच जायें, इसमें बड़ा बल चाहिए। असम्भव नहीं है, किन्तु कठिन है। असम्भव तो यों नहीं है कि मार्ग निश्चयका अपनाया है। इस अशुद्ध निश्चयनयकी दृष्टिमें भी इतनी शुद्धता है कि किसी पर-पदार्थको नहीं देखा जा रहा है और इस शुद्ध नीतिके कारण इस मार्गसे

इस नयकी मल पद्धतिके आलम्बनसे परम शुद्ध अखण्ड स्वभावमें पहुंच रकते है।

अशुद्धनिश्चयनयकी गतिविधि—यहां देखा जा रहा है कि यह आत्मा रागरूप परिणम गया। यह आत्मा अमुक विभावरूप परिणम गया। ईमानदारी यह हुई कि कल्पनामें भी निमित्त या आश्रयभूत परपदार्थकी दृष्टि नहीं होती। सो अशुद्ध निश्चयनय प्रयोजनमें सफल हो सकता है। जहां परकी दृष्टि हटे, तो यह राग परिणमन तो परदृष्टिरूपी जलको पाकर ही हरा भरा हो रहा था, सो जब उसके पालन पोषणका जरिया खत्म कर दिया गया तो यह कब तक बना रह सकता है। इस अशुद्ध निश्चयनयकी दृष्टिमें प्रथम अशुद्ध परिणमन नजर आता है, मगर यह अशुद्ध परिणमन कहासे उठा है, किस उपादानसे चला है? वह कौनसा ध्रुव तत्त्व है जहासे यह अशुद्ध परिणमन गिरा है? उसकी दृष्टि आ जाना प्राकृतिक बात है। क्योंकि अशुद्ध निश्चयनयमे भी शुद्ध नीति बनी हुई है।

शुद्धनीतिका वल—जो मनुष्य अपनी शुद्ध नीतिसे चिग जाता है विडम्बना उसको ही हुआ करती है। यहां अशुद्ध निश्चयनयकी दृष्टिमे उपासकने अपनी विविक्तताकी नीति नहीं छोड़ी। तो अन्दर ही अन्दर गुप्त ही गुप्त जिसे स्वरूपकी जिज्ञासा हो, चाहे कैसी ही गति हो कि राग परिणमन कुछ हो गया, पर उसके तो जिस पदार्थसे राग परिणमनका उद्गम हो वह पदार्थ मुख्य बन गया। अब परमशुद्ध निश्चयनय आकर विराजमान हो गया और इस प्रकार इस अशुद्ध निश्चयनय मार्गसे भी यह जीव अखण्ड शुद्धस्वभाव पर पहुच जाता है।

व्यवहारनयका कल्याणकी प्रयोजकतारूपसे उपयोग—अब रही चौथी दृष्टि व्यवहारनयकी। व्यवहारनयका मार्ग भी उस अखण्ड अद्वैत स्वभाव में पहुचानेका प्रयोजन रखता है। जैनेन्द्र उपदेशमे कोई भी ऐसा वचन नहीं है जो कल्याणमार्गके लिए न हुवा हो, जैसे आगममें छोटे बच्चोंकी बालबोध किताबसे लेकर बडे योगियोंके समयसार ग्रन्थ तक समस्त ग्रन्थों के अवलोकनमे पद-पद पर वीतरागता का प्रयोजन मिलेगा। जिस धर्मकी जो नीति है वह हट गयी तो वह उस धर्मका ग्रन्थ ही नहीं रहा। तो जैसे हमें वहां प्रतिपाठमें वीतरागताका उपदेश मिलता है इसी प्रकार प्रभुके उपदेशसे सभी नयोंमे हमें कल्याणका मार्ग मिलता है सो है ही, मगर कुनय के परिज्ञानसे भी हमें कल्याण का मार्ग मिलता है। कैसे मिलता है सो अभी बतावेंगे।

व्यवहारनयसे शिक्षा—व्यवहारनयने यह बताया कि ये रागद्वेप भाव पुद्गलका निमित्त पाकर उठे हैं। इनसे हमें शिक्षा क्या लेनी है कि ये

मेरे स्वभावसे नहीं उठे हैं। मेरा स्वभाव तो शुद्ध ज्ञानस्वरूप है। इस शुद्ध ज्ञायकस्वरूपका आलम्बन करानेके लिए व्यवहारनयका उद्गमन हुआ है। कुनयके परिज्ञान तकसे हम किसी प्रकार कल्याणमार्ग पर जा सकते हैं। कुनयको कुनय समझ ले तो कल्याणके मार्ग पर जा सकते हैं और कुनयको यदि हम सुनय समझलें तो मेरी फिर दृष्टिमें कुनय है हीं नहीं, फिर उस दृष्टिसे हितमार्गमें नहीं जा सकते हैं।

उपचरितोपचरित असद्भूतव्यवहारनयसे शिक्षा—एक कहलाता है उपचरितोपचरित असद्भूत व्यवहारनय। शरीर मेरा है, यह तो उपचरित असद्भूत व्यवहारनय है। इसमें आश्रय आश्रयीका सम्बन्ध है। पर धन मकान मेरा है यह तो तेज महा मोह का नशा है। उपचारमें भी उपचरित ऐसा झूठ यह कथन है, यह बात यदि मालूम पड़ जाय तो इस कुनयके यथार्थ ज्ञानसे कल्याण नहीं होगा क्या? झूठको झूठ जान लीजिए तो उस झूठके उपदेशसे भी हमें शिक्षा मिली। तो जो कुछ जिनवाणी है वह सब कल्याणके लिए है।

निर्विकल्प पदका उद्यम—भैया! व्यवहारनयमें कर्तृत्व है, भोक्तृत्व है, बंध है, मोक्ष है, किन्तु अपने आपके केवल अपने आपको निरखने पर न बध है, न मोक्ष है, न कर्तृत्व है, न भोक्तृत्व है, किन्तु वहा केवल ज्ञातृत्व है। आगमोंका खूब अभ्यास करलें, खूब जान जायें, क्यों अभ्यास करें? यों कि जानकर उन सब विकल्पोंको छोड़कर आप खाली और सूने बन जायें। लोग कहते हैं कि हम पहिलेसे ही खाली बने हैं तो आगम के अभ्यासकी जरूरत क्या है? हम यदि पहिले से ही लट्ठपाडे रहें तो अच्छा है। जब हमें सब कुछ पढ़ लिखकर योनि कुल मार्गणा गुणस्थान सारी बातें सीख-सीखकर, द्रव्यगुणपर्यायभेद, कालकी रचना आदि सारी बातें सीख कर फिर सब भूलकर एक ऐसे शुद्ध, परसे शून्य चिन्मात्र जहां तरंग नहीं, विकल्प नहीं, सासारिक प्रयोजन नहीं, ऐसे तत्त्व पर जाना है क्यों आगमका अभ्यास करें। तो भाई आगमके अभ्यास बिना, उसका विविध ज्ञान किए बिना इस अद्वैत अथवा शून्य ज्ञानमय चित्स्वरूपमात्र निज तत्त्व पर नहीं आया जा सकता है।

यहा यह बतलाया जा रहा है कि जीवका स्वभाव कर्मफलका भोगना नहीं है क्योंकि कर्मफलका भोगना अज्ञानका स्वभाव है। इसी बातको कुन्दकुन्दाचार्यदेव इस दोहेमें कहते हैं।

अण्णाणी कम्मफलं पयडिसहावट्ठियो दु वेदेदि।
णाणी पुण कम्मफलं जाणइ उदियं ण वेदेई ॥३१६॥

प्रकृतिस्वभावस्थितताका परिणाम—अज्ञानी जीव प्रकृतिस्वभावमें स्थित है, इस कारण कर्मोंके फलको भोगता है। परन्तु ज्ञानी जीव उदयमें आए हुए कर्मफलको जानता तो है पर भोगता नहीं है। भैया ! ज्ञान पाया है, विद्वत्ता पायी है, समझ मिली है तो इन तुच्छ परपदार्थोंमें चेतन अचेतन में, अन्य पदार्थोंमें दृष्टि देकर बरबाद करनेके लिए नहीं पायी है। कोई भी संकट हों, कोई भी दुःख हों अथवा न हों, अपने आपके इस ज्ञानसरोवरमें अपना उपयोग मग्न करके कषाय मंद कर जब चाहें शांत हो लें, जब चाहें प्रसन्न हो लें। जहां अपने स्वभावसे च्युत हुए और परके स्वभावमें स्थित हुए वहां ही कर्मफल भोगा जाता है।

प्रकृतिस्वभाव—प्रकृतिका स्वभाव है रागद्वेषादिकका परिणमन, अर्थात् प्रकृतिके उदयके निमित्तसे होने वाले स्वआत्माका भाव, सो प्रकृति स्वभाव है। उस भावमें जो स्थित है अर्थात् मैं रागरूप हूं, मैं जैसा चल रहा हू वही मैं हू। इस प्रकारकी जो अपनी हठ किए हुए हैं कर्मफल उन ही को मिलता है, आकुलता और दुःख उन ही को प्राप्त होते हैं। कोई किसीका साथी नहीं है। फिर क्यों कोई भाव बनाकर अपने आपको दुःखी किये जा रहा है? कुछ रहा तो ठीक, न रहा तो ठीक। कोई कैसा ही परिणमे उसके ज्ञाता द्रष्टा रहना है। कितना उत्कृष्ट पाठ यह जैन शासन सिखाता है, पर हम लोग भिल्लनियोंकी नाईं रतन पाकर भी पैरोंको उससे धो-धोकर उसकी कीमत नहीं करते और बुद्धपनमें ही अपना जीवन गुजार देते हैं।

उत्तम सुअवसर—यह जिन-धर्मका मर्म परम ब्रह्मस्वरूपका परिज्ञान जिसके लिए बडे-बडे योगी जंगलमें खाक छानते हैं फिर भी नहीं मिलता है, किन्तु हमारे आपके सौभाग्यसे बना बनाया भोजन इन ग्रन्थोंमें पड़ा हुआ है। जिन महान् तपस्वियोंने बड़ी साधना करके जो निचोड़ पाया है स्याद्वादकी प्रणालीमें उसे ऐसा सही रख दिया है तिस पर भी हम इस ज्ञानकी ओर अपनी भावना नहीं बनाते, आकर्षण नहीं बनाते और राग वैर ईर्ष्या वियोग धन संचय और परिग्रह क्या-क्या बताया जाय उनको ही अपनाते रहते हैं। अब अपने आप पर दया करके अपने आपके प्रभुसे बातें करिये।

प्रकृतिस्वभावसे अपसरणका उद्यम—क्या ये विभाव अपने हकमें कुछ अच्छा कर रहे हैं? प्रकृतिके स्वभावमें स्थित नहीं होवे। अपनेको राग द्वेषादि विभाव रूप मत मान ले। अपने को समझे शुद्ध ज्ञानानन्दस्वरूप। यह शरीर भी मेरा नहीं है। यह भी चला जायेगा। और है जब तक यह शरीर वैरी तब तक यह विषयोंका आकर्षण करा कर भुलावेमें डालकर

इस प्रभु पर बैर ही भजा रहे हैं। इस शरीरको जब माना कि यह मैं हू तो इस मान्यताके बाद फिर अन्य परपदार्थोंसे अपना सम्बन्ध मानने लगता है। जब अन्य पदार्थोंके साथ अपना सम्बन्ध मानने लगा तो वे अन्य पदार्थ उसके अधिकारके तो हैं नहीं। उनके परिणमन उनके उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्तासे होंगे, उसकी चाहसे न होंगे। तब जैसी चाह किये बाहरमें वैसा परिणमन नहीं होता है सो दुखी होते हैं और जैसी हम चाह किए हुए हैं वैसा परिणमन बाहरमें होता है तो भी हम दुखी होते हैं। एक ओर हर्षका क्लेश है तो एक ओर विशादका क्लेश है। क्लेश-हीन कोई परद्रष्टा नहीं है। इस क्लेशको मिटानेका कोई अचूक उपाय है तो यही है कि प्रकृतिके स्वभावमें स्थित मत हो। अपनेको रागादिकरूप न मानकर शुद्ध ज्ञानानदस्वरूप मानें तो ये सारे संकट टल जायें।

प्रकृतिस्वभावस्थितिसे बन्धन—अज्ञान उसे कहते हैं जहा शुद्ध आत्मा का ज्ञान न हो। अज्ञानीके जब प्योर केवल निजस्वरूपमात्र आत्माका ज्ञान नहीं होता तो वह अपनेमें और परमें एकत्वका ज्ञान करता है। जब अपना पता तो है नहीं और ज्ञान खाली बैठ सकता नहीं, तो यह ज्ञान किसीको भी जाना करेगा। खुदकी तो मनाही कर दे कि खुदको तो न जानेगा तो परको जानेगा और इस आत्मामें ऐसा स्वभाव भी पड़ा है कि सदा अहं रूपसे अनुभव करना, चाहे अहको अहं रूपसे अनुभव करे चाहे परको अह रूपसे अनुभव करे, मगर निरन्तर अनुभव बना रहना यह जीवका स्वभाव है। इसही को कहते हैं अज्ञान। तो जब स्व और परमें एकत्वका ज्ञान किया और एकत्व रूपसे ही देखा और एकत्व रूपसे ही परिणमन किया तो अब वह प्रकृतिके स्वभावमें बैठ गया। अपने स्वरूप में नहीं बैठा। सो प्रकृतिके स्वभावको भी अहंरूपसे अनुभवन करता हुआ यह जीव कर्मफलसे बँधता है।

बन्धनका लौकिक उदाहरण—जिस मकानको मान लिया कि यह मेरा है उस मकानकी दो ईंट भी खिसक जायें तो चित्तसे हर्ष खिसक जाता है। ईंटके खिसकने के साथ इस अज्ञान बुद्धि वाले के हर्ष भी खिसक जाता है। यही तो एकत्व परिणमन है। कुछ वस्तुत एकत्व परिणमन नहीं हो जाता। किन्तु परपदार्थकी परिणति निरखकर अपनेमें हर्ष विशाद करना, अपना विनाश और विलाश समझना, यही तो एकत्व परिणमन है। सो यह अज्ञानी जीव कर्मफलको अनुभवता है।

ज्ञानी जीवके विभक्त परिणमनका लौकिक उदाहरण—ज्ञानी,जीवको शुद्ध आत्माका ज्ञान हो गया है, इस कारण निजको निज परको पर इस प्रकार के विभागरूपसे जानता है और निज और परका विभाग रूपसे श्रद्धान

करता है, निज और परका विभावरूप से परिणमन करता है। जैसे दूसरेका मकान गिर जाय तो अन्य कोई दूसरा विभाग रूपसे परिणमन किए रहता है। मेरा क्या बिगड़ा, मेरा कुछ नही गया। यद्यपि यह मोक्ष मार्गकी पद्धतिसे विभाग परिणमन नहीं है किन्तु दृष्टांत कहा जा रहा है। जब तेज वर्षा होती है तो कई जगह मकान गिर जाते हैं और कोई घरमें अकेला ही हो, जवान हो, छोटे छोटे बालक हों और कदाचित् वही जवान उस मकान तले दबकर मर जाय तो पड़ौसी देखते तो हैं पर वे एकत्व परिणमन नहीं कर पाते, वे विभागरूपसे ही परिणमते हैं। कितना खराब काम हो गया, अभी बच्चे छोटे हैं, कथनी भी कर लें और उस परिवार की सेवाके लिए कुछ सहायता भी कर दें, पर विभाग परिणमन रहता है, एकत्व परिणमन नहीं होता।

ज्ञानी जीवका विभक्त परिणमन—भैया! खुदके सिरमें दर्द हो तो उस दर्दका भोगना और दूसरेके सिरमें दर्द हो तो उसकी जानकारी करना इन दोनोंमें कितना अन्तर है? खैर सिर दर्दका तो पता भी नहीं पड़ता। बुखारका तो स्पष्ट पता पड़ जाता है। खुदको बुखार चढ़ता हो तो कैसा एकत्व परिणमन करते हैं हाय मैं मरा जा रहा हू। इससे तो अच्छा था कि कोई और रोग हो जाता, या कोई और पीड़ा हो जाती। यह तो बड़ा विकट क्लेश हो रहा है। उसमें वह एकत्व परिणमन किए हुए है और दूसरेका बुखार थर्मामीटरसे जान लिया कि इसके १०५ डिग्री बुखार है, दया भी करे, उपचार भी करे, फिर भी एकत्व परिणमन नहीं हो सकता। सिर्फ उसके बुखारके जाननहार रहते हैं। यह भी एक लौकिक दृष्टांत है। कहीं ये लोग सम्यग्दृष्टि नहीं बन गए, पर प्रयोजन इतना बतानेका है कि जिसको मान लिया कि यह पर है, उसके परिणमनसे हर्ष और विष नहीं होता है।

ज्ञानीकी प्रकृतिस्वभावविविक्तता—ज्ञानी जीव निजआत्मतत्त्वके अतिरिक्त सर्व परपदार्थोंको पर मान लेता है। सो स्व और परके विभागसे रूप परिणमन हो रहा है, प्रकृतिके स्वभावसे हटा हुआ है। प्रकृतिका स्वभाव है रागद्वेषादिक परिणमन। अपने आपमें होने वाले उन विभावोंसे उपयोग हटा हुआ है। जैसे किसी पुरुषका मन स्त्री पुत्रमें नहीं रहा और फिर भी घरमें रह रहा है, तो घरमें रहता हुआ भी परिवारजनोंसे हटा हुआ है। यों ही अपने आपमें अपना ही विभाव परिणमन है और फिर भी उन विभाव परिणमनोंसे हटा हुआ है। देखा होगा कोई पुरुष गलती करनेके एक घटे बाद समझ जाता है कि मैंने गलती की। कोई पुरुष गलती करनेके २ मिनट बाद ही विवेकमें आ जाता है कि मैंने गलती की और कोई पुरुष गलती

करते हुएके समय ही विवेकमें रहता है कि यह गलती की जा रही है। तो जैसे हम लोकमें इस तरहके पुरुषोंको देखते हैं, यह मोक्षमार्गी हितार्थी पुरुष भी देखो सावधान है कि उसे त्रुटिके समयमें त्रुटि विदित होती जा रही है। यही हुआ प्रकृतिके स्वभावसे हटना।

अनवधानीका परमें आकर्षण--सो भैया! प्रकृतिके स्वभावसे हटे हुए होनेके कारण यह ज्ञानी जीव शुद्ध आत्मस्वभावको ही अहं रूपसे अनुभव करता है। जो ऐसा आत्मावधानी नहीं है उसका परमें आकर्षण रहता है। अभी भींतमें पचासों नाम लिखे हों और आपका किसीका भी नाम लिखा हो तो उसे बहुत जल्दी अपना नाम पढ़नेमें आ जायेगा और का नाम पढ़नेकी अपेक्षा। अपने नामके अक्षरोंको अपने ज्ञानमें कैसा बैठाये हुए है? आधी नींदमें हों और कोई धीरेसे नाम ले दे तो उसका नाम लेते ही कितनी जल्दी यह जाग जाता है। और उस अधनींद वाले पुरुषका नाम न लिया जाय, उसका नाम लिया जाय जो पासमें सो रहा है तो उस अधनींद वाले की नींद नहीं खुलती। तो इन अपने नाम अक्षरोंसे कैसा यह रंगा हुआ है कि आकुलित रहता है।

नाम व्यामोह—भैया! जो आपके नाममें जो अक्षर हैं वे ही अक्षर लाखों पुरुषोंके नाममें हैं और कहीं हूबहू वही का वही पूरा नाम हजारों आदमियोंका हो सकता है। जैसे एक भिण्ड शहरमें ही रामस्वरूप कमसे कम ५—७ हैं। ज्ञानचद भी बहुत होंगे, प्रेमचंद भी बहुत होंगे तो हूबहू उस ही नामके कई पुरुष हों, लेकिन मालूम पड़ जाय कि इस मेरे नामके और कई लोग हैं तो अपने नामके आगे दो अक्षर और लगाना पड़ेगा। नहीं तो फिर उस नामका अर्थ ही क्या रहा? मान लो जितने मनुष्य हैं सब मनुष्योंका नाम कचौड़ीमल धर दो तो कोई कचौड़ीमल यह न चाहेगा कि हम किसी काममें ५ हजार लगा दें और कचौड़ीमल नाम आ जाय क्यों कि कचौड़ीमल सभी हैं। लोगोंकी जानकारीमें मैं कचौड़ीमल तो नहीं आ पाया। बौद्ध-शास्त्रोंमें आस्रवके छोड़नेके प्रकरणमें प्रथम आस्रवहेतु नाम बताया है और उस नामके बाद फिर और और कल्पनाएँ चलती हैं।

नामव्यामोहपरिहारकी प्रथम आवश्यकता—भैया! अपनेको किस रूपसे अनुभव करना, क्या अमुक नाम रूपसे अनुभव करना, क्या किसी जाति कुल शरीररूपसे अनुभवना? नाम जो कोई धराता है सो बढ़िया ही धराता है। घटिया नाम धरानेका जमाना गुजर गया। जब घसीटा, करोड़े, खचोरे और दमड़ीमल ये नाम रखे जाते थे, अब आज तो ऐसे नाम धरानेका जमाना नहीं है। तो जिसका जो नाम है उस नाम का

अर्थ लगावो और यहां देखो कि सभीका ही यह नाम है, क्योंकि सभी इस अर्थ वाले हैं। नामका व्यामोह छूटना धर्ममार्गमें बहुत आवश्यक है। अपने को अहंरूपसे इस तरह अनुभव करें कि जो ज्ञाता है, द्रष्टा है, चेतक है वह मैं हू, इस तरह अनुभव करने वाला ज्ञानी पुरुष उदयमें आए हुए कर्मफलको ज्ञेयमात्र होनेसे केवल जानता ही है।

आत्माकी विविक्तरूपता—परभावको अहं रूपसे अनुभवनेके लिए ज्ञानी समर्थ नहीं है इसलिए कर्मफलका वह भोक्ता नहीं है। कितनी कितनी प्रकारके विकल्प करके अपने को अनुभवने लगे हैं किन्तु वे विकल्प आप के स्वरूप नहीं है। दूसरा कोई शकल देखकर यदि पहिचान जाय तो ठीक हैं आपके विकल्प। उसके शरीरको देखकर चाहे अमेरिकन हो, चाहे अंग्रेज हो, चाहे भारतीय हो वह देख लेगा जैसा रग है, जितने लम्बे हैं, जो कुछ इसमें हैं, उसको हर एक कोई जान लेगा। हम अमुक संस्थाके मेम्बर हैं, अमुक कमेटीके कार्यकर्ता हैं, यह तो कोई न जान पायेगा क्यों कि हम यह हैं ही नहीं। अभी तो इस शरीरकी ही बात कही जा रही है। फिर प्यौर आत्माका तो रहस्य बहुत मार्मिक है।

भगवानके सत्का व सत्यका ज्ञातृत्व—भैया! भगवान जैसा जानता है वह सब सत्य है। जो असत्य है वह भगवान नहीं जानते। असत्यको असत्य रूपसे जान जाय इतनी भी वहां गुञ्जाइश नहीं है। यों टेढ़ी नाक पकड़नेका क्या प्रयोजन ? जो है, यथार्थ है, परिणमन है वह सब भगवान जानते हैं। पर यह मकान मेरा है, इनका है इस बातको भगवान नहीं जानते, आप जानते हैं। अरे भैया! भगवानसे होड़ न करो। प्रभुको और सूक्ष्मतासे देखो तो जो एक-एक द्रव्य है और उनके भूत, भविष्य वर्तमान जो जो परिणमन हैं वे सब ज्ञात हैं। अनेक द्रव्योंको मिलाकर जो रूपक बनता है वह असत्य है, मायारूप है। भगवान केवल समस्त द्रव्योंको उनकी त्रैकालिक पर्यायोंको एक साथ स्पष्ट जानता है। ज्ञानी जीव यहाके अन्तरात्मा अशुद्ध पुरुषोंको भी जानता है, मगर एक रूपसे अनुभव करके नहीं जानता है और अज्ञानी पुरुष अशुद्धको ही जानता है और उसको एक रूपसे अनुभव करके जानता है।

आनन्दविघातका हेतु कषायका भार—जैसे तीन मेढक हों और एकके ऊपर एक चढ़े हुए हों, चढ़ जाते हैं ना मेंढक एकके ऊपर एक ? तो उन तीनों मेंढकोंमें सुखी कौन है ? ऊपरका मेंढक और वह कहता है कि—'हेच न गम' मुझे कोई परवाह नहीं, अच्छे कोमल गद्दे पर बैठे हैं, तो बीचका बोलता है कुछ कुछ कम। पूरा आनन्द तो नहीं है मगर एक ऊपर चढ़ा हुआ है, मेरी इसलिए कुछ कुछ कम चैन है। है थोड़ी थोड़ी जरूर

पर नीचेका कहता है कि मरे तो हम। नीचे कष्टों पर पड़ा है, जमीन पर पड़ा है और ऊपरसे बोझ लदा है, सो ऐसी तीन तरहकी परिस्थितियां होती हैं जो अशुद्धको जाने ही नहीं क्या मतलब ? दृष्टि ही नहीं देता है उसको 'हेच न गम' और एक अशुद्धमें पड़ गया, परन्तु उससे हटा हुआ रहता है वह कहता है कुछ कुछ कम। और जो अज्ञानी बोझसे लदा हुआ है, परको अहरूपसे अनुभवता है उसकी दशा है मरे तो हम जैसा।

अध्रुवका सदुपयोग—भैया ! आज मनुष्य हैं, पुण्यका उदय है सो जरा सी बात पर इतराते हैं, ऐंठते हैं दूसरों पर जोर चलाते हैं, किसी हठ पर अड़ जाते हैं और ये जो पेड़ खड़े हैं यदि ये ही हम होते तो हमारे लिए कहा भिन्ड होता और कहा ये मकान होते, कहा परिवार होता ? तब तो कुछ नहीं था। तो भाई आज मनुष्य हुए हैं तो हमें सदुपयोग कर लेना चाहिए इस अध्रुव समागमका। विनाशीक चीजें मिली हैं तो बुद्धिमान् वह है कि जिसने विनाशीक वस्तुके उपयोग द्वारा अविनाशी वस्तुको प्राप्त कर लिया।

शुभ अवसरका सदुपयोग—एक नगरमें इस प्रकार राजा बननेकी पद्धति थी कि एक वर्षको बनाया जाय राष्ट्रपति, फिर एक वर्ष बाद उसे जंगलमें छोड़ दिया जाय। पैन्शनका झगड़ा न रहेगा। एक साल मौज माननेका नतीजा तय कर दिया गया। सो कई लोग राजा बने और बुरी मौत मरे। एक बार एक चतुर राजा बना। उसने सोचा कि एक वर्ष बाद यह नियम हम पर भी लागू होगा, तो एक वर्ष तक तो हम स्वतन्त्र हैं, राजा हैं, जो चाहें कर सकते हैं। सो जंगलमें खेतीबाड़ी करवाई, पहिलेसे ही पचास बैल भेज दिये और छोटासा मकान बनवा लिया। अब जब एक वर्ष पूरा हुआ तो जंगलमें फेंक दिया। तो अब क्या परवाह उसे ? सो भैया ! अवसर पानेका लाभ तो लूटना चाहिए। अब यहां कुछ समयके लिए मनुष्यरूपी राजा बन गए हैं, तो अब राजा बनकर जितने समयको हमें पुरुपार्थ की आजादी मिली है हम पुरुषार्थ कर लें, न करें तो मनुष्यरूपी राजा बनकर यह भी हो सकता है कि हमको नीचे फैंक दिया जाय। मनुष्यसे बढ़ कर और कहां पहुचेगा ? सो जंगलमें फेंका जाय तो चाहे निगोद बने, चाहे विकलत्रय बने, कोई बुद्धिमान मनुष्य बन जाय तो जितने समयको मनुष्य है उतने समयके लिए तो इसे स्वतन्त्रता है।

तत्काल उचित कर्तव्यकी आवश्यकता—एक किम्वदंती है कि एक मनुष्यकी ऐसी तकदीर बनायी गयी कि वह एक वर्ष तक आनन्दसे रहेगा खूब दान करेगा, खूब त्याग करेगा और बाकी ४६ वर्ष तक दुःखमें रहेगा,

दरिद्र रहेगा, दीन रहेगा। बुद्धिमान् था वह। उसने सोचा कि एक वर्षका मुझे सुख दिया है तो मैं उस सुखके वर्षका पहिले ही मैं क्यों न उपयोग करूँ ? सो खूब सम्पत्ति थी, खूब त्याग किया, खूब दान किया, खूब उपकार किया, तो उससे ४९ वर्षकी जो बुरी तकदीर थी वह भी बदलने लगी। बस सारा जीवन अच्छा बन गया। किसी किसी मनुष्य की ऐसी आदत है कि थालीमें कोई चीज परसी है, भाजी, दाल, रोटी आदि और बूँदी लड्डू आदि भी परसे हों तो वह यह ख्याल करता है कि भाजी रोटी पहिले खा लं और पीछे फिर मुँह मीठा करेंगे। शायद कोई ऐसा भी सोचता होगा कि पहिले मीठेका आनन्द लें, पीछे फिर देखी जायेगी। और कहो बीचमें बूँदी लड्डू कोई परोसने वाला आ जाय तो जिसकी थालीमें नहीं है उसे और मिल गया और जिसकी थालीमें पीछे खानेके लिए रखा है उसे न परसा जायेगा तो अच्छे दिनोंका उपयोग पहिले करो। बुरे दिन फिर यों ही बिना वेदनाके निकल जायेंगे। तत्काल ही तो अच्छा करलो, भविष्यकी क्या चिंता करना ?

सत्य अनुभवनका सुफल--जो योग्य है, विवेकपूर्ण है, वह सारा काम उठा लेगा। जो पुरुष अपनेको अन्य-अन्यरूप नाना प्रकार अनुभवता है उसके विह्वलताएँ होती हैं। और जो अपनेको सबसे न्यारा मात्र ज्ञानस्वरूप निरखता है उसके विह्वलता नहीं होती। इस तरह यह सब निर्णय सुनकर अपने आपको ऐसे पुरुषार्थमें लगाना चाहिए कि हम अपने को अधिक समय तक आकाशवत् निर्लेप ज्ञानानन्द स्वरूप एक चैतन्यपदार्थ जो सबसे न्यारा हू और कृतार्थ हू, मैं अपने आपमें ही जो कुछ करता हूं सो करता हू, मुझे परमें कुछ करनेका पड़ा ही नहीं है। निरन्तर अपनेमें परिणमता रहता हूं। ऐसा विविक्त ज्ञानज्योतिमात्र अपने आपकी श्रद्धा करें तो कर्म फलके भोगोंसे बरी हो सकते हैं।

सकल विसवादोंका मूल प्रकृतिस्वभावस्थितता - अज्ञानी जीव प्रकृतिके स्वभावमें स्थित है अर्थात् प्रकृतिके उदयका निमित्त पाकर उत्पन्न होने वाले निजमें जो भाव हैं उस प्रकृति स्वभावको अहरूप मानकर संतोष किए बैठा है, इसी कारण वह सदा कर्मोंके फलका अनुभवने वाला होता है। जड़ एक है और शाखा, पत्ते, फल, फूल कितने बन गए हैं। इसी तरह विसम्वादोंकी जड एक है, उसके सहारे फिर विसम्वाद कितने फैल गए हैं। वह जड़ यही है प्रकृतिके स्वभावमें बैठ जाना और उसके विसम्वाद कितने बन गए ? इन्द्रियके विषयमें और मनके विषयमें आत्महित जान कर कितना तीव्र अनुराग हो गया है ? उसकी सिद्धिके लिए दूसरोंका न सम्मान अपमान देखा जाय, न सुख दुःख देखा जाय, अपने ही अपने

अच्छे भोग उपभोग रूप प्रकृति पडनेकी आफत बन गई है इस मोहग्रस्त अज्ञानी प्राणीको।

अज्ञानियोंके महन्तोंके प्रति रोषकी प्राकृतिकता—जैसे कुत्ता कुत्तेको देख कर भौंके बिना रहता नहीं। कोई हाथी निकले तो मनुष्य बडे चावसे देखेंगे कि आज पशुराज निकले हैं और कुत्ते भौंके बिना रह नहीं सकते। उस हाथीका ये कुत्ते बिगाडेंगे क्या? कोई बहुत बड़ा बलिष्ट कुत्ता किसी दूसरे गावसे निकलता हो तो चार दिनके पैदा हुए पिल्ले भी भौंकने लगते हैं। वह बलिष्ट कुत्ता गम्भीरतासे धीरतासे चला जा रहा है और वे पिल्ले अपनी बुद्धिमानी समझ रहे हैं। मैंने देखो कैसा आक्रमण किया, कैसा शीत युद्ध किया और वे कुछ कर नहीं सकते। इसी प्रकार यह प्रकृतिके स्वभावमें निरत हुआ अज्ञानी स्वयं निर्धन है, सो ज्ञानियोंको देखकर रोष करता है, मनमें ज्वलन करता है, खुद कुछ कम समझने वाला, कम जानने वाला है किन्तु हा कुछ जाननेकी कुछ डींग होती है तो कुछ समझदार पंडित विद्वानोंसे रोष करता है और क्या एक कहानी कही जाय, जिसका जैसा उपादान है वह अपने उपादानके अनुसार अपनी प्रवृत्ति करता है। उदय है ना ऐसा, सो बाहरमें जिस चाहे को आश्रय बना डालता है।

अज्ञानियोंको ज्ञानियोंके प्रति रोषकी प्राकृतिकता—जो प्रकृतिके स्वभावमें पड़ा हुआ है, शुद्ध आत्मतत्त्वकी दृष्टिसे दूर है ऐसा पुरुष ज्ञानी संतोंको भी देखकर मनमें रोष करता है। जैसे चोर रात्रिमें जागने वालों पर क्रोध किया करते हैं, सो क्यों नहीं जाता, क्यों जग रहा, जग रहा तो आंखें क्यों नहीं फूट जातीं—इस तरहसे व्यथका रोष करते हैं। इसी तरह जो प्रकृतिके स्वभावमें पड़ा हुआ है वह बाहरमें ज्ञानी संतोंको भी करुणाके भोगनेकी नजरसे नहीं देख सकता है और क्या-क्या विष पड़ा हुआ है इस अज्ञान अवस्थामें, सो उसके ये सब फल नजर आ रहे हैं। जन्मते हैं मरते हैं, फिर जन्मते हैं।

दो परिज्ञानोंकी नितान्त आवश्यकता—भैया! और ज्यादा न समझ सको तो सीधी बात इतनी तो जान लो कि यह शरीर है सो मैं नहीं हू। इस शरीरको देखकर क्या अभिमान करना और इस शरीरकी भी क्या ज्यादा सभाल करना? जो शरीर है सो मैं नहीं हू। इतनी तो मोटी बात ध्यानमें लावो। और एक यह बात ले आवो कि मेरा काम तो केवल जानने होता है। जो विचार सुख दु ख विकल्प जो कुछ भी बातें हुवा करती हैं वे मिट जाने वाली बातें हैं। मेरा स्वरूप नहीं हैं। मेरा काम तो मात्र जाननहार बने रहना है। सिर्फ इन दो बातोंको अपने हृदयमें घर कर लें। बडे की शोभा इसीमें है। धनिक हुए हो तो बडप्पन इसीमें है,

बड़प्पन धनमें नहीं है । शरीर अच्छा पाया है, स्वस्थ हुआ तो शरीरका गर्व करनेमें बड़प्पन नहीं । शरीरसे न्यारा अपने आपके शुद्ध ज्ञायकस्वरूप को रुचि करनेमें बड़प्पन है ।

विसवादोंकी जड़ अज्ञान—जड़ एक है और विसम्वादका कितना बड़ा विस्तार है ? जो अपने को कुछ लोक पद्धतिमें बड़ा दिखता है वह ईर्ष्या का पात्र बन जाता है । ऐसी मिथ्यामति अज्ञानी जीवोंकी प्राकृतिक देन है । व्यर्थका रोप क्यों किया जा रहा है ? जरा देखो कौवा तो कुरूप होता है उसे कुछ लेना देना नहीं है हंस बेचारेसे, मगर हंसको देखकर कौवोंको चिढ़ हो ही जाती है । वह कौवा मनमें रोष कर ही बैठता है । यह सब क्या है ? अज्ञानकी बात है । एक बार हंस और हंसनी दोनों कहीं चले जा रहे थे उड़ते हुए । रास्तेमें रात्रि होने लगी तो एक जगह वे ठहर गए । सो ठहरे कहां थे, जहां कौवे बहुत रहते थे । कौवेसे कहा कि भाई रात्रि भर ठहर जाने दो । कहा ठहर जावो । ठहर गए, पर जब सुबह हुआ, हंस हंसनी जाने लगे तो एक कौवे ने हंसनीको रास्तेमें रोक दिया । हंससे कहा कि तुम हमारी स्त्री कहां लिए जा रहे हो ? हंस बड़ा परेशान हो गया, बोला भाई क्यों अन्याय करते हो, हंसनीका देखो हमारी तरह स्वरूप है, स्त्री हमारी है तुम्हारी नहीं है । तो कौवा बोला, वाह यह क्या नियम है कि कालेकी स्त्री काली ही होनी चाहिए ? अरे कालेकी स्त्री गोर भी होती है, गोरकी काली भी होती है । रात भर हमने ठहरने दिया और हमारी ही स्त्री लिए जाते हो । अब हैरान होकर बोला—अच्छा भाई पचायत कर लो । हमारी स्त्री हो तो हमें देना और हमारी स्त्री न हो तो फस तो हम गए ही, जो तुम चाहो सो कर लो । सो पचायत करो ।

पक्षवश पचायतमें अन्याय—पचायतमें ५ कौवोंको चुना, उनमें एक सरपंच बन गया । अब बयान लिए गए दो कौवोंने यह निर्णय दिया कि यह स्त्री हंसकी है और दो कौवोंने कहा कि यह स्त्री कौवेकी है । अब सारा न्याय सरपंचके आधीन हो गया । सब बहुत गौरसे देख रहे थे कि सरपच महोदयकी क्या दिव्य वाणी निकलती है ? सरपंच बोला कि यह स्त्री कौवे की है । अब तो भाई जो कौवा लड़ रहा था कि यह मेरी स्त्री है वह बेहोश होकर गिर गया । उसके किसी तरहसे चोंचमें पानी डालनेसे होश आया । तब पूछा—भाई तुम क्यों बेहोश हो गए ? तुम्हारे ही तो मनका फैसला हुआ ना ? वह कौवा बोलता है कि हम बेहोश यों हो गए कि एक तो हम अन्याय पर उतारू थे और पंच सरपच जिसमें परमात्मा बसते हैं वे सरपच भी अन्यायका फैसला कर दें, इसका हमें अफसोस है । यह स्त्री मेरी नहीं है और दे भी दे यह स्त्री कौवेको तो वह क्या करे ?

निज प्रभु पर अन्याय—यह सारा जगत् अन्याय और अत्याचारसे भरा हुआ है। इन सबकी जड़ है अज्ञान भाव, प्रकृतिके स्वभावमें स्थित होना, किन्तु ज्ञानी जीव प्रकृतिके स्वभावसे विरक्त रहता है। कितना बड़ा ज्ञान बल है कि खुदमें ही भाव हो रहा है और उस ही समय जिस काल भाव हो रहा है उसी कालमें उस विभावसे अपनेको विविक्त ज्ञानमात्रकी श्रद्धा बनाए हुए हैं। यह कितना बड़ा बल है? ऐसा ज्ञानी पुरुष कर्मफलका अनुभव करने वाला नहीं होता है। इस ज्ञानीकी दृष्टिमें स्वर्णपंकवत् विदित होता है। इन सोने चांदीके गहनोंसे ही तो कोई शांति न हो जायेगी। नाकको छिदाकर नथ पहिन लिया तो नाक भी चाहे भरी रहे, सुर्र, सुर्र नाक निकलती रहे, किन्तु उसका नाकमें पहिनना ही मंजूर है। अरे रुचि न रक्खो आभूषणोंकी। पहिनना है तो थोड़े पहिन लो, पहिनना चाहिए क्योंकि कोई जरूरत पड़े तो काम आए। पर दृष्टिमें तो यह बात बनी ही रहे कि ऐसे शृङ्गार करना ठीक नहीं है।

ज्ञानीकी रुचि—भैया! इस शरीरको ही अपना भगवान रूप जान कर शृङ्गारमें मत लगो। कई लोग भगवानका शृङ्गार करते हैं। इस तरह अपने शरीरका शृङ्गार तो मत करो। हो गया साधारणतया। अपनी अधिक दृष्टि रखो अपने आपमें बसे हुए सहज ज्ञायक स्वरूप भगवानकी उपासनामें। किसी क्षण एक साथ भूल जावो सबको। उससे ऐसा अलौकिक आनन्द प्रकट होगा कि फिर ये सब नीरस लगने लगेंगे। ज्ञानीपुरुष को सिवाय एक ज्ञानमय प्रभुके दर्शन करने और अपने आपमें मग्न रहने के और कुछ नहीं सुहाता।

ज्ञानीपनकी उपासना—जैसे कामी पुरुषको स्त्रीके अनुरागके सिवाय और कुछ नहीं सुहाता, इसी प्रकार ज्ञानी पुरुषको निज ज्ञायकस्वभावकी रुचिके सिवाय और कुछ नहीं सुहाता। कितना अन्तर है ज्ञानार्थी और धनार्थीमें? जैसे तृष्णा वाले पुरुषको धनका संचय करते रहनेके सिवाय और कुछ नहीं सुहाता इसी तरह आत्मगुणोंके पारखियोंको अपने गुणोंके शुद्ध विकासमें बने रहनेके सिवाय और कुछ नहीं सुहाता। ज्ञानी पुरुष कर्मफलका भोगने वाला नहीं है। दुःख और सुखका फैसला ज्ञान और अज्ञान पर निर्भर है। धन कन कंचनके जोड़ने पर निर्भर नहीं है। जो ज्ञानस्वभावमें स्थित है, अपनेको ज्ञानमात्र विश्वास किए हुए है वह पुरुष ज्ञानका ही भोगने वाला है, शांतिका ही अनुभवने वाला है, वह कर्म फल का भोक्ता नहीं है। ऐसा नियम जान कर निपुण पुरुषको ज्ञानिपना भावना चाहिए और एक शुद्ध ज्ञानज्योति मात्र जहां केवल ज्ञानका प्रकाश है, विकल्पोंका जहां सम्बन्ध नहीं है, ऐसे शुद्ध आत्मस्वरूपमें अपने महान्

तेजमें निश्चल होकर ज्ञानिपनेका सेवन करना चाहिए।

सकटोंके विनाशका सुगम उपाय—जैसे जमुना नदीमें ऊपर मुँह निकाले हुए कछुवे पर पचासों पक्षी टूटने लगते हैं तो ये सारे बखेड़ा, सारे झंझट मिट जाना केवल कछुवे की एक कला पर निर्भर है कि पानीमें ५ अंगुल नीचे डुबकी लगा ले। उसके सारे क्लेश दूर हो जायेंगे, उन पक्षियोंका सारा आक्रमण विफल हो जायेगा। इसी तरह दु:ख अनेक लग रहे हैं इस जीवको, निर्धनताका दु:ख, लोगोंसे गाली सुनने का दु:ख, घरमें भी स्त्री पुत्र आज्ञाकारी नहीं हैं उसका दु:ख, समाजमें भी लोग हम से आगे बढ़ बढ़कर चलते हैं इसका दु:ख, दूसरेके सम्मान अपमानका दु:ख इस तरह इन दु:खोंसे सब परिचित हैं, अनेक दु:ख तो ऐसे हैं कि जिनकी न शकल है, न रूप है, वे दु:ख भोगे जा रहे हैं। किन्तु उन सब दु:खोंके मिटानेकी एक कला है कि इस ज्ञानसरोवरमें इस अपने उपयोगको जरासा डुबा लो।

ज्ञानकलाका प्रताप—मैं ज्ञानमात्र हू, और कुछ हू ही नहीं, बाहरी परिग्रह छिद जायें, भिद जायें, कहीं जीव विलयको प्राप्त हो, वह तो मेरा कुछ ही नहीं, उसका परिग्रह नहीं है, ऐसा निर्णय रखने वाला जो ज्ञानी पुरुष अपनेको अपनेमें ले जाय तो सारे दु:ख संकट ये उसके एक साथ समाप्त हो जाते हैं। उनमें यह क्रम भी नहीं होता कि पहिले अमुक दु:ख मिटेगा, फिर अमुक दु:ख मिटेगा। एक इस कलाका अभ्यासी अपने को बनाना, यही एक काम करना है। बाहरी बातोंको उदय पर छोड़िये क्यों कि जब चाहते हुए भी चाहने के अनुसार बाहरमें कुछ काम होता नहीं है तो उस कामके पीछे क्यों पड़ा जाय, उसे छोड़ो उदयानुसार, जो काम स्वाधीन है, आत्महितके कर्मोंकी ओर दृष्टि दीजिए।

प्रवृत्तिमे भी निवृत्ति—जो अपने उपयोगको अपने ज्ञानसरोवरसे बाहर-बाहर बनाए है उसके ऊपर सैकड़ों उपद्रव आते हैं। जो अपने उपयोग को अपने ही इस आनन्दमय गृहमें बसाये हुए है उसको सताने वाला कोई नहीं हो सकता है। अज्ञानी जीव ही कर्मफलका भोक्ता है। ज्ञानीको भोक्ता नहीं कहा। भोक्ता है तिस पर भी भोक्ता नहीं है। जानता है तिस पर भी जानने वाला नहीं है। ४—७ वर्षके बच्चेको मार पीटकर स्कूल ले जाते हैं, वह रोता चला जाता है पर उसके अन्दरके प्रभुकी आवाज तो देखो, क्या वह स्कूल जा रहा है? नहीं जा रहा है। जाता हुआ भी नहीं जा रहा है। खाता हुआ भी नहीं खा रहा है। या तो बड़ी रंज हो या बड़ा आनन्द हो तो ऐसी स्थिति बनती है कि जाता हुआ भी नहीं जा रहा है। खाता हुआ भी नहीं खा रहा है। ज्ञानी पुरुषको सबसे बड़ा रंज

है इस विभावके कब्जेमें पड़ जानेका। उस रजके मारे बेचारा खाता हुआ भी नहीं खा रहा है। इस ज्ञानी जीवको सबसे बड़ा आनन्द है ज्ञानस्वरूप के अनुभवसे उत्पन्न हुआ विलक्षण आनन्द। उस आनन्दरसको जिसने भोग लिया है वह ज्ञानी इस नरजीवनके लिए खा रहा है तो भी खाता हुआ नहीं खा रहा है। भोगने वाले तो अज्ञानी ही होते हैं।

ज्ञानीकी गुप्त अन्त अनाकुलता—एक ज्ञानी अन्तरात्मा श्रावक बच्चे को गोदमे लेकर खिला रहा है किन्तु दृष्टि है इस ओर कि यह परिवारका बधन जो विकल्पों का आश्रयभूत है, इससे हटकर कब मेरी ऐसी स्वतत्र वृत्ति हो कि मैं निर्जन विपिनमें केवल एक आत्मारामको देखकर अपने आपमें आनन्दमग्न होऊँ। तो वह जगलमें तो नहीं है, पर जो आनन्द जगलमें लूटा वही आनन्द गोदीमें बैठे हुए बच्चेको खिलाते हुएमे भी है। उससे बढ़िया तो अज्ञानी मिथ्यादृष्टि है कि खिलानेका आनन्द तो लूट रहे हैं। ज्ञानी की दशा तो ऐसी है कि दृष्टि लगी है एकान्त आत्मतत्त्वकी। जो सामने है उसमें मन लगता नहीं। तो क्या वह अज्ञानीसे बुरा है? अरे अज्ञानी तो अज्ञानकी लीलाएँ करके निरन्तर दुःखी हो रहा है। वह तो स्वरूप दृष्टि बनाकर अन्तरमें अनाकुल तो बना हुआ है। भोगने वाला अज्ञानी पुरुष ही होता है ऐसा यहा नियम कहा जा रहा है। उस नियमको अब आचार्य कुन्दकुन्ददेव एक गाथा द्वारा प्रकट करते हैं।

ण मुयइ पयडिमभव्वो सुट्ठुवि अज्झाइऊण सत्थाणि।
गुडदुद्धंपि पिवता ण पण्णया णिव्विसा होंति ॥३१७॥

अभव्यकी प्रकृति—अभव्य जीव शास्त्रोंका अध्ययन करके भी प्रकृति को नहीं छोड़ता है। जैसे साप दूध और गुड़ पीकर भी निर्विष नहीं होता है, सर्प विषभावको न तो खुद छोड़ता है और जो विषभावको छोड़नेमें समर्थ जो दूध शक्कर है वह भी पिला दे, उसे भी नहीं छोड़ता। इस ही प्रकार अभव्य जीव प्रकृतिके स्वभावको स्वय भी नहीं छोड़ता और प्रकृति स्वभावको छोड़नेमें समथ जो द्रव्य श्रुतका ज्ञान है उस ज्ञानसे भी प्रकृति के स्वभावको नहीं छोड़ता। क्योंकि अभव्य जीवके भाव श्रुत ज्ञानरूप शुद्ध ज्ञानका अभाव है इस कारण वह अज्ञानी ही रहता है, जैसे नीतिकार लोग कहते हैं कि सिंह यदि उपवास करले तो वह तो उपवास मासका ही करेगा। सो प्राय सिंह यदि ज्ञानसे जगता है तो चूँकि वह बड़ा जीव है ना, उसमें जब बल प्रकट होता है तो ऐसा आत्मबल प्रकट होता है कि समाधिमरण ही कर डालता है। प्रकृति है रागद्वेषमोहका परिणमन। इन रागादिक भावोंको अभव्य स्वय नहीं छोड़ता और रागपरिहार करने में समर्थ श्रुताध्ययन है उस श्रुतका अध्ययन भी करे तो भी नहीं छोड़ता।

जैसे देखा होगा कि जो विवादी लोग हैं, ऊधमी लोग हैं वे ज्यादा पढ़ जायें तो भी उनके विवाद और बढ़ जाता है।

अभव्यकी चरम ज्ञानयोग्यता व प्रकृतिस्वभावका अपरिहार— भैया! अभव्य जीवके क्या कम ज्ञान है? ग्यारह अंग और ९ पूर्वोंका धारी होता है। धरसेनाचार्यसे तो ज्यादा है ही। ग्यारह गुनेसे लेकर १४, १५, गुने तक भी यह अभव्य जीव ज्ञान करले तो भी अन्तरमें आत्मज्ञान, आत्मानुभव, आत्मीय आनन्दकी झलक नहीं उत्पन्न होती, कितनी विचित्र बात है? एक मूँग होती है जो कि कम चुरती है, कंकड़ पत्थरकी तरह रहती है। सो सब दाल चुर जायें, पर पतेलीमें वह मूँगकी दाल कंकड़ पत्थरकी तरह ज्योंकी त्यों बनी रहती है।

का भान कर लेते हैं उन्हें फिर क्लेश नहीं रहता है। एक चक्रवर्ती जिसके ६ खण्डकी विभूति है उसे कितना पुण्यवान् कहते हैं? लोकमें उसे बड़ा पुण्यवान् माना जाता है। और ६ खण्डकी विभूति त्याग करके निर्ग्रन्थ दीक्षा ले तो अब क्या हो गया पुण्यहीन? नहीं। उससे भी अधिक पुण्यवान है। तो धन सम्पदासे पुण्यवान नहीं होते किन्तु भीतरके संतोष से, ज्ञानके प्रकाशसे पुण्यवान् बोलिए। किसको दिखाना है, कौन साथी बनेगा? सब मायामय हैं, पातकी हैं, ये ससारमें रुलने वाले हैं, किससे प्रशंसा लूटना चाहते हैं? सब प्रशंसा किसीकी नहीं कर सकते हैं।

सबके तुष्ट किये जानेके उपायका अभाव--एक सेठ जी थे। उनके चार लड़के थे। जब न्यारे हुए तो ५ लाखकी जायदाद थी, एक एक लड़के को एक एक लाख दे दी ईमानदारीसे और एक लाख खुदको रख लिया। अब पिता जी बोले कि बेटा बँटवारेमें लोग बरबाद तक हो जाते हैं, कोई हठ लग जाय तो एक हाथ जगह पर लग जावे। जो कुछ मिला है वही सब उस एक हाथ जमीनके पीछे बरबाद कर दें। तुम लोग तो बड़े प्रेमसे बड़ी शांतिसे न्यारे हो गए हो सो एक काम करो खुशीमें। बिरादरी वालों को पंगत करो। तो सबसे पहिले छोटे लड़के ने पंगतकी। बिरादरी वाले खाने आ गए अपनी-अपनी गडईमें पानी भरकर। यह पुरानी प्रथा कह रहे हैं, अब तो कुल्हड़ चलते हैं। सब जीमने लगे। उस छोटे लड़के ने ५-७ मिठाई बनवायी थी। सो बिरादरीके लोग जीमते जायें और कहते जायें कि देखो—छोटा लड़का बापको ज्यादा प्यारा होता है क्यों कि वह बुढ़ापेमें होता है, सो सारा धन बापने इसे दे दिया है, इसीसे खुशीमें आकर ५, ७ मिठाई बनवाई हैं। १०, ५ दिन बादमें छोटेसे जो बड़ा था उसने पंगत की। जो बिरादरीके लोग जीमने आ गये। उसने तीन मिठाई बनवायी थी सो वे खाते जायें और कहते जायें कि देखो यह कितना चालाक है-- छोटे ने तो ५-७ मिठाई बनवायी थी, इसने तीन ही बनवाई। यह बोलनेमें भी बड़ा चतुर है। इसने चाहे कितना ही धन रख लिया हो। १० दिन बाद उससे बड़े तीसरेने पंगत की। उसने मिठाई ही नहीं बनवायी, सीधी पूड़ी और साग रख दिया, बिरादरीके लोग जब जीमने बैठे तो कहें कि यह तो बड़ा ही चतुर निकला। इसने तो कसम खानेको भी मिठाई नहीं रखी और है बड़ा, सो चाहे कितना ही धन रख लिया हो। अब आयी सबसे बड़ेकी बारी सो उस बड़े लड़के ने चनेकी दाल और रोटी बनवायी। बिरादरी वाले जीमते जायें और कहते जायें कि सबसे चुस्त चालाक तो यह निकला। इसने तो पकवानका नाम ही नहीं रखा और सबसे बड़ा है और बड़ा लड़का बाप बरोबर। सो चाहे सारा ही धन समेटकर रख लिया हो। तो बतलावो कौनसा काम आप-

करें कि जिसमें सब खुश हो जायें। भला भला भी करते हैं पर सभी खुश नहीं हो सकते हैं। आखिर बिमाया ही तो है, किसीसे कुछ छिनाया तो नहीं, तिसपर भी वे दसों बातें कहते हैं।

सो भैया ! इस दुनियामें किसको खुश करनेके लिए विकल्प बढ़ाये जायें और अपने इस ज्ञानस्वभावी भगवान आत्मा पर अन्याय किया जाय ? विपत्ति है तो एक यही ही है कि हम अपने सहज स्वरूपका बोध नहीं कर पाते हैं। तो यह अभव्य जीव भली प्रकार अर्थात् खूब उपदेश दे सके, कंठस्थ हो, ऐसा शास्त्रोंका अध्ययन करके भी प्रकृतिके स्वभावको नहीं छोड़ते। इस कारण यह बिल्कुल निश्चित समझो कि अज्ञानी जीव प्रकृतिके स्वभावमें स्थित होनेसे वह वेदक ही है। गांव और नगरमें देख लो, जो जितना अज्ञानी है, संकट आने पर, इष्ट वियोग होने पर वह उतना ही रुदन उतना ही दुःख करता है, ज्ञानी जीव विपत्ति आने पर भी ज्ञाता द्रष्टा रहता है। यह हो गया ऐसा।

ज्ञानीकी वृत्ति-पद्धति—भैया ! अपना भला चाहते हो तो यह कमाई करो, जो गुप्त ही गुप्त स्वाधीनतासे बिना श्रमके अपने आपमें किया जा सकता है। कोई भी करले। धनी हो, निर्धन हो, पशु हो, पक्षी हो, इस कमाईको करले कि रागादिक भावोंसे पृथक् ज्ञानमात्र होनेसे इस मुझ ज्ञानमात्र आत्माका एक परमाणुमात्र भी कुछ नहीं है। ऐसी प्रतीतिवाला ज्ञानी संत प्रकृतिके स्वभावसे हटा हुआ रहता है। जैसे कोई दुष्टोंके फंद में पड़ जाय और जानकारी हो जाय कि यह फुसला कर बहलाकर संकटों में डालने वाला है तो वह उससे मधुर बोलकर भी उससे हटा हुआ रहता है, और मौका तकता है कि कोई अवसर मिले कि मैं इस संगसे पिण्ड छुड़ाऊँ। इसी तरह इन इन्द्रियोंका बहकावा, फुसलावा हो रहा है। अज्ञानी, अविवेकी स्खलित हो होकर विषयोंकी ओर झुकता है, ऐसा कुसंग मिला है इस आत्मप्रभुको। तो यह भी ज्ञानी है, विवेकी है। सो जानता है कि फँस तो गए ही हैं हम। जीवनसे जीना भी पड़ेगा, शरीर को रखना ही पड़ेगा। पर उस विषय वासना कमाई, भोग इच्छासे हटना ही रहता है। उसके अन्दरमें यत्न बना रहता है। जब कि अज्ञानी अजीव इन्द्रियोंके विषयोंमें टूट कर गिरता है। मुझसा भाग्यवान् कौन है जगतमें जो अन्य सब जीवोंको तुच्छ मानता है।

वस्तोंकी स्वापराधजन्यता—अज्ञानी जीव प्रकृतिके स्वभावमें स्थित है। सो वह आकुलताओंको भोगने वाला होता है। यही सबसे बड़ा अपराध है कि हम अपने स्वरूपको नहीं जान पाते हैं। जो भी दुखी हो रहे हैं वे अपने अपराधसे दुखी हो रहे हैं, दूसरेके अपराधसे दूसरा कभी

दुःखी हो ही नहीं सकता। व्यर्थके वैर अपराधकी दृष्टि रखना दूरसे खुद का अकल्याण है। कोई जगतमें ऐसा विरोधी नहीं है। दूसरेके अपराधसे मुझे कभी क्लेश नहीं होता है। हम दुःखी खुदके अपराधसे होते हैं। ढूँढो उस अपराधको। खुदका व्यावहारिक कार्योंमें अपराध मिलेगा, और न मिलेगा व्यावहारिक कार्योंमें अपराध तो मानसिक विकल्पोंमें अपराध मिलेगा और न भी मिले मानसिक विकल्पोंका अपराध तो जो गुजर रही है हम पर उसमें उपयोग जुड़ा है यह ही एक अपराध है। स्वयंके अपराध से ही जीव शंकित रहता है, आकुलित रहता है और विपत्तियोंको बढ़ाता है। जो अपराध नहीं करता अर्थात आत्माकी आराधनामें लगता है वह आत्माको ज्ञानमात्र मानता है।

अपराध और आराधना—अपराधका विरुद्ध शब्द आराधना। जैसे मूर्खता और विद्वत्ता विरुद्ध शब्द है ना, शत्रुता, मित्रता, जैसे ये दो विरुद्ध शब्द है, इसी प्रकार ये भी दो विरुद्ध शब्द हैं—अपराध और आराधना। आराधना नहीं है वही अपराध है और आराधना चल रही है तो अपराध नहीं है। अथवा मिलता जुलता शब्द ले लो अपराध और आराध। अप और आ ये दो उपसर्ग हुए ना, अपका अर्थ है दूर कर दिया और राध मायने राधको, जो राधाको दूर कर देता है सो अपराध है। भगवान पार्श्वनाथके मायने—जिसका नाथ पासमें ही हो सो है पार्श्वनाथ। पार्श्व मायने पास।

आराधना—राधेश्याम—राधासे समन्वित जो श्याम है सो है राधेश्याम, श्यामाङ्ग पार्श्वनाथ। अथवा जो भी ज्ञानी आत्मसिद्धिसे समन्वित है वह है राधेश्याम, यही निरपराध है। अपराधी वह है जिसकी राधा खो गयी। अप मायने बाहर हो गयी है राधा याने सिद्धि। अपनी-अपनी राधा ढूँढ लो और अपराध मिटा लो। राधा मायने सिद्धि राधाका अर्थ है सिद्धि। 'आ समन्तात् राधा यत्र सा आराधा' सारे प्रदेशमें जहा राधा बस गयी, आत्मसिद्धि हो गयी उसका नाम है आराधना। यह सारा जगत आत्मदृष्टिसे रहित होकर अपराधी बना हुआ है और जगतमें रुलता है।

विपत्तिमें स्वरक्षाका यत्न—जब कोई विपत्ति आती है तो अपने अपने बचावकी पड़ती है। अभी आप सब बैठे हैं, सभा है और एक तरफसे चूहा ही निकल जाय तो ऐसा भागेंगे कि चाहे चूहा ही मर जाय, कुछ नहीं देखेंगे। चाहे पासमें छोटे बच्चे भी लेटे हों, उनके भी पेटमें लात धर कर निकल भागेंगे। ऐसा प्राण छोड़कर भागे और निकला क्या? एक बेचारा चूहा। जरा सी गड़बड़ हो जाय तिस पर भी अपनी-अपनी पड़ती है, अपना अपना बचाव करते हैं और बड़ा उपद्रव आ जाय तो

वहां सब जानते हैं- अपना ही बचाव करेंगे। तो इतनी बड़ी विपत्ति हम आप पर पड़ी है कि यह रागरूपी आग निरन्तर अपनेको जला रही है। किन्तु अपने बचावकी मनमें नहीं आती।

अज्ञानियोंका भोगार्थ धर्म- भैया! धर्मपालन तो दूर रहो, धर्म करेंगे तो उसे राग और सुख बढ़ानेकी विधि बनायेंगे धर्म। यह तो भोग भोगने की विधि है कि जरा थोड़ी पूजा कर लें, लोगोंको जरा धर्मका अपना जौहर दिखा दें तो ये सब ठाठबाटसे रहनेके साधन हैं। लोगोंमें महत्ता भी होगी और धन भी बढ जायेगा, सुख भी मिल जायेगा और कभी थोड़ी कमी भी हो जायेगी तो महावीर जी को चार छत्र और चढ़ा देंगे, कैसे कमी हो जायेगी, बड़ा मनमें साहस बना है। यह क्या बात है? ये भोग-भोगनेकी विधियां बना ली है, धर्म नहीं है।

धर्मपालनका प्रारम्भ – धर्मका प्रारम्भ यहीं से है कि ऐसा ज्ञान जगे कि प्रकृतिके स्वभावमें यह न टिक सके। उपद्रव आ रहे हैं पर उनसे हटा हुआ रहे। जिसे अपनी सावधानी है वह निराकुल रहता है। सावधान किसे कहते हैं? जो अवधानसे सहित हो और अवधान किसे कहते हैं? अपने आपका अपने आपमें सर्व ओरसे धरण हो जाना इसका नाम है अवधान। जरा शब्दोंके भी पीछे चलते जायें तो ये सब हमें शिक्षा देंगे। तुम्हें यों करना है।

अविवेकी मनुष्य उल्टा पेड़—भैया! यदि कोई मनुष्य न विवेक बनाए तो वह आदमी क्या है? उल्टा पेड़ है। इन पेड़ोंकी जड़े तो नीचे होती हैं और शाखाएं ऊपर होती है दो शाखाये फैल गयीं, चार शाखाएं फैल गयीं, मगर इस मनुष्यरूपी पेड़की जड़ मस्तक तो ऊपर है और ये टांगे आदि शाखायें नीचेको लटक गयीं। पेड़ जड़से आहार ग्रहण करता है यह पुरुष मस्तक मुख जड़से आहार ग्रहण करता है। ये मनुष्य जिनके विवेक न जगा, वे चलते फिरते पेड़ हैं। तो यह श्रद्धान करना चाहिए कि हम रागद्वेषसे न्यारे मात्र ज्ञानमात्र हैं, ऐसी सावधानी हम आपकी बनी रहे।

ज्ञानीके अभोक्तृत्वका नियम— अज्ञानी पुरुषको वीतराग स्वसम्वेदन ज्ञान नहीं होता है, सो कर्मोंका उदय होने पर मिथ्यात्व रागादिक भावोंमें तन्मय होता है, इस कारण ज्ञानी कर्मोंके फलका नियमसे वेदक होता है। अज्ञानी जीव ऐसा अनुभव करता है कि मैं अनन्त ज्ञानादिकरूप हू, सर्वसे विविक्त अपने स्वरूपमात्र हू। यह ऐसा है और सतत परिणमता रहता है। इसके अतिरिक्त अन्य कोई विसम्वाद इस मुझ आत्माका मेरे स्वभाव के कारण नहीं है। मैं स्वभाव मात्र हू, ऐसे निजकी प्रतीतिके बलसे सहज स्वभावमय निज आत्मतत्त्वको लक्ष्यमें लेकर शुद्ध आत्माको भली प्रकार

जानता हुआ परम समता रस रूप अपना अनुभवन किया करता है। अत ज्ञानी कर्मफलका भोक्ता नहीं है, इस नियमको अब इस गाथामें कह रहे हैं।

णिव्वेयसमावण्णो णाणी कम्मप्फलं वियाणेइ।
महुरं कडुयं बहुविहमवेयओ तेण सो होई ॥३१८॥

विरक्त पुरुषके कर्मफलभोक्तृत्वका अभाव—वैराग्यको प्राप्त हुआ ज्ञानी जीव कर्मोंके फलको जानता तो है कि यह मधुर है, यह कड़वा है, परन्तु उसका अनुभवने वाला नहीं होता। जैसे किसी पुरुषको दूसरेके द्वारा दूसरेको गालिया दी जावें तो परका अपमान किए जाने पर हँसी आ जाती है, इसी तरह कोई पुरुष ऐसा भी है कि जिसको गालिया दी जाने पर अपमान किया जाने पर स्वयंको हँसी आ जाती है। कोई गालिया अधिक महसूस करता है, कोई कम महसूस करता है, कोई परवाह ही नहीं करता है। जैसे ज्ञानका विकास है वैसे ही वैसे वह परके परिणमनका ज्ञाता रहता है। गजकुमार मुनिराज पर गजकुमारके स्वसुरने गुस्सेमें आकर कि तुझे यदि मुनि बनना था तो कल ही सुबह बन जाता। एक दिन ही शादी करके फिर तूने घर छोड़ा, तू इतना निर्दय है—ऐसा भाव करके ससुरने गजकुमारके सिर पर मिट्टीका बाध बाधकर कोयला भरकर आग लगा दी, सिर जल रहा है, किन्तु धन्य है वह ज्ञान जिस आत्मज्ञानके जगने पर यह जलता हुआ सिर ऐसा मालूम देता है कि जैसे कहीं अन्यत्र मुर्देका सिर जलाया जा रहा हो। यह आत्मज्ञानकी कितनी बड़ी चरम सीमा है।

अवेदकता—जब आशय कुछ और है तब शरीरकी पीड़ा भी अनुभव में नहीं आती। यहींके उदाहरण देखलो—क्रातिकारी भगतसिंहके गुटमें जो लोग गिरफ्तार हुए थे उनमें किसीकी अगुली मोमबत्ती जलाकर उस पर धरी गयी, और वह अगुली जल रही है, उसमेंसे खून और मास भी टपक रहा है और सरकारी अधिकारी कह रहे हैं कि तुम अपने गुटका भेद बतावो, इस घटनाका रहस्य बतावो, यह काम किसने और कैसे जोड़ा है? किन्तु अगुली जल रही है, मासका लोथड़ा गिर रहा है और फिर भी कुछ डर नहीं। भोग रहे हैं। तो जब लौकिक आशयोंमें किसी प्रकार दृढ़ता होती है तो वहा शरीर पीड़ा नहीं अनुभवी जाती। तब जो ज्ञानी संत पुरुष सर्वसे भिन्न ज्ञानमात्र आत्मतत्त्वको लक्ष्य लेते हैं और प्रकट हुए आनन्दकी धुनिमें सदा मग्न रहते हैं। आत्महित ही जिनका एक लक्ष्य है उन्हें कहासे क्लेश हो? वैराग्यको प्राप्त हुआ ज्ञानी पुरुष कर्मफलका परन्तु भोगने वाला होकर भी भोक्ता नहीं होता है।

सगाई—अब जरा अज्ञानी जीवों की प्रवृत्ति देखो। बड़े बालकों की

या बडी कन्याओं को देखो— जब सम्बन्ध चर्चा होने लगती है, अमुक जगह सम्बन्ध ठीक है, कर दें सगाई। सगाई जानते हो क्या होती है ? दूसरेको स्व मानने लगना इस प्रकारकी मान्यताका नाम सगाई है, स्व शब्द में 'स्वार्थे क' प्रत्यय लगाकर स्वक बना और हिन्दीमें भाववाचक आई प्रत्यय लगा दिया जिससे बन गया स्वकाई तथा स्वकाईसे बिगडकर बना सगाई। दूसरेको अपना मान लेना ऐसा जहा निश्चय कर लिया जाय उस का नाम है सगाई। अभी बाहर बाहर हैं, कोई निश्चयभी नहीं, कहो सगाई टूट जाय, पर ऐसा मान लेते हैं कि सम्बन्धीके कोई पीड़ा हो तो यह दूसरा भी दुखी होने लगता है। अनागत चीजकी भी यह अज्ञानी जीव चिंता करता है। किसीका मकान आपने रहन रख लिया। अब जान रहे हैं कि कई वर्ष हो गए। इतना ब्याज हो गया है। इसमे गुञ्जाइश नहीं है। अब यह न छुड़ा पायेगा. बस चाहे वह अपना न बन पाये, न रजिस्ट्री हो सके, पर यह मानता है कि यह मकान मेरा है। तो इस प्रकारके अनागत पदार्थोंसे भी यह सगाई कर लेता है। केवल लड़का लड़कीके सम्बन्ध माननेका नाम सगाई नहीं है बल्कि जिस चीजको अपनी मान लो उसी की सगाई हो गई। कोई चीज अपनी बन सके या न बन सके, मगर सगाई चेतन अचेतनसे कर डालते हैं अज्ञानी जीव।

ज्ञानी व अज्ञानीके भाव—ज्ञानी जीवकी तो इस शरीर तकसे भी सगाई नहीं है और सगाई की बात तो दूर रहो, अपने में उठने वाले राग-द्वेषादिक भाव तकसे भी सगाई नहीं है, किन्तु अज्ञानी जीव कूड़ा और कचरासे भी सगाई किए हुए हैं। कोई घरका आगन नीचा है ना, तो उसे पूर कर बड़ा करते हैं। यदि पड़ौसमें कोई घर फूट गया तो बडा कीचड़ पडा था, उसे १० रु० में खरीद लिया, तो उसने उस कूडे तकसे सगाई कर ली। कोई आदमी उस जगहसे एक ईंट तक भी नहीं ले जा सकता है। इस अज्ञानी जीवने चेतन अचेतन पदार्थोंसे भी सगाई कर रखी है।

अन्तर्द्रष्टाके भाव—ज्ञानी जीव जिसे शुद्ध आत्माका ज्ञान है अर्थात् ज्ञानमात्र, ज्ञानस्वभाव मात्र जिसमे किसी भी प्रकारका भेद नहीं है, जो है सो ही है, परिपूर्ण है। उस अखण्ड एकको बतानेके लिए योग्य व्यवहार भेद किया जाता है, पर भेद व्यवहार गुण आदि कथन करके भी उस आत्मतत्त्वको बताया जाय तो कुछ लोग तो सकोच करेंगे और कुछ लोग झुँझलाहट करेंगे। कौन लोग झुँझलाहट करेंगे ? जिन्हें इस अखण्ड आत्मतत्त्वका सही दर्शन हो रहा है। अरे क्यों रगमे भग डाल रहे हो ? यह चैतन्य तो अखण्ड चिन्मुद्रांकित है। यह तो यही है। इसमें ज्ञान है, दर्शन है, चारित्र है, यह कथनी भी खेद पहुचाने वाली बन रही है। जैसे

कोई संस्कृतका ज्ञानी हो और उसके आगे कोई संस्कृत स्तवन कर रहा हो जो पढ़ा लिखा न हो। अब हम किसी छंदका उदाहरण नहीं दे सकते, क्यों कि बनाकर भी गलती करके बोलें तो भी मुश्किल सा हो रहा है। ऐसे गलत छंदोंको अजानकार बोला करते हैं और संस्कृतके जानकारको चोट आती रहती है। दुःख नहीं दिया जा रहा है पर ऐसा ही क्लेश होता है।

त्रुटिकी बाधा—एक बार एक राजा पंडित पर असंतुष्ट हो गया तो उसे जो देता था रसद वह सब बंद कर दिया। अब बेचारा पंडित क्या करे? सो जंगलमें से लकड़ी बीन लाए और वह बोझ सिर पर रखकर बेचने लगा। तो एक दिन वह पंडित सिर पर बोझ लादे हुए आ रहा था और वहांसे राजा जा रहा था। तो राजा कहता है कि—'काष्ठभार-सहस्राणि तव स्कधं न बाधति।' इसमें वह राजा छोटी सी गलती बोल गया है, सो भी बता देंगे। अर्थ उसका यह है कि यह इतना बड़ा भारी काठका बोझ हे पंडित तुम्हारे कंधे को बाधा नहीं देता है क्या? काठका बोझ कंधेपर लादे हुए वह आ रहा था। यह तो है इस पंक्तिका अर्थ और गलती इसमें क्या है कि बाधते कहना चाहिए, सो बाधति कह दिया है। गलती है इतनी त में ए बोलना चाहिए सो त में इ बोल दिया। 'काष्ठभार-सहस्राणि तव स्कंध न बाधति।' तब विद्वान उत्तर देता है कि—'भार न बाधते राजन् यथा बाधति बाधते।' हे राजन् यह भार मुझे बाधा नहीं दे रहा है मगर यह बाधति शब्द बड़ी बाधा कर रहा है, बेचैनी कर रहा है। तो संस्कृतका जानकार इतनी सी गलती पाकर कितना दुःखी होता है? हालांकि उसका कुछ बिगाड़ नहीं किया, लेकिन ऐसी ही प्राकृतिकता होती है।

अभेदमें भेदकथनकी असहृयता—भैया! यों ही समझिए कि जो अखण्ड चैतन्यस्वभावकी महिमामें मग्न होते हैं और जिसने परम आल्हाद प्राप्त किया है उस पुरुषके लिए गुणभेदकी कथनी भी चोट पहुंचा देती है। उच्च शुद्ध आत्मतत्त्वका ज्ञान जिसे लोकमें बोलते हैं टन्नाकर रह जाना, यहां वहां कहीं अगल बगल ध्यान और झांक न होना, ऐसे स्वसम्वेदन ज्ञान द्वारा ही यह शुद्ध आत्मतत्त्व ज्ञात होता है। ऐसा शुद्ध आत्मा जिसके ज्ञात हुआ है वह परपदार्थोंसे अत्यन्त विविक्त है, अलग हटा हुआ रहता है। जैसे जलसे भिन्न कमल है। जलमें ही कमल पैदा है फिर भी जलसे अलग ऊपर खड़ा है। इस ही आत्मभूमिमें राग भाव पैदा होता है। फिर भी यह उपयोग कमल इस रागभावसे दूर खड़ा है।

निकटस्थकी महत्तासे महतका परिचय—अथवा जिस कमलकी उत्कृष्टता की इतनी बड़ी महिमा है उस कमलके पत्ते की भी बात देखो—वह पत्ता

पानीमें पड़ा हुआ है फिर भी पानीसे लिप्त नहीं होता। कमलके पत्ते ऐसे साफ चिकने होते हैं कि उनमें पानीके बूँदका स्पर्श नहीं है, पासमें है वह। जैसे पारा आपके कागजमें लुढ़कता रहेगा पर कागजको छेदेगा नहीं, भेदेगा नहीं, पकड़ेगा नहीं। इसी तरह कमलके पत्तोंको देख लो। जिसके फूलमें इतनी बड़ी करामात है उसके पत्ते मे भी यह करामात है। बड़े आदमीके घरके लोगोंसे भी बड़े आदमियोंकी परख हो जाती है और जिस घरके लड़के गाली देने वाले घिनावने, क्रोधी होते हैं उसके लिए यह अनुमान कर लो कि कुलका प्रमुख भी योग्य नहीं है।

विद्वानोका परिचय—पुराने समयमें एक पुरुष मडनमिश्रसे शास्त्रार्थ करने चला। पहिले शास्त्रार्थकी बड़ी पद्धति थी। मडनमिश्रके नगरमें वह पुरुष पहुंचता है, आज मैं मंडन मिश्रसे शास्त्रार्थ करूँगा। सो कुवे पर महिलाएँ पानी भर रही थीं। उन महिलावोंसे पूछा उस विवादार्थी ने कि मडन मिश्रका घर कौन सा है? तो एक स्त्री जवाब देती है—

> स्वत' प्रमाण परत' प्रमाणं कीराङ्गना यत्र गिरो तिरति।
> शिष्योपशिष्यैरुपगीयमानमवेहि तन्मडनमिश्रधाम॥

यह स्त्री जवाव देती है कि जिसके द्वारे पर बैठे हुए होते यह कह रहे हो कि स्वत प्रमाणम् परत:प्रमाणम् याने दार्शनिक चर्चा कर रही हो तोती याने तोतेकी स्त्री की। पुरुषसे स्त्रीको लोग जरा कम बुद्धिमान् समझते है। तो वीरागनाएँ जहां ऐसी वाणी बोल रही हों कि प्रमाण स्वत होता है या परत होता है और जहा शिष्य और उपशिष्य बहुतसे मडन मिश्रका अभिवादन कर रहे हों, समझ लो कि वही मंडन मिश्रका घर है। इस ही प्रकारकी पहिले बड़े पुरुषोंके घर जाननेकी पहिचान हुआ करती थी। अब तो कोई गुण रहा नहीं पहिचानका, सो सीधा नाम दीवाल पर खुदवा देते हैं। यह फलाने चौधरीका मकान है। अब क्या करें? कोई गुण ही नहीं है और गुणोसे कोई पूछ नहीं सकता। तो चलो अपना नाम खुदवा कर जाहिर करदें, यह फलानेका नाम है।

बड़ोके प्रभावका परिकरसे परिचय—भैया! बड़े पुरुषोंका प्रभाव उनके परिकरसे भी जान लिया जाता है। तो यहां बड़ा पुरुष कौन बैठा है? शुद्ध आत्मतत्त्वका उपयोग। इस उपयोगकी पहिचान ये ऊपरी है, व्रतसे रहना, तपसे रहना, नियमसे रहना, दया करना—ये सब उसके ऊपरी वातावरण हैं। जिससे पहिचान होती है कि यहा कोई बड़ा महान् आत्मा बसता है। तो यह ज्ञानी जीव शुद्ध आत्मतत्त्वके ज्ञान होनेके कारण और परपदार्थोंसे अत्यन्त विविक्त रहनेके कारण प्रकृतिके स्वभावको स्वय ही

छोड़ देता है। साँप तो विषको न स्वयं छोड़ता है और न दूध खाड़ पिलाने से भी छोड़ता है। अज्ञानी प्रकृतिके स्वभावको न स्वयं छोड़ता है और न शास्त्रोंके लिखे सीखाए भी छोड़ता है किन्तु यह ज्ञानी अपने ज्ञान की सहज कलासे स्वयमेव ही प्रकृतिस्वभावको छोड़ देता है और इस कारण चाहे कर्मफल मधुर हो, चाहे कर्मफल कटुक हो, ज्ञातामात्र रहनेसे उनको केवल जानना ही है।

ज्ञानकी अयोग्यता—भैया! यथार्थज्ञान हो जाने पर परपदार्थोंको अहंरूपसे अनुभव करनेकी ज्ञानीमें योग्यता भी नहीं है। यह ज्ञानी पुरुष अयोग्य है। किस बातके लिए अयोग्य है? परद्रव्यको अपना माननेके लिए अयोग्य है। अयोग्य कहो या नालायक कहो, अर्थमें कुछ फर्क है क्या? वह उर्दूका शब्द है, यह संस्कृतका शब्द है। अभी किसी को नालायक कह दो तो वह लड़ने भिड़ने लगता है। अरे बेचारे ने तो प्रशंसा ही की है कि तुम संसारके पचड़ोंके लायक नहीं हो, तुम नालायक हो, याने संसारके क्लेश, दुःख कष्टके लायक नहीं हो, इन मोहियोंकी गोष्ठीके लायक नहीं हो। सीधी बात यह कही है उसने। कोई नालायक कहे तो यही अर्थ लगाना कि यह कह रहा है कि हम इन मोहियोंकी गोष्ठी के लायक नहीं हैं। हट जावो। यह सम्यग्दृष्टि ज्ञानी पुरुष परद्रव्योंको अहंरूपसे अनुभव करनेके लिए अयोग्य है। इस कारण यह कर्मफलका भोक्ता नहीं होता। इस कथनसे यह निर्णय करना कि ज्ञानी जीव प्रकृतिके स्वभावसे विरक्त होता है, इस कारण वह अवेदक ही है।

ज्ञानीकी विरक्तता—यह ज्ञानी किन-किन बातोंसे विरक्त है? संसार से विरक्त—भावरूप संसार, इससे विरक्त है अपने आपकी त्रुटियां अपने आपको नहीं सूझतीं क्योंकि यह जान रहा है कि इन त्रुटियोंके कारण इस प्रभुकी सर्वज्ञता रूप विभूति ढकी हुई है। यह इसके अनर्थके लिए ही है। सो संसारसे विरक्त रहता है, शरीरसे विरक्त रहता है, शरीरको भार जान रहा है, विपत्ति जान रहा है। यदि खूब बड़ी तोंद हो जाय कि अपने आप उठा न जाय, शौच वगैरह भी न जा सके, धोती न पहिन सके, इतनी बड़ी तोंद हो तो तुम्हें बोझा लगे कि न लगे? लगेगा। और उससे आधी तोंद हो तो भी लगे और तोंद न हो बिल्कुल अच्छा पतला दुबला बढ़िया हो तो भी ज्ञानीको बोझ ही है। अज्ञानीको नहीं होता बोझ। वह ज्ञानी तो जानता है कि इस देहके बंधनके कारण मेरा सब आनन्द समाप्त हो रहा है। ज्ञानी देहसे भी विरक्त है और भोगोंसे भी विरक्त रहता है। भोगने के विकल्पोंमें पड़ता है और इन्द्रिय विषयोंके पौद्गलिक पदार्थ इनसे भी विरक्त है। सो यह वैराग्यको प्राप्त हुआ ज्ञानी हृदयमें आये हुए शुभ

अशुभ कर्मोंके फलको व निर्विकार स्व शुद्ध आत्माको भिन्न रूपसे जानता है। इस कर्मफलका ज्ञाता तो है अर्थात् उसकी परिणतिको जानता है, ये सब विकल्प भिन्न हैं मुझसे, ऐसा वह जानता है, किन्तु कर्मफलको भोगने वाला नहीं होता।

ज्ञानीका अन्तःप्रत्यय—ज्ञानी पुरुष न तो कर्मका कर्ता है और न कर्मका भोक्ता है किन्तु केवल वह कर्मोंके स्वभावको जानता है। जो मात्र जान रहा है उसके करना और अनुभवना नहीं है। तब वह आत्मीय शुद्ध स्वभावमें नियत होता हुआ मुक्त ही है। जैसे आप ध्यानपूर्वक यहां न सुन रहे होंगे तो हम कह सकते हैं ना आपसे क्यों जी आप कहां हैं इस समय? और आपका ध्यान मानो इटावाके मकानमें हो तो आप कह भी देंगे कि हम इस समय इटावा में थे। तो शरीरसे और आत्मप्रदेशसे बाहर आप नहीं बैठे हो और जहां उपयोग जा रहा हो वहां आपका निवास बोला जायेगा। ज्ञानी पुरुषकी आत्मभूमिमें कुछ भी बीत रहा हो, कुछ ज्ञानके कारण तो नहीं बीत रहा ना। कुछ भी बीते पर उसका उपयोग जब शुद्ध चैतन्यस्वरूपमें लगा हुआ है उस समय वह निर्विकल्प है, संकट से मुक्त है और उपयोगकी दृष्टिमें तो वह मुक्त ही है। वह उपयोग निकाले, शुद्ध स्वभावसे अगल बगल दृष्टि दे तो फिर संकट हो गए तो ज्ञानी पुरुष का यह प्रत्यय तो निरन्तर रहता है कि मैं चैतन्यमात्र हूं और चेतना ही मेरी वृत्ति है और फिर जब उपयोग इस चैतन्यस्वभावके अनुभवमें ही नियत होता है तो उस समय तो विकल्प भी नहीं होता है।

अचेतक अचेतकका निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध—भैया! देखो यह विचित्र खेल कि विकार भाव होता है परस्परमें तो अचेतन अचेतनको हुआ करता है। मानों आत्मा तो एक देश है। उस देशमें चेतन गुण भी रहता है, अचेतन गुण भी रहता है, और वे आत्माके ही देशवासी हैं। जैसे ज्ञान और दर्शन गुण ये तो चेतन हैं, स्वरूप दृष्टिसे निहारना सब कुछ और श्रद्धा चारित्र आदि सब गुण ये अचेतन हैं अर्थात चेतने वाले, जानने देखने वाले ज्ञान दर्शन हैं और बाकी सब गुण चेते जाने वाले हैं पर चेतने वाले नहीं हैं। आनन्द स्वयं आनन्दका भोग नहीं कर सकता क्योंकि आनन्दमें चलनेका माद्दा ही नहीं है। आनन्दका भोगने वाला ज्ञान गुण है। इसी तरह श्रद्धा चारित्र गुण यह स्वयं अपनेको कुछ नहीं समझता। इसको जानने वाला और व्यवस्था बनाने वाला ज्ञानगुण है। तो स्वरूपतः चूँकि यह चेतन नहीं है इस लिए श्रद्धा गुण और चारित्र गुण अचेतक हुआ और कर्म यह भी अचेतक हुआ। कर्मोदयका निमित्त पाकर विपरीत परिणमता है श्रद्धा और चारित्र और श्रद्धा व चारित्रगुण

का निमित्त पाकर विपरीत परिणमता है तो यह कर्म।

ज्ञानकी विपरीतताका अभाव—इन कर्मोंका ज्ञानके विपरीत परिणमन के लिए कोई सम्बन्ध नहीं है। ज्ञानावरण नामक कर्म तो है पर वह ज्ञानके विपरीत परिणमनका कारण नहीं है। श्रद्धा और चारित्र विपरीत हुए इस कारण ज्ञानावरणमें भी यह निमित्त पका आया कि ज्ञान उठ खड़ा नहीं हो सकता, पर ज्ञान विपरीत नहीं परिणमा। कुमति, कुश्रुति, कुअवधि जो भेद किए गए है ये ज्ञानके कारण भेद नहीं हैं किन्तु मिथ्यात्व कर्मके मिथ्यात्व भावके सम्बन्धसे ये भेद हो जाते हैं। मति, श्रुत, अवधि ज्ञानमें जो सुपना आया है वह सम्यक्त्वके भावसे आया है। ज्ञानके स्वय कोई ऐसी खूटी नहीं है कि वह कहीं कु बन जाय और कहीं सु बन जाय। तो मैं तो ज्ञानस्वरूप हू, चैतन्यभाव हू यही अगर मूलत विपरीत परिणम जाय तो बड़ा कठिन हो जायेगा। परिणत होने वालेका यह ज्ञान ठिकाने लगा सकता है और कहीं ज्ञान ही विपरीत परिणमता तो फिर कहा ठिकाना पड़ता ? यह मैं ज्ञानमात्र हू, यह मैं न कर्ता हू, न भोक्ता हू।

भावदृष्टिकी शब्दानुसारिता—दूसरी बात यह समझिये कि इस आत्माको जब ज्ञानी कहकर पुकारा जाय तो ज्ञानीके नातेसे ही समूचे आत्माको देखना। जब सम्यग्दृष्टि कह कर आत्माको बताया जाय तब सम्यग्दर्शनमय ही आत्माको देखना। जैसे किसी पुरुषके दो नाम हों। खराब पीरियड तक एक पुराना नाम रहा और कुछ अच्छे सदाचार नियम सयमके समयमें दूसरा नाम रख दिया तो कोई पुरुष उसके बारेमें यदि खूब आचरणोंकी बातें कह कर निन्दा भी करे तो भी वह कह सकता है कि यह काम पुराना नाम लेकर इसने किया, जो वर्तमान नाम है उसको लेकर कहेगा कि हमने नहीं किया। जहा यह आप सुनें कि सम्यग्दृष्टिके बध नहीं होता वहा केवल सम्यग्दर्शनमय ही देखो। वहा यह प्रश्न क्यों उठाते हो—तो सम्यग्दृष्टिके चारित्र मोह पड़ा है, उसके बध नहीं होता क्या ? होता है। मगर उसको चारित्र मोही कहकर कहें तो यह प्रश्न उठावो। जब सम्यग्दृष्टि कहकर कहते हैं तो सम्यग्दर्शनके नाते जो कुछ होता है वह कहा जा रहा है।

भावकी शब्दानुसारितापर कुछ दृष्टान्त—एक आदमी पुजारी है, पडित है, व्यापारी है। जब व्यापारके आशयमें है तब दो चार बातें गड़बड़ भी करदे जैसा कि प्राय करते हैं लोग। और पडिताईके आशयमें है तब भला उपदेश भी देता है और कोई कहे कि पडित जी आपने तो दोपहरमें एक दो ग्राहकोंसे ऐसा बर्ताव किया। अरे यह बर्तावा पडित जी ने नहीं किया, वह बर्तावा एक दुकानदारने किया। पडित जी के नातेसे जब उपयोग रहता

है तो आप उस आत्माको केवल पण्डितमय ही निरखलो ना और देखो एक आदमी पुजारी भी है और मुनीम भी है और मंदिरके आगनमें आकर कहो पुजारी जी हमारा हिसाब बताना आज। तो उसका बोलना फिट नहीं है। हिसाब बतानेकी बात कहना हो तो मुनीम जी कहकर पुकारो। पुजारी कहकर न पुकारो। और तुम्हें पूजा ध्यानमें मदद लेनी हो तो पुजारी कह कर बुलावो।

समीचीन दृष्टिके बन्धाहेतुत्व—जब ग्रन्थोंमें यह स्पष्ट लिखा है कि जिस अशसे सम्यग्दर्शन है उस अंशसे बध नहीं है। जिस अंशसे राग है उस अशसे बंध है। तो हम जब केवल सम्यग्दर्शनकी खूबीको ही देख रहे हैं और सम्यग्दृष्टि कहकर बोल रहे हैं तो निश्चयपूर्वक बोलिए कि सम्यग्दृष्टिके बध नहीं होता। ये सब स्याद्वादसे सारी बातें उलझ जाती हैं। वहा यह भी एकात नहीं है कि जिस आत्माको सम्यग्दृष्टि कहा है उस आत्माके बध कभी कतई होता नहीं, यह भी नहीं है, पर जिसका विवाह हो उसका ही तो गीत गाया जाता है। अब दूल्हेका छोटा भाई लड़ने लगे कि वाह हमारा नाम क्यों नहीं लिया जाता, तो उसका लड़ना ठीक तो नहीं है ना।

व्यवहारमे असत्यकी भी जबर्दस्ती—फिर भी देखो भैया! अगर दूसरे साल कोई दस्तूर बाकी रह गया हो विवाहके बाद और न हो बड़ा तो छोटे भाई को ही सामने रखकर लोग नेक दस्तूर कर लेते हैं। जैसा रिवाज हो तुम्हारे। शादीमे मौर सिराते हैं और वह दुल्हा कहीं नौकरी पर हो या कहीं पढ़नेमें हो तो छोटे ही भाईके ऊपर मौर धरकर तालाबमें जाकर उस मौरको सिरवा देते हैं। तो लौकिक पुरुषोंने तो जो चाहे सो किया, व्यवहार है। पर परमार्थत. यदि शब्दोंका ठीक ठीक उपयोग करें तो कहीं भी कोई विवाद न हो।

शब्दोका समुचित प्रयोग—वचन प्रयोगमें जितना शब्दोंके बोलनेमें इङ्गलिश भाषामें ध्यान रखा जाता है उतना ध्यान हिन्दी भाषामे नहीं रखा जाता है। एक ही शब्द जैसे देखना है, जिसके अनेक शब्द हैं—सी, लुक, परसीव आदि कितने शब्द हैं पर जो चाहे शब्द नहीं बोल उठते। प्रकरण में जो ठीक बैठना चाहिए अर्थमें वही बोलते हैं इङ्गलिशमें। पर हिन्दीमे जो चाहे बोल जाते हैं और वही मुहावरा पड़ा हुआ है। तो जब यह कह दिया कि सम्यग्दृष्टिके बध नहीं होता, तो लोग अटक जाते हैं कि यह क्या कह दिया? अरे यह इसने कह दिया कि सम्यग्दर्शनके कारण बंध नही होना—यह है उसका भाव। तुम्हारी दृष्टि चारो तरफ है सो यह देख रहे हो कि जिस आत्मामें सम्यग्दर्शन पैदा होता है उस आत्मामें

कषाय भी तो चल रही है, वध भी तो चल रहा है, सम्यग्दर्शन भी चल रहा है, पर हम यह नहीं कह रहे हैं। हम तो पतली सी पतली तरैया आखमें लगाकर एक विन्दुसे देख रहे हैं। तो यह ज्ञानी जीव करने और भोगने के भावसे अलग है। केवल जानता हुआ शुद्ध स्वभावमें नियत होकर मुक्त ही है।

वाह्यके अदर्शनमें अनाकुलताका एक दृष्टान्त—खरगोसके पीछे शिकारी कुत्तोंको दौड़ाता है। खरगोस जितने कुत्ते नहीं भाग सकते, उसकी तो ऐसी छलाग जाती है कि ७-८ हाथ दूर तक पैर भी कहीं न रखे। वे खरगोस दूर जाकर एक झाड़ीके पास बैठकर अपने कानोंसे ही अपनी आँखें बन्द कर लेते हैं। कर्मोंका सुयोग भी देखो खरगोसको बड़े कान दिये गए हैं। किसलिए? इन्हीं सकटोंके अवसरके लिए। वे झट झाड़ी में छुप जाते हैं, कानोंसे अपनी आखोंको ढक लेते हैं। तो कानोंसे आँखों को बद कर लिया, लो अब कहीं सकट नहीं है। पर एक ऐब है कि जरा देर तक तो अपनी आखोंको कानोंसे ढके रहे, फिर शका हो गयी कि देखे तो कहींसे कुत्ते तो नहीं आ रहे हैं। जैसे ही कान हटाये, आखें खोलीं, झाड़ीसे निकलकर जरासा देखने लगे तो कुत्तोंने देख लिया, अब वे कुत्ते फिर लपके और खरगोस फिर भागकर झाड़ीमें घुस गये और झट कानोंसे अपनी आखें बद करके बैठ जायेंगे, फिर वे कुत्ते ढूँढ़कर हैरान हो जायेंगे।

वाह्यके अदर्शनमें अनाकुलता—इसी तरह यह उपयोग जिसके पीछे विषय कषायोंके परिणाम शिकारी दौड़ रहे हैं, यह उपयोग बड़े सातिशय वेग वाला है, सो जाकर ज्ञानज्योतिके गुप्त प्रकाशमय स्थलमें जाकर छुप जाता है। परन्तु सस्कार इस आत्मामें कायरताका लगा है, सो थोड़ी देर तो रहता है इस ज्ञान झाड़ीमें, बादमें फिर देखने लगता है कि देखे तो जरा, हो क्या रहा है बाहरमें? जो विकल्प किया सो विषय कषायों के शिकारी आ धमकते हैं। जरा साहस कर यह उपयोग और बड़े आराम के स्थानमें पहुचे, जरा स्थित बना रहे तो भी सकटोंसे मुक्त ही है। इसही बातको कुन्दकुन्दाचार्यदेव कह रहे हैं।

णवि कुव्वइ णवि वेयइ, णाणी कम्माइँ बहुपयाराइ।
जाणइ पुण कम्मफल बध पुण्ण च पाव ॥३१९॥

ज्ञानी जीवकी अबाधता—ज्ञानी जीव इन सब बहुत प्रकारके कर्मोंका न तो कर्ता है और न भोक्ता है किन्तु कर्मफलके बधको, पुण्य पापको जानता है। जिसके कोई फोड़ा होता है, पक गया है और वह हिम्मत वाला है तो डाक्टर उसे चीडे तो चीडे वह जाननहार रहता है और जिसे

मोह है, उस ही पर दृष्टि है तो उस फोड़े को छुवे भी नहीं, हाथ ही पासमें लावे, इतने में ही दर्द सा लगता है। क्योंकि शंका भरी है। तो यह ज्ञानी की एक विशेष कला है कि वह जाननहार रहे, वेदना न माने। यह आत्मा ज्ञान और आनन्दस्वरूपी है। इसमें वेदनाका तो कुछ काम ही नहीं है। दुःख और क्लेश हमें कहा हैं ? किन्तु ऐसा अपनेको मानता नहीं, बाह्यमें दृष्टि होती है तो अपनेको दीन दुःखी अनुभव करते हैं। पर दुःख किसी को नहीं है।

जीवोकी व्यावहारिक स्वतन्त्रता—भैया ! इतने लोग यहां बैठे हैं हम आप सब, इनमें से कोई दुःखी नहीं है। आप कहेंगे वाह हमें तो इतना इतना दुःख है। अजी छोड़ो इस ध्यानको, इस अपने आपको देखो तो तुम अकेले ही हो। देखो ये पक्षी कैसे मजेमें हैं ? यहां बैठ कर किल-किल करते हैं, फिर पंख उठाया भाग गये, क्या इन्हें कष्ट है ? यहां तो भिण्डसे चार दिनको भी नहीं भाग सकते। और ये पक्षी कहो दो ही मिनट बैठें और उड़ जायें, और और भी जीवोंको देख लो आप कहीं जा रहे हों, किसी भी गाँवका कुत्ता हो, वह आपके साथ लग जाता है, न कोई उसे यह विकल्प है कि यह आदमी हमें साथमें न रखे तो हमारा क्या होगा ? वह तो जहां जा रहा है वहीं उसका घर है। कभी कुत्ते लडेंगे भी तो एक मिनट सूँघ साँघ कर उसे फिर मित्र बना लेंगे। सभी पक्षियोंको पशुवोंको जीवोंको देखो कि उन पर कुछ बोझा नहीं लदा, पर यह मनुष्य अपने ऊपर बोझा मानता है। अरे यह भी जीव है वे भी जीव हैं।

परका परपर उत्तरदायित्वका अभाव—आप कहेंगे कि वाह बोझा लादे बिना मनुष्यका काम नहीं चल सकता। तो आप किसका काम चला रहे हैं ? उनके पुण्यका उदय है सो आप दूसरोंकी चाकरी कर रहे हैं, निमित्त आप हो रहे हैं, तो ऐसा जानकर अब भार मत समझो। वे अपने आप पर निर्भर हैं, और फिर भार अनुभव करके सिद्धि भी तो कुछ नहीं होती। ये सब पशु पक्षी अपने को भाररहित समझकर जीवन बिताते हैं और हम बहुत से विकल्पोंका बोझ लादकर जीवन बिताते हैं। एक मोटा दृष्टान्त है तुलना का केवल शिक्षाके लिए कि हम यदि बोझ न मानें किसीका तो भी काम चलता है और मानते हैं तो भी काम चलता है पर बोझ माननेमें अपना काम बिगड़ता है, आत्महितकी बात नहीं बनती। इससे जानते रहो कि हमें यह करनेका विकल्प करना पड़ता है, हम इनका कुछ नहीं करते हैं। ऐसा ही सम्बन्ध है, सुयोग होता है।

दृष्टिकी विशुद्धिकी हितमें प्राथमिकता—भैया ! किसी भी समय इस अपनेको अकिञ्चन केवल चैतन्यमात्र अनुभव करना बहुत आवश्यक है।

नहीं तो रात दिन बोझसे लद-लदकर अपना जीवन बरबाद कर देंगे। कभी यह अवसर ही नहीं पायेंगे कि हम अपनी प्रभुताके दर्शन तो कर लें। जैसी दृष्टि होती है वैसी ही अपनी वृत्ति बनती है और वैसा ही अपनेको स्वाद आता है। एक बार बादशाहने वजीरसे दिल्लगी की कि वजीर ! स्वप्नमें हम तुम जा रहे थे टहलने तो रास्तेमें एक जगह दो गड्ढे मिले, एक था गोबरका गड्ढा और एक था शक्करका। सो हम तो शक्करके गड्ढेमें गिर गए और तुम गोबरके गड्ढेमें गिर गए। वजीर बोला कि महाराज हमने भी ऐसा ही स्वप्न देखा कि हम तुम दोनों जा रहे थे, सो महाराज तो शक्करके गड्ढेमें गिर गए और हम गोबरके गड्ढेमें गिर गए, पर इससे आगे थोड़ा और देखा कि महाराज हमें चाट रहे थे और हम महाराजको चाट रहे थे। अब यह देखो कि बादशाह गिरा तो शक्करके गड्ढेमें था और चाट रहा था गोबर और वजीर गिरा तो गोबरके गड्ढेमें था, पर चाट रहा था शक्कर। सो भैया ! अपनी दृष्टि निर्मल बनानेका यत्न रखो, यही शरण है और जगतमें कोई शरण नहीं है।

शरणचतुष्क--ज्ञानी जीवका शरण निश्चयसे शुद्ध आत्मस्वरूप है और व्यवहारमें जो शुद्ध आत्मा हो गए हैं उनके विकासका स्मरण है और जो शुद्ध आत्मा होनेके प्रयत्नमें लगे हैं ऐसे साधुजन शरण हैं। क्या शरण है ज्ञानी जीवको इस तत्त्वको चत्तारिदण्डकमें बताया गया है। चत्तारि शरणं पव्वज्जामि। मैं चारकी शरणको प्राप्त होता हूँ। वे चार कौन हैं ? अरहन्त, सिद्ध, साधु और धर्म। अरहंत और सिद्ध एक ही श्रेणीमें रखे जाते थे। तब शरण कहलाते तीन-- परमात्मा साधु और धर्म, किन्तु परमात्मामें अरहंत और सिद्ध--ऐसे जो दो भेद करके शरण की बात कही गयी है। उसमें मर्म यह है कि उत्कृष्ट विकास तो सिद्ध प्रभुमें है। भावविकासकी ही बात नहीं किन्तु भावविकास तो जो अरहंतमें है वह सिद्धमें भी है। साथ ही बाह्य लपेट भी अब नहीं रहे। शरीरका सम्बन्ध, कर्मका सम्बन्ध अब नहीं रहा, इसलिए सर्वोत्कृष्ट हैं सिद्ध भगवान परन्तु यह सारी महिमा और सिद्धप्रभुका पता भी बताना, यह अरहंत प्रभुसे हुआ है। इस कारण परमात्माको दो पदोंमें विभक्त किया है-- अरहंत और सिद्ध।

चत्तारिके चार लक्ष्यभूत अर्थ--मैं चारकी शरणको प्राप्त होता हूँ। वे चार यही हैं इनके लिए चत्तारि शब्द दिया है। अब चत्तारिमें चत्तारिकी बात आ जाती है। वह चत्तारि क्या है ? चत्तारिका अर्थ है चत्ता अरि। चत्ता मायने त्यक्ता, छोड़ दिया है अरि मायने चार घातिया कर्म जिसने, उनका नाम है चत्तारि याने अरहंत देव। चत्ताअरि छोड़ चुके हैं समस्त

अरियोंको जो के है चत्तारि, मायने सिद्ध। छोड़ रहे हैं अरियोंको जो वे हैं चत्तारि मायने साधु और छोड़े जाते हैं अरि जिस उपायसे उसका नाम है चत्तारि अर्थात् धर्म। बड़े पुरुषोंकी वाणी निकलना तो सहज है किन्तु मर्म बहुत भरा होता है। चत्तारि बोलते हुए हम नहीं कह सकते कि ऐसी दृष्टि रखकर ही चत्तारि शब्द कहा हो। किन्तु सहज ही ऐसी वाणी निकलती है कि जिससे अर्थ और मर्म अनेक उद्गत होते रहते हैं।

शरणवृष्टिक्रम—इन चार शरणोंमें प्रथम है—'अरहंते शरणं पव्वज्जामि' में अरहन्तोंकी शरणको प्राप्त होता हूं। जब दो वर्षके बच्चेको कोई डराता है, कुछ धमकाता है तो वह दौड़कर किसकी शरणमें जाता है? अपनी माँ की गोदकी शरणमें जाता है और जब वह १२-१४ वर्षका लड़का हो जाता है उसे कोई डराये तो अब माँ की गोदमें नहीं जाता। वह बापके पास बैठता है। अब जरा बड़ा हुआ, विवाह हो गया, घरमें लड़ाई भी होने लगी तो अब माँ और बापके पास भी वह नहीं जाता है, वह बहकाने वाले गुन्डोंकी शरणमें, मित्रोंकी शरणमें जाता है, वहीं सलाह लेता है। तो जैसे-जैसे उसकी अवस्था बढ़ती जाती है वैसे ही वैसे उसके शरणका आश्रय भी बदलता जाता है और वह जब ज्ञानी हो जाता है संसार, शरीर, भोगसे विरक्त हो जाता है तब उसके शरणके ये सब ठिकाने छूट जाते हैं। कहीं उसे शरण नहीं प्रतीत होता।

परमात्मशरण—अब ज्ञानी उसको शरण एक प्रभुकी होता है, जो भेदविज्ञानकी बात बताये, आकुलताओंको हटाये। वहाँ इसे कुछ शांति मिलती है। अब उस शरणको प्राप्त होता है। जब इस संसारमें कल्पना जालोंसे उद्गत संकटोंके समूह आ पड़ रहे हैं, ऐसी स्थितिमें किसकी शरण जायेगा यह जीव, जो इन सब संकटोंसे पृथक् है। तो यों प्रकृत्या ज्ञानी जीव अरहंतकी शरणको प्राप्त होता है। अरहंतदेवने यह बताया है कि आत्माका सर्वोत्कृष्ट विकास परम आनन्दकी स्थिति एक सिद्ध अवस्थामें है। उसे भी यह कैसे भूल सकता है? यह अरहत अवस्था तक नहीं अटक सकता, अत परोपकारी होनेके कारण अरहतकी शरणमें प्रथम गया है लेकिन यहां न अटककर सिद्धकी शरणमें पहुंचता है। सो ज्ञानीके अन्तरमें धुनि होती है—'सिद्धे सरणं पव्वज्जामि' में सिद्धोंकी शरणको प्राप्त होता हूं।

साधुशरण भैया! अब बुद्धि व्यवस्थित हो गयी, अब कोई शंका और भय नहीं रहा, कोई सतायेगा तो इस परम पिताकी शरणमें पहुंच जाऊँ। लेकिन ये दोनों तो आजकल मिलते ही नहीं। न अरहत मिलते और न सिद्ध मिलते। सिद्ध तो इस विश्वमें मिलते ही नहीं हैं। वे तो

इस लोककी शिखर पर विराजमान् हैं और अरहंत कभी-कभी प्रकट होते हैं सो आज इस पंचमकालके समयमें अरहंतका भी दर्शन नहीं हो रहा है। तब हमें कोई शरण ऐसा ढूँढ़ना है जो अभी चाहें और आध घटेमें मिल जाय, ऐसा कोई शरण ढूँढ़ना है। उससे ही काम चलेगा। तब ज्ञानीकी धुनि होती है 'साहूसरणं पव्वज्जामि।' मैं साधुकी शरणको प्राप्त होता हूं।

साहू—साधुका नाम है साहू, जो श्रेष्ठ हो। कुछ लोग अपनेको साहू बोला करते हैं, जैसे पटेल हैं वे अपनेको साहू साहू कह कर उपयोग करते हैं। और पहिले समयमें किसान लोग साहूकारोंको साह, साव कहा करते थे। साहूकार मायने श्रेष्ठ, निर्दोष, ईमानदारीका काम करने वाला, उसका नाम है साहूकार। साहूकार वह जो निर्दोष काम करे। निरारम्भ' निष्परिग्रह निज सहजस्वरूपके दर्शनमें निरन्तर मग्न, ऐसे ज्ञानी पुरुष, उनकी शरणको मैं प्राप्त होता हूं।

साहूशरणकी पद्धति उपासकका अन्त पुरुषार्थ—भैया! बाहरमें इन तीनके सिवाय और कुछ शरण नहीं मिल रहा है, यों तो सभी कहते हैं कि तुम मेरी शरणमें आ जावो। यहांके मायावी कपटी लोग भी कहते हैं, और स्वार्थ भरे लोग भी कहते हैं और इन्हीं स्वार्थ भरे लोगोंने ऐसा भी प्रसिद्ध कर दिया है कि भगवान कहा करता है कि तुम मेरी शरणमें आ जावो। अच्छी बात है, मिल जाय शरण तो ठीक है, मगर वह भगवान अपना आनन्द खोकर तुम्हें गोदमें संभाले रहे तो तुम मचलोगे बार-बार। जैसे किसी लड़केको गोदमें ले लो फिर भी मचलता है, दोनों टांगोंको जल्दी-जल्दी हिलाता है, ऐसे ही यदि भगवान तुम्हें अपनी गोदमें संभाल ले और तुम्हें जरा-जरा सी देरमें स्त्रीकी खबर आ जाय, लड़कों की खबर आ जाय और भगवानसे छुटकारा पाने के लिए बार बार मचल आ जाय, ऐसे मोही जीवको भगवान सभाले और वह सकटमें आए, क्या ऐसा स्वरूप भगवानका है?

अन्तिम व परम शरण—भगवानका स्वरूप आदर्श है, समस्त विश्व के जाननहार, तिस पर भी निजी अनन्त आनन्दरसमें मग्न हैं। वह हम को शरणमें नहीं रखते किन्तु हम ही उनके गुणोंका स्मरण करके यथायोग्य अपने आपको शरणमें ले लेते हैं। इसी कारण तत्त्वज्ञानी पुरुष अन्तमें यह निश्चय करता है कि 'केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि' केवली भगवानके द्वारा कहे हुए इस धर्मकी शरणको प्राप्त होता हूं। कहां गया अब यह? धर्मकी शरणमें गया, जो आत्मस्वभाव रूप है, पर भक्ति तो देखो इस ज्ञानीकी कि तिस पर भी यह शब्द लगा दिया है केवलीके द्वारा कहे गए, कोई मुँहफट बात नहीं है वहां कि अभी तो अरहंतकी

शरणमें जा रहा था और फिर कुछ भी सम्बन्ध नहीं रखकर कुछ नहीं वह परद्रव्य है यों झुँझला कर मैं तो आत्मस्वभावके ही शरणमें जाता हूं। इतनी मुँहफट बात न हो जाय इसलिए यह भी ध्वनित कर रहे हैं कि मैं अपने धर्मकी शरणमें जा रहा हूं, ठीक है, पर हे भगवन्! तुम्हारे द्वारा बताये गए धर्मको शरणमें जा रहा हूं।

बड़ोंकी आज्ञाका पालन—भरी सभामें भी यदि बादशाह कहे कि मेरी पगड़ी उतार कर उस मेज पर धर दो, और यदि कोई उस पगड़ीको उतार कर धर दे तो उसमें कोई दोष या अपमान नहीं है क्योंकि बादशाहकी ही आज्ञा है, और यदि कोई सभाका आदमी कह दे कि बादशाहकी पगड़ी उतार कर उस मेजपर धर दो और यदि कोई धर दे तो उसमें बादशाहका अपमान होता है। मैं अपने मनमानी स्वच्छन्द वृत्तिसे इस धर्मकी शरण में नहीं जा रहा हू किन्तु केवली भगवानके द्वारा बताए गए धर्मकी शरण में जा रहा हूं। तो इस तत्त्वज्ञानी पुरुषने अतमें शरण पाया चित्प्रकाश का, आत्मधर्मका। ज्ञानीपुरुष कर्मचेतनासे शून्य है, कर्म फल चेतनासे भी दूर है, इसलिए स्वय अकर्ता है और अभोक्ता है।

कर्तव्यनिर्वाहमें कर्तृत्वका अनाशय—जैसे किसी संस्थाको कमेटी बनी है और उस कमेटीके आप मत्री हैं, तो आप सस्थाका कार्य कर रहे हैं मगर किसी मीटिंगमें सदस्योंने एक राय करके यह तय कर दिया कि इस सस्थाकी अब जरूरत नहीं है, इसे हटावो और इसका जो कुछ माल है हिस्सा है वह हिस्सा वहाँ दे दो तो इसमें मंत्रीको भी रंच भी रज नहीं हो सकता क्योंकि वह तो सब सदस्योंकी चीज है। उनकी ऐसी राय हुई, इसके दोष भी कुछ नहीं आता है। वह अब निर्णय किये हुए है कि हमारा कर्तव्य है कि सर्वप्रस्तावोंको अमलमें लें। और कदाचित यह कह दें वह ही सदस्य मंत्रीके घरके लिए कि तुम्हारे घरका नक्शा ठीक नहीं है। इस से तो अच्छा है कि घरको तोड़ दो और तुम किरायेके मकानमें रहने लगा तो उसे मान लोगे? कहीं वहां आत्मीयता है। इसी तरह जहाँ निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध वश अनेक बिगाड़के काम चल रहे हैं, विभाग उठ रहे हैं, कुछ क्रिया हो रही है, कुछ अनुभव चल रहा है। इस पर भी यह तत्त्वज्ञानी ज्ञाता ही रहता है क्योंकि जानता है कि यहाँ तो मेरा कोई काम ही नहीं है। मेरी तो कोई यहाँ बात ही नहीं है ना। मैं तो ज्ञानरस निर्भर हूं, राग रग हो यह मेरी बात नहीं है, स्वरसत: होने वाली चीज नहीं है। सो ज्ञाता द्रष्टा रहता है। और इसी कारण इन कर्मोंका कथञ्चित् कर्ता होकर भी अकर्ता है और भोक्ता होकर भी अभोक्ता है।

अभोक्तृत्वका व्यावहारिक लौकिक उदाहरण—जैसे हिरण जंगलमें घास

चरता है, जरासी आहट मिली तो घास छोड़नेमें उसे देर नहीं लगती, तुरन्त अपना मुँह उठा लेता, देखने लगता और उस स्थितिको छोड़नेमें कभी विचारमग्न भी नहीं होता। क्योंकि वह हिरण अनासक्त है, वह भोक्ता होकर भी अभोक्ता है। एक दृष्टांतमें लिया है, कहीं सम्यग्दृष्टि ही उसे नहीं समझना। इसी प्रकार यह ज्ञानीपुरुष कर्म प्रेरणासे कहीं रहता है, कुछ भोगता है फिर भी उस कर्मफलके भोगनेमें आसक्त नहीं है। जरा सी ही बातमें वह छोड़नेको तैयार हो जाता है। जैसेकि अज्ञानीके प्रतिनिधि बिलावको चूहा मिल जाय तो उसको छुटानेके लिए उस पर डंडे भी बरसाये जायें तो भी बिलाव चूहा छोड़नेके लिए तैयार नहीं होता। उसे आसक्ति है।

अज्ञानीके भोगासक्ति—अज्ञानी जीवको जो भोग मिला है, जो समागम मिला है, उसको किसी भी हालतमें, किसी भी अवसरमें छोड़ने के लिए तैयार नहीं होता। यह है उसके भोक्तापनकी आसक्ति। संकटोंसे परेशान है तिस पर भी नहीं छोड़ सकता। जैसे एक कहावत है कि एक गरीब भाईके पास एक रुपया था, जाड़ेके दिन थे, तो जब रात आए तब तो सोचता था कि अब कल रजाई बनवायेंगे क्योंकि जाड़ा बहुत पड़ता है और जब सुबह होती, जब सूर्य नारायण दिख जाते हैं तब विचार होता है कि अब इस रुपयेका एक भैंसा और मिलायेंगे। यह कहाना है, प्रसिद्ध है, हमें याद नहीं है। तो ज्ञान और अज्ञानमें महान् अन्तर है। ये सारेके सारे संकट अज्ञानसे भरे हैं।

ज्ञानीकी आत्मप्रतीति—ज्ञानी पुरुष कर्मचेतना और कर्मफल चेतनासे रहित है इसलिए वह न कर्मका कर्ता है, न कर्मका भोक्ता है। इसका स्वरूप आगे बतायेंगे। कर्मचेतना क्या कहलाती है और कर्म फल चेतना क्या चीज है? मोटे रूपसे यह समझलो कि मैं ज्ञानके सिवाय अन्य कुछ भी काम करता हूं, ऐसा आशय होनेका नाम कर्मचेतना है और उस जानन-जाननके सिवाय और कुछ भी भोगता हूं ऐसे आशयका नाम है कर्मफल चेतना। जैसे अपने नामकी खबर कोई नहीं भूलता, खाते पीते, उठते, बैठते, सोते वह नामकी खबर नहीं भूलता। उस नामको लेकर यदि कोई जरासी हलकी बात कह दे तो आग भभक उठती है। जैसे लौकिक जनोंको अपने नामकी खबर नहीं भूलती इसी प्रकार तत्त्वज्ञानी पुरुषको अपने ज्ञानस्वरूपकी खबर नहीं भूलती। खाते पीते चलते उठते घरमें रहते खेद भी करता है मगर दृष्टि यह है कि मैं तो सबसे न्यारा केवल ज्ञानस्वरूप एक पदार्थ हूं। कोई भुलावेमें डाले तो भी नहीं भूलता। कोई प्रशंसा करे तुम तो महान् उद्योगपति हो, तुम तो इन सबके नेता हो, आपका तो इस जगत्में बड़ा उपकार है, आप तो नवाब साहब हैं, कितनी

ही प्रशंसा करके भुलावेमें डाले, पर ज्ञानी अन्तरमें यही देखता है कि मैं तो देह तकसे भी न्यारा एक ज्ञानमात्र हूं। इस लोकमें मैं ज्ञानके सिवाय अन्य और कुछ कार्य नहीं करता।

जैसा आना वैसा ही जाना--दो भाई थे, बड़ा भाई बी० ए० पास था, बहुत बड़ी उम्रमें वह गुजर गया, कुछ दिन गुजरनेके बाद लोग आए फेरा करने तो एकने यह पूछा कि तुम्हारा भाई क्या कर गया? हर एक कोई पूछते हैं—याने मरते समय कुछ दानपुण्य कर गये या क्या कर गए? तो छोटा भाई उत्तर देता है 'क्या बताएँ यार क्या कारोनुमा ये कर गए। बी० ए० किया, नौकर हुए, पेंशन मिली और मर गए।।' लोग पूछते हैं ना क्या कर गए। तो उन्हें बता दिया। यही करते हैं सब। ऊँची कक्षा पासकी, सर्विस की, पीछे रिटायर हुए और अंतमें मर गए। और व्यापारी लोग भी ऐसा ही करते हैं। कुछ बुद्धि बनाया, कुछ रंग ढग जोड़ा, व्यापार चलाया, पैसा कमाया, सम्पत्ति कमायी, रिटायर हुए, या जैसी बात हो और अतमें मर जाते हैं। पर भाई चाहे जो बीते, सब परिस्थितियोंमें यह भाव रहे कि मैं जाननमात्रके सिवाय और कुछ करने वाला नहीं हू, विकल्प ही केवल कर पाता हू, विकल्पोंके सिवाय और कुछ नहीं करता।

ज्ञानीके सहज आनन्दसे तृप्ति होनेके कारण कर्मफलका अभोक्तृत्व—भैया! कर्तृत्व बुद्धि होना यह एक विकट मोह और अज्ञान है कि इस आशयमें फिर अपने हितकी बात ध्यानमें नहीं रहती। यह ज्ञानी पुरुष न तो कर्मोंका कर्ता है और न कर्मफलका भोक्ता है, किन्तु कर्म और कर्म फलका मात्र ज्ञाता रहता है। ज्ञानी जीव कर्मफलका भोक्ता नहीं है क्यों कि वह शुद्ध आत्माकी भावनासे उत्पन्न सहज परम आनन्दको छोड़कर पचेन्द्रियके विषयोंके सुखमें नहीं परिणमता हैं। इस कारण ज्ञानी भोक्ता नहीं होता है। वह कर्मबंधको, कर्मफलको पुण्य पापको मात्र जानता है। ये साता वेदनीय आदिक पुण्य प्रकृतियां हैं। ये असातावेदनीय आदिक पाप प्रकृतियाँ हैं। इस इस प्रकारके बध हैं, सुख दु खरूप कर्मके फल हैं, इन सबको वह जानता ही है अर्थात् वह आत्मभावनासे उत्पन्न अतीन्द्रिय आनन्दसे तृप्त होकर उनको मात्र जानता है।

ज्ञानीके दो पद – ज्ञानी जीव निर्विकल्प समाधिमें स्थित है। वह तो साक्षात ज्ञानी उपयोगतः है ही किन्तु जिसने निर्विकल्प समाधिसे उत्पन्न आत्मीय आनन्दरसका स्वाद पाया, किन्तु वर्तमानमें उपयोगी नहीं है, किन्तु प्रतीति सहित है तो वह भी ज्ञानी है। इन दोनों प्रकारके ज्ञानियों में से जो उपयोगसे निर्विकल्प समाधिमें स्थित है वह तो अकर्ता और

अभोक्ता है ही, किन्तु वह ज्ञानी भी जो वर्तमानमें निर्विकल्प समाधिमें स्थित नहीं है, किन्तु प्रतीति सहित है वह भी श्रद्धामें अकर्ता है।

ज्ञानियोंका ज्ञानबल--जो निर्विकल्प समाधिमें स्थित हैं उनके परम-समता परिणाम कहा है जो ज्ञान और आनन्दरस करि पूर्ण है और यह अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख, अनन्त शक्तिरूपसे आलम्बन सहित है, किन्तु समाधिस्थ ज्ञानी समस्त परद्रव्योंके आलम्बनसे रहित है। उनका आलम्बन है तो अनन्त चतुष्टयका आलम्बन है, परद्रव्यका आलम्बन नहीं है, परभावोंका आलम्बन नहीं है। ख्याति, पूजा, लाभ भोगे हुए भोगोंका स्मरण, देखे व सुने हुए भोगोंका स्मरण, आकांक्षा, निदान बंध आदि कोई उत्पात नहीं है। ऐसे समतापरिणाममें जो ज्ञानी स्थित है वह न कर्ता है, न भोक्ता है। यह स्थिति रहती है तीन गुप्तियों के बलसे।

तीन गुप्तियोंकी आवश्यकता--मोही जन इस मन वचन कायको स्वच्छन्द प्रवर्ताते हैं, इससे कितनी चिंताएँ और आकुलताएँ आ जाती हैं। जो बोलनेकी भारी आदत रखते हैं, वचनोंपर जिनका संयम नहीं है, उनको विह्वलता, अशान्ति पद पदपर है। अधिक बोलने वाला विपत्तियों का स्वयं साधन है। कम बोलना चाहिए, सोचकर बोलना चाहिए। दूसरेको पीड़ा न उत्पन्न हो ऐसा वचन बोलना चाहिए। आजीविका अथवा आत्मोद्धारका कोई प्रयोजन हो तो बोलना चाहिए अन्यथा वचनों पर संयम होना चाहिए। न बोलना चाहिए। सबका भला हो, ऐसे विचार बनाना चाहिए। मेरा भला हो, ऐसे विचार बनाना चाहिए। मेरा भला हो, मुझे सुख हो, मुझे आराम मिले, दूसरेका चाहे कुछ हो, ऐसी खुदगर्जीके साथ अपने विचार न बनाना चाहिए। शरीरसे हमारी प्रवृत्तियाँ ठीक हों, दयारूप हों, गुणियोंके विनयरूप हों तो यों तीन गुप्तियों का यथाविधि यथाशक्ति साधन हो तो उससे समतापरिणाम का मौका मिल जाता है।

निजकी संभाल--भैया! कल्याणका मार्ग बहुत जिम्मेदारीका है। गृहस्थजन घरमें रहते हैं। आज जैसे घरमें रह रहे हैं तो कोई बुरा नहीं है, यदि गृहमें ही अपने गृहस्थ धर्मके अनुकूल साधना बन जाय 'जिनसे घरमाहिं कछू न बनी उनसे बनमाहि कहाँ बनिहै।' आवो दीक्षा ले लो, हो जावो बाबा। अरे जो बाबा बनना चाहते हैं उनसे पूछो कि तुमने घर में रहकर अपना आदर्शरूप भी बना पाया कि नहीं। जो घरमें अपना आदर्श नहीं बना सका तो बाबा बनकर क्या बनावेगा? सो संभालो अपना पद। धन अर्जनके समय धनका अर्जन करो, धर्मपालनके समय धर्मका

पालन करो, और पालन पोषण उपकार सेवा यथासमय करो और ऐसे स्वभावके रुचिया बनो कि जब चाहे जहां कहीं एक इस आत्मस्वभावकी दृष्टिकी धुनि हो।

ज्ञानीकी अभ्रान्त वृत्ति—भैया! जगत्में हम और आपके लिए बाहर में कहीं अंधेर नहीं है। बाहरमें जो अन्धेर होता है वह अपने आपके मन में बना हुआ है। वह मनका अंधेर मिटे तो प्रकाश और आनन्दकी प्राप्ति हो। यह ज्ञानी पुरुष अपनेमें कभी यह भ्रम न पैदा करेगा कि मेरा काम ईंट पत्थर बनाने का भी है या मेरा काम रागद्वेष करनेका भी है। कोई भ्रम नहीं करता। उसका काम जानन वृत्तिका है, बन सके या न बन सके, पर श्रद्धा पूरी यथार्थ हो, उससे ही लाभ है। 'कीजे शक्ति प्रमाण शक्ति बिना श्रद्धा धरे।' शक्ति प्रमाण करो। पूजामें लिखी हैं ये बातें। उसका यह अर्थ नहीं है कि शक्ति प्रमाण गोला बदाम चढ़ावो। न शक्ति हो तो श्रद्धा करते रहो। वह तो एक आलम्बन है। भाव वहां यह है कि रागद्वेष न करना, भगवानके आदर्शरूप अपनी वृत्ति बनाना यह काम हमें करनेको पड़ा है सो करना शक्ति प्रमाण, पर शक्ति न हो तो श्रद्धा तो रखो कि मेरा काम तो जाननमात्रका है।

दृष्टान्तसहित ज्ञानीके ज्ञातृत्वका समर्थन—ज्ञानी जीवको कभी यह भ्रम नहीं होता कि मेरा कार्य ईंट पत्थर बनानेका है या रागद्वेष करनेका है और न यह भ्रम भी होता है कि मेरा भोग तो यह विषय है, इसके भोगनेमें ही हित है ऐसा भ्रम उसके नहीं होता है। किन्तु ज्ञान चेतनामय होनेसे केवल ज्ञाता ही रहता है। कर्मबंध, कर्मफल, पुण्य पाप सबको केवल जानता है। इसके अन्दर और बाह्य करना और भोगना सब कुछ ज्ञान चेतनारूप है। जैसे कभी किसी प्रचारकका भेष देखा होगा जो किसी औषधिका दवाईका प्रचार करे तो उनके कुर्तोंपर भी दवाईका नाम, टोपी पर भी दवाईका नाम, छाता लगाये हो तो उसमें दवाईका नाम लिखा रहता है। इस तरहका वे सारा रूपक बना लेते हैं। यह तो उसका बनावटी रूप है, किन्तु ज्ञानी का तो सारा रूपक अन्तर और बाह्य ज्ञानचेतना रूप है। यह मात्र ज्ञाता रहता है। इसीको दृष्टान्त द्वारा कुन्दकुन्दाचार्यदेव कह रहे हैं।

दिट्ठी सयपि णाणं अकारयं तह अवेदयं चेव।
जाणइ य बंधमोक्खं कम्मुदयं णिज्जरं चेव ॥३२०॥

आत्माके अकर्तृत्व व भोक्तृत्वमें दृष्टिका दृष्टान्त—जैसे दृष्टि बाह्यपदार्थों को करती नहीं है मात्र जानती है भोगती भी नहीं, इसी प्रकार यह ज्ञान बंध मोक्ष उदय निर्जरा किसीका भी न कर्ता है, न भोक्ता है किन्तु जानता

है । एक दृष्टान्त देते हैं आँखका । दृष्टि कहो, आख कहो, नेत्र कहो, नयन कहो, चक्षु कहो सब एकार्थक हैं । जैसे यह आँख दृश्य पदार्थोंसे अत्यन्त जुदा है । आप यहाँ भींत तक देख रहे हैं पर आँख यहीं की यहीं धरी है । जरासी भी दूर नहीं खिसकी । तो दृश्यपदार्थोंसे यह आँख अत्यन्त भिन्न है । अत दृश्य पदार्थका न यह आँख कुछ करनेमें समर्थ है और न भोगने में समर्थ है । इसलिए दृश्य पदार्थको मात्र देखते ही हैं, किन्तु न करते हैं, न भोगते हैं ।

दृष्टिके कर्तृत्व व भोक्तृत्व माननेपर आपत्ति--अगर यह आँख दिखने मे आने वाली चीजको करने लगे और भोगने लगे तो क्या विडम्बना हो जाय, उसका एक उदाहरण लो । जैसे इस आँखने आगको देखा तो यह बतलावो कि यह आँख आगका कर्ता है या भोक्ता है ? यदि आँख आग को करने लगे तो फिर चूल्हा फूँकनेकी जरूरत न रहेगी क्योंकि आग अगर चूल्हेमें कम हो जाय तो तेज आँख करके आगको देखने लगें क्यों कि आँख तो आगका कर्ता है । सो करदो तेज, आग जल जाय, पर ऐसा हो सकता है क्या ? आँख यदि आगको भोगने लगे तो आँखें ही चली जायेंगी । तो यह बात तो जल्दी समझमें आ जाती है क्योंकि अपनी आँख सबको प्यारी है । कोई नहीं चाहता कि मेरी आँख फूट जायें, इस लिए झट समझमें आ जाता है । इसलिए आग आँखको भोगती नहीं है ।

दृष्टान्त द्वारा आत्माके अकर्तृत्वका समर्थन—इसी तरह दिखने वाला यह आत्मा परपदार्थोंका न कर्ता है, न भोक्ता है, किन्तु चेतने का स्वभाव वाला होने से मात्र अपनेमें उन पदार्थोंके जानने रूपसे जानता रहता है । अग्नि जब कम हो जाती है तो पखेसे धौंकते हैं । वह उसका निमित्त है जिससे अग्निसे ज्वाला निकलने लगती है, पर अग्निके बढ़ा देनेमें, ज्वाला निकलनेमें तो आँख निमित्त तक भी नहीं बनती है । जैसे अग्नि लोहेके टुकडेमें लग जाय तो लोहेका टुकड़ा स्वय उष्णता रूप परिणम जाता है । तो लोहे ने अग्निका अनुभव कर लिया क्योंकि वह लोहा स्वय अग्निरूप बन गया है । तो इस तरह यदि आँख आग भोगे तो आँख न रहेगी, न आँख वाला रहेगा । तो जैसे दृष्टि केवल देखने मात्रका स्वभाव रखती है सो वह सबको केवल देखती है, इसी प्रकार ज्ञान भी स्वय दृष्ट होनेसे कर्मों से अत्यन्त जुदा है । इस कारण निश्चयसे कर्मोंके करने और भोगनेमें असमर्थ है । अत कर्मोंको ज्ञान न करता है और न भोगता है, किन्तु केवल जानन मात्रका स्वभाव होनेसे कर्मबधके अथवा मोक्षके कर्मोदय को अथवा कर्म निर्जराको केवल जानना ही है ।

ज्ञानीकी अन्त अनाकुलताका एक उदाहरण - भैया ! बहुतसे स्थल

ऐसे होते हैं कि न कर्ता है न भोक्ता है, किन्तु जानता है। जैसे एक स्पष्ट उदाहरण ले लो दस बीस बार जो लड़की ससुराल जा चुकी है ऐसी लड़की इक्कीसवीं बार भी जा रही है, तो जिस समय जैसा रिवाज है खूब चिल्लाकर खूब रोती हुई—अरी मोरी महतारी फिर जल्दी बुला लियो आदि कहकर कितनी बुरी तरहसे वह रोती है और अतरमे परिणाम हर्षपूर्वक जानेका है। तो वह रुदनको न करने वाली है और न भोगने वाली है किन्तु वह तो ज्ञाता बन रही है अपने कार्योंकी क्योंकि उस रुदन और क्लेशके साथ तो उसकी तन्मयता ही नहीं है और सुनने वाले चाहें दुःखके मारे आँसू ढालने लगें, देखो इसको बड़ा क्लेश है। ज्ञानी जीवको अपनी आत्मभावनासे उत्पन्न हुए आनन्दरसका इतना विशाल संतोष है कि किसी भी परिस्थितिमें हो, उन सब परिस्थितियोंका वह मात्र जाननहार रहता है। उसमें कर्ता और भोक्ताकी बुद्धि नहीं लगती।

पारिणामिक स्वरूप—इस प्रकरणमें यह बताया गया है कि हे आत्मा तू तो परमार्थतः कर्तृत्व भोक्तृत्व बध मोक्ष आदि सभी परिणामोंसे रहित है। तू अपने सत्तासिद्ध शुद्ध उपादानको तो देख। केवल ज्ञाता ही है, ज्ञायक स्वरूप है और ज्ञायक शब्दसे भी क्या कहें, वह तो एक अद्भुत नाथ ही है। सर्व विशुद्ध पारिणामिक परमभावको ग्रहण करने वाले शुद्ध उपादानभूत स्वरूपके मार्गको तक, तू पारिणामिक भाव रूप है। पारिणामिक भाव किसे कहते हैं ? जल्दीमें लोग यों बोल जाते हैं कि जो बदले नहीं, ध्रुव हो, अचल हो उसे कहते हैं पारिणामिक भाव। यद्यपि यह लक्ष्य भूत भावका स्वरूप है किन्तु पारिणामिक शब्दसे सीधा यह ध्वनित नहीं होता, किन्तु परिणाम ही जिसका प्रयोजन है उसे पारिणामिक कहते हैं। परिणामः प्रयोजन यस्य सः पारिणामिकः। परिणमन परिवर्तन निरन्तर प्रतिसमय परिणमते रहना, यह ही जिसका प्रयोजन है उसे पारिणामिक भाव कहते हैं।

परिणामसे परिणामीकी रक्षा—वस्तुकी सत्ताकी रक्षा करने वाला उत्पाद व्यय है। उत्पाद व्यय न हो तो वस्तुकी सत्ता न रह सके। अणु पदार्थ किसलिए हैं ? उनमें विशेष प्रयोजन न देखो कि मकान बनानेके लिए हैं या कुछ लोगोंके आरामके लिए हैं, नहीं वे तो परिणमते रहनेके लिए होते हैं, उनका दूसरा प्रयोजन नहीं और यह जीव किसलिए है ? क्या राज्य करने के लिए है ? क्या धनी बननेके लिए है ? क्या नेता होनेके लिए है ? क्या झगड़े टंटा करनेके लिए है ? नहीं। यह जीव भी अपने परिणमते रहनेके लिए है। जीवका अपना परिणमता रहना क्या है ? अपने सत्त्वके कारण, अपने द्रव्यत्व गुणके कारण, परके सम्बन्ध बिना

स्वय परिणमते रहना, इसे कहा है परिणाम। वह परिणमन वहाँ अभेद-रूपसा बन जाता है। उसके पृथक् वर्णन किया जाना अशक्य है। अगुरु-लघुत्व गुणके कारण जो जीवका परिणमन है वह है जीवका प्रयोजन सो पारिणामिक भाव वह है कि जिसके ये प्रयोजन चलते रहें, परिणमन। तो है अनित्य और जिसके चल रहा ऐसा कहनेसे ही स्वय हो गया नित्य।

स्वभावदृष्टिके उद्यमनकी शिक्षा—ऐसे स्वभावको ग्रहण करने वाली दृष्टिसे निहारो तो जरा, यह कर्तृत्व, भोक्तृत्व, बध, मोक्ष सर्वकल्पनाओं से शून्य है। अन्तरमें स्वरूप निरखा जा रहा है। जो अन्तरकी कणिका उज्ज्वलित होकर इतना विशालरूप बना सके कि सर्व विश्वमें व्यापक बन जायेगा। ऐसा मात्र ज्ञाता द्रष्टा यह मैं आत्मा हू। सो इस दृष्टातसे यह पूर्ण निश्चय बना लेना कि जैसे आँख सबको देखकर भी सबसे अलग है, करने और भोगनेका तो यहा रच सवाल ही नहीं है। इस प्रकार यह मैं आत्मा अथवा यह मैं ज्ञान समस्त पदार्थोंको जानकर भी समस्त पदार्थोंसे अत्यन्त जुदा हू। इसको करने और भोगने का तो यहा सवाल ही नहीं पैदा हो सकता है, ऐसे कर्तृत्व और भोक्तृत्वसे रहित अपने ज्ञानस्वरूप का निश्चय करके आत्मस्थित रहनेका उद्यम करना है।

आत्माको कर्ता ही माननेमे मोक्षका अभाव—इस प्रकरणमें यह बात बतायी जा रही है—आत्मा अकर्ता है और अभोक्ता है किन्तु मोही जीव अज्ञान अधकारसे व्याप्त होकर आत्मको कर्ता देखते हैं, ऐसे जीवोंका, चाहे वे मोक्ष भी चाह रहे हों तो भी लौकिक पुरुषोंकी भाति मोक्ष नहीं होता है। जैसे लौकिक पुरुष अपने सुख दु ख आदि सब बातोंमें भगवानको कर्ता मानते हैं, सुख दिया तो भगवानने, दु ख दिया तो भगवान ने और लड़का मारा जिलाया तो भगवानने और लड़का पैदा किया तो भगवान ने। अपनी सारी बातोंको जो भगवानकी की हुई मानता है जैसे उन्हें यह गुञ्जाइश नहीं है कि वे अपने स्वरूपमें मग्न हो सकें और इसी कारण मोक्ष होना असम्भव है, इसी प्रकार जो स्वरूपत अपने आत्माको विभावाका कर्ता देखते हैं—मेरा ही तो राग करनेका काम है, मेरा ही तो विषय भोगनेका काम है, इस तरह जो अपने को कर्ता मानते हैं उनको भी मोक्ष नहीं होता है। इस बातको आगेकी गाथामें कहा जा रहा है।

लोयस्स कुणइ विण्हू सुरणारयतिरियमाणुसे सत्ते।
समणाण पि य अप्पा जइ कुव्वइ छव्विहे काये ॥३२१॥

लौकिक व आत्मकर्तृत्ववादी श्रमण, इन दोनोके आत्महितके अलाभमे समानता—लोकके मध्यमें कोई एक विष्णु व्यापक देव, नारकी, तिर्यञ्च मनुष्य जीवोंको उत्पन्न किया करता है और यहा इन श्रमणोंके मनमें भी

यदि यह बात आ जाय कि यह आत्मा ६ प्रकारके कार्योंको रचता है-पृथ्वीकाय, जलकाय अग्निकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रस काय। इनको आत्मा ही किया करता है। तो आप देखेंगे कि स्वरूपकी पकड़ दोनोंने नहीं की। लोकमें एक भगवानको कर्ता माननेकी प्रसिद्धि क्यों हो गई? कुछ भी थोड़ी बात होती है तो वह बात बढ़कर बड़ी बनती है। कोई रंच मात्र भी उसमें मर्म न हो, बात न हो और फिर फैल जाय, ऐसा तो नहीं होता है। उसके प्रारम्भमें जहांसे बिगड़ना था उसका आशय बिगड़ गया वहां मूलमें कुछ बात है, तब लोकमें यह प्रसिद्धि हुई कि भगवान समस्त जगतका कर्ता है। वह क्या है सो बतावेंगे।

बातके बतंगड़ा होनेमें एक दृष्टान्त—एक सेठके यहां प्रीतिभोज हुआ। सेठने सोचा कि ये लोग हमारी ही पातलमें खायेंगे और उसीमें छेद करेंगे क्योंकि दांत खुजलाने पड़ते हैं। पातलमें सींक लगी होती है। यदि बजाय कटोराके हम लोगोंको पातल मिलती तो सींकका झंझट न रहता। कोई कहता नीमकी सींक ले आवो, कोई कहता लकड़ी की सींक ले आवो लेकिन कैसे मिले उसमें सचित्तका दोष है। तो पातलसे सींक निकालकर छेद कर डालना यह तो अच्छा नहीं है ना। उसी पातलमें खाये और उसीमें ही छेद करदे तो एक आदमीसे तीन-तीन अगुलकी सींकभी परसवा दी। अरे जहां पेड़ा मिठाई सब परस रहे हैं तो एक छोटासा टोकना सींकोंका भर दिया, एक आदमी एक-एक आदमीको तीन अंगुलकी सींक भी परोसता जाय। सो खानेके बाद किसीने पातलमें छेद नहीं किया क्यों कि सींक सभीको मिल गयी ना। सेठजी गुजर गए। ७-८ वर्ष बाद उनके लड़कोंने पगत करी तो लड़के सोचते हैं कि ऐसी पंगत करें कि बापका हम नाम ऊँचा उठा दें। उसने ३ मिठाई बनवाई थीं तो अपन ७ बनवायेंगे। और उसने इतने लोगोंको निमंत्रण दिया था, अपन इतने आदमियों को निमंत्रण करेंगे। और एक भैया ने कहा कि उसने एक-एक पतली लठिया भी परोसी थी (सींक) अरे तो अपन उससे तिगुनी बड़ी परोसेंगे। बजाय तीन अगुलके १२ अगुलका जितना कि बच्चोंके लिखनेका वर्तना होता है उतनी बड़ी डण्डियां परोसी गयीं। लड़के भी जब गुजर गए तो लड़कोंके लड़कोने पगत करी। हम अपने बापका नाम खूब रोशन करेंगे। तो उसने ७ मिठाई बनवायी थीं अपन ११ बनवायेंगे। उसने एक बेंया की डंडी परोसी थी अपन सवा हाथका डंडा परोसवायेगे। सो बढ़ईसे सवा हाथके बहुतसे डंडे बनवाये। जब सब कुछ परोसा गया तो पीछेसे सवा सवा हाथका डंडा भी परोसा गया। तो भाई यह सवा हाथका डंडा परोसनेकी नौबत कहांसे आ गयी? कुछ तो मूलमें बात होगी। मूलमें बात थी यही कि लोग पातलमें छेद न कर दें। उस उद्देश्यको तो भूल

गए और डंडे परोसने लगे।

भगवानकी मर्जी बिना पत्ता भी नहीं हिलता। सो भाई तुम्हारी बात तो है सच, पर कहा सच है उसको कहना चाहिए? ये सब कारण-परमात्मा जो अनादिसे मर्जी वाले बने हुए हैं यदि इनकी मर्जी न होती तो यह क्या एक भी पर्याय मिलती यहा विभावकी, क्या कुछ भी परिस्पद होता? क्या रंच भी सम्बन्ध बनता? तब मर्जी बिना कुछ हिला तो नहीं। मर्जी खत्म करदे, सारी बात शात हो जायेगी। एक बात। फिर दूसरी क्या चली कि भगवानके ज्ञानको भी लोग मर्जीके रूपमें देखने लगे। सो यह तो बात सत्य है कि भगवानसे ज्ञानमें आए बिना कुछ होता नहीं है, जो ज्ञात है सो होता है। यद्यपि जो होना है सोई ज्ञात है, पर इसको किसी भी किनारे बैठकर कह लो। समस्त ज्ञानियों ने मर्जीसे इसका सम्बन्ध जोड़ा है क्योंकि इसका ज्ञान भी तो मर्जी बिना अलग पाया हुआ नहीं है। सो जो भगवान सर्वज्ञदेव द्वारा ज्ञात है वही होता है। इस रहस्य को इन शब्दोंमें जान लिया गया कि भगवानकी मर्जी बिना कुछ नहीं होता है।

कठिन बात न करनेमे कुलपरम्पराका बहाना—भैया! यद्यपि पर-उपाधिका निमित्त पाकर इस जीवमें नानाविध परिणमन हो रहे हैं, परिणतिया हो रही हैं और अनेकों द्रव्य पर्यायोंमे ये शरीर रचे जा रहे हैं तिस पर भी जो स्वभावमात्र आत्मा तकते हैं उनकी दृष्टिमें यह आत्मा अकर्ता है। कितनी ही किम्वदन्तिया गढ़ी जाती पड़ती हैं पर द्रव्यको परद्रव्यका कर्ता मानने पर। कोई तो यों कह बैठते हैं कि कोई बुढ़िया थी सो वह गुजर गयी। उसके जीवको यमराजने भगवानके सामने पेश किया। तो भगवानने अपनी खतौनी निकाली, उसमें देखा कि उसके मरने का टाइम था ना, तो जो खतौनी देखी, रोकड़ देखी तो वहा इसके मरने का टाइम न था। इस नामकी एक गाँवमें और एक बुढ़िया है। तो कहा कि जावो-जावो इस जीवको उसी शरीरमें ले जावो और दूसरे जीवको ले आवो। वह बुढ़िया जिन्दा हो गयी। सो कहानी सुनने में दिल तो खूब लग रहा होगा। तो ऐसी किम्वदतिया जैसी चाहे गढ़नी पड़ती हैं। विज्ञान द्वारा सिद्ध बातको सीधा माननेमे कष्ट हो रहा है। और जो विज्ञानसे न उतरे, युक्तिपर न उतरे किन्तु अपने बाबाके कहे आए कुल परम्परासे होता आया उसे मान लेता। सो यह मोही नाना कल्पनाओंको तो कर लेता है पर सीधा माननेका उत्साह नहीं जगाता।

निर्धनता रखनेमे कुलपरम्पराकी अनिच्छा—कोई कुल परम्परासे सोचा ही लगता है, गरीबी ही बनी है, वह तो नहीं विचारता कि धनी मत बनो,

देखो अपने बाप दादा कुल परम्परा गरीबीकी बनाते चले आए हैं, खोंचा ही फेरते आए हैं, सो धनी मत बनो, ऐसा तो कोई नहीं सोचता। वहां तो कुल परम्पराको खत्म करना चाहते हैं। एक गरीबीकी कुलपरम्परा अच्छी नहीं है। पर यहां असत् श्रद्धाकी परम्परा है। इसको ही समाप्त नहीं करना चाहते हैं। हम प्रभुके दर्शन करने आते हैं तो उतने ही काल हम अपना ज्ञानानन्दस्वरूप तक सकें, अकिञ्चन तक सकें, कुछ हमें न चाहिए, ऐसा अपनेको बना सकें तो हम मोक्षमार्गके प्रकाशसे लाभ लूट सकते हैं, किन्तु कितना अंधेरा छाया है ? जहा नदी का बड़ा तीव्र वेग है तो कितना ही बांध बांधे, एक जगह बांधे दूसरी जगहसे उखड़ जाता है। जब मोहका वेग मोही पुरुषोंमें चल रहा है तो वह चाहे पुण्योदयसे ऐसे भी धर्म और कुलमें उत्पन्न हुआ हो जहां मोक्ष मार्गकी अनेकों ही प्रवृत्तियोंकी परम्परा हो तो मोहके वेगके कारण वहां भी गैल निकाल लिया जाता है और ऐसी प्रसिद्धि कर ली जाती है कि अपनी इच्छाकी पूर्ति वहां समझते हैं।

इस लोकके मध्यमें जैसे एक कोई विष्णु ईश्वर भगवान प्रभु समस्त देव, नारक, तिर्यञ्च मनुष्योंका कर्ता है तो इस श्रमणने भी अपने आत्मा को सुर, नारकादिकका कर्ता मान लिया है। ऐसी स्थिति होने पर उन दोनोंका क्या हाल होता है ? इस बातको इस गाथामें कह रहे हैं।

लोगसमणाणमेयं सिद्धंत जइ ण दीसइ विसेसो।
लोयस्स कुणइ विण्हू समणाणवि अप्पओ कुणइ ॥३२२॥

इस प्रकार इन लौकिक पुरुषोंमें और इन श्रमणोंमें सिद्धान्तका कोई अन्तर नहीं दीखता है। लौकिक जनोंने यदि प्रभुको कर्ता माना तो श्रमणोंने आत्माको कर्ता माना, परतु न तो इस विश्वको किसी अन्य एक प्रभुने किया और न आत्माने ही स्वरसत' शरीरोंको किया, जगत्का न प्रभु कर्ता है और न यह आत्मा कर्ता है और हो सो रहा है। किसे कर्ता बताया जाय ? जब अपने मित्रोंमें या अपने बंधुओंमें बड़ा प्रेम हो और बड़ी निश्छलता हो और फिर भी किसीके द्वारा कोई ऐसा काम बन जाय कि हानि उठाना पड़े तो वहा कहते हैं भाई कसूर तो किसीका भी नहीं है, बानक ऐसा बन गया है।

कर्तृत्व समर्थनमें कठिनाई—यहां बात तो यह है कि भाई कसूर तो आत्माका है नहीं कुछ अर्थात् वह विपरीत आशयके स्वभाव वाला नहीं है किन्तु बानक बन गया है ऐसा। दर्पणमें सामने रखी हुई चीजका प्रतिबिम्ब पड़ता है, तो प्रतिबिम्ब पड़नेसे स्वच्छता रुक जाती है। इस स्वच्छताके रोकनेका अपराध किस पर मढ़ें ? दर्पणपर मढ़िये क्योंकि

दर्पणने ही अपनी परिणतिसे अपनी स्वच्छता रोक दी है। पर दर्पणके स्वभावको देखते है तो फिर यह गल्ती पायी ही नहीं जाती है। तब किस पर मढें ? सामने आयी हुई चीज पर मढें क्या ? सामने आई हुई चीज का न आशय खराब है, न वह अपने प्रदेशसे बाहर अपनी गति रखता है, तो उस पर भी क्या अपराध मढें। न उपाधिका अपराध, न उपादानका अपराध और बानक सो ऐसा बन गया है। इसमें यह बात आयी कि अशुद्ध परिणम सकने वाला उपादान उपाधिका निमित्त मात्र पाकर अपनी परिणतिसे अशुद्ध बन गया है, इस रहस्यको अनभिज्ञ लोग या तो प्रभुको इन पर्यायों का कर्ता मानते हैं या आत्माको इन पर्यायोंका कर्ता मानते हैं या कर्मोंको इन पर्यायोंका कर्ता मानते हैं। पर ये तीनोंकी तीनों बातें सत्य नहीं है।

ये मायामय दृश्य सत्य भी हैं, असत्य भी हैं। सत्य तो यों है कि वर्तमान परिणमन है और असय यों है कि किसी एक पदार्थमें होने वाला नही है। जो श्रमण अपने आत्माको इन समस्त दृश्योंका कर्ता मानते हैं उनके मतमें और लौकिक जनोंके मतमें किसी प्रकारके सिद्धान्तका अन्तर नहीं आया। जब कोई अन्तर नहीं आया तो इसका दुष्परिणाम क्या निकलेगा ? इस बातको इससे सम्बन्धित तीसरी गाथामें कहते हैं।

एव ण कोवि मोक्खो दीसइ लोयसमणाण दोण्ह पि।
णिच्च कुव्वताण सदेव मणुयासुरे लोए ॥३२३॥

परको कर्ता माननेका अधेरा—जब स्वच्छ आत्मस्वरूपको नहीं ये लौकिक जन समझ सके और न श्रमण पहिचान सके तो इन दोनोंको ही मोक्ष नहीं दृष्ट होता है। आनन्दके पात्र ये दोनों ही नहीं होते हैं। भ्रमका क्लेश बहुत बड़ा क्लेश होता हैं। जिन्हें यह भ्रम है कि मेरे सुख दु ख राग द्वेष आदिका करने वाला प्रभु है तो अब यह अकिञ्चन हो गया अर्थात् अपनी सत्ता तकका भी विश्वास न रहा। मैं सद्भूत हू, यह बात अब कहा रही ? तो जैसा चिदानन्द स्वरूप सत् हू वह तो निरन्तर कुछ न कुछ रहा ही करेगा और जो रहा करूँ वही परिणमता हू। तो इसका सत्त्व ही नहीं रहा उस की दृष्टिमें। अब उसके भ्रमका क्या ठिकाना ?

आत्माको कर्ता माननेका अधेरा —इसी प्रकार जिसको यह भ्रम लग गया है कि रागद्वेष मोह करनेका मेरा ही तो काम है। मैं ही कर्ता हू, मेरा ही स्वरूप है और न कर सकूँ तो मैं रहूगा ही नहीं, मिट जाऊँगा। जिस सिद्धान्तके आधार पर यह बात मानी जाने लगी कि इस जीवका सर्वथा मोक्ष कभी नहीं होता। जिसे लोग मोक्ष कहते हैं, बैकुण्ठ कहते हैं वहा राग अत्यन्त मंद रहता है, सो वहा बहुत काल तक सुख भोगते हैं, पर

वह राग जब ऊपर उठता है और तब फिर संसारमें आना पड़ता है, उस सिद्धान्तमें यह बात आयी है कि आत्मा रागादिक स्वभावी है और वह विभावोंका कर्ता है। सो इन श्रमणोंने भी जो कि आत्माको अपनेको कर्ता मानते हैं इन श्रमणोंका भी मोक्ष नहीं हुआ हो सकता है क्योंकि उनका मोक्ष कहां ? वे तो निरन्तर देव नारक तिर्यञ्च मनुष्य इन देहोंको धारण करते रहनेमें हैं। श्रद्धा ही उनकी ऐसी है।

भ्रमसे परकी आत्मीयता – लोग कहते हैं कि कोयलको कौवा पालता है। कोयल भी काली और कौवा भी काला। तो कोयलका बच्चा जब तक रहता है तब तक तो रंच भी अन्तर नहीं मालूम होता है। तो कोयलके बच्चेको कौवा पालता है। भ्रम लगा है ना, पालते रहनेमें ही यह कौवा लगा है क्योंकि उसे भ्रम है। यह परशरीर है, पौद्गलिक है, अचेतन है, फिर भी इसका करने का ही स्वरूप है, स्वभाव है, ऐसा भ्रम लगा है ना। इस कारण यह भ्रमी पुरुष इन सबको पाल रहा है। भ्रमके दुःखको क्या कहें ?

भ्रमकी विडम्बना—कहीं किसीके घर दीवालीके ७ दिन पहिले मकान की भींतोंमे गेरुवा रग पोता जा रहा था। उस मनुष्यकी आदत थी कि सुबह जब भी ४, ५ बजे नींद खुले तो लोटा लेकर टट्टी जाये, ऐसी आदत थी उस आदमीकी। सो खटियाके नीचे रातमें एक लोटा पानी रोज रख दिया जाता था। उस दिन क्या हुआ कि पानी खटियाके नीचे रखना भूल गया। उस पुरुषकी लड़की एक लोटा रख दिया गेरुवे रंगका। जब ४॥ बजेके करीब वह उठा तो लोटा उठाया और जंगल चला गया मील भर दूर। जब शौच करके सोचने लगा तो एकदम खून ही खून नजर आया। वह गेरुवा रग था। झट उसके सिरमें दर्द उत्पन्न हो गया, हाय आज तो आधासेर खून निकल गया। सर दर्द बढ़ता गया। जब घर पहुंचा तो चारपाई पर पड़ गया, बुखार चढ़ गया। लेटा हुआ है खटिया पर। इतनेमें लड़की आयी, सो उसे तो अपना पोतनेका ही काम करना था। कहा दद्दा! यहां गेरुवेका लोटा रखा था वह कहां गया ? इतनी बात सुनते ही उसकी समझमें आ गया कि वह खून नहीं था, वह लोटा गेरुवे रंगका था। लो बुखार मिट गया, सिर दर्द मिट गया। भ्रम ऐसी बुरी चीज होती है।

विसंवादका मूल न कुछ—परस्परमें कुछ भी बात न हो और जरासा कुछ भ्रम हो जाय तो भ्रम होने पर जरा बोलचाल कम हो गयी। सो अब और भ्रम बढ़ता गया। भ्रम बढ़ते-बढ़ते एकदम परस्परमें मैत्री भाव समाप्त गया। अब निर्णय करने कोई बैठे तो क्या निकला ? कुछ नहीं। यह

इतना महान् संकट और संसार, कषायोंका यह जगजाल, ये सब हम आप रातदिन भोगते हैं। इन सकटोंकी जड़ कितनी है? अच्छा क्या संकट है? परिवार गुजर गया, धन कम हो गया, पड़ौसी हमसे ज्यादा धनी हो गया, बड़े सकट आ रहे हैं हम पर। ये संकट क्यों आए कि हमने प्रथम माना कि यह मेरा है। यह गल्ती क्यों हुई? यों हुई कि इस शरीरको माना कि यह मैं हू। यह गल्ती क्यों हुई कि हमने रागादिक भावोंको यह माना कि यह मैं हू। अब देखो हमने और बाहरमे कुछ गड़बड़ नहीं किया सिर्फ इतना भर मान लिया कि मैं रागरूप हूं। इतना ही भर तो मैंने काम किया कि ये सचमुचके पचासों सकट हम आप पर आ गए। अब जन्म लिया, अब मरे।

कुमतिकी हठका दुष्परिणाम—जैसे कोई जिद्दी लड़का भारी हठ करे कि हमें तो इस तलैयामें नहवा दो, तो उसे तो गुस्सा आ गयी, पकड़कर उसे नदीमें डुबाया, फिर उठाया, फिर डुबाया, फिर उठाया। अब वह चिल्लाता है कि रहने दो। अब नहीं नहवावो और वह कहे कि अभी और नहावो, खूब नहावो। सो जरासी हठ करना इतना रागरूप है कि उसका फल यह हुआ जन्मे, मरे। बड़ा क्लेश है। नहीं चाहता यह फिर भी यही होता है कि अभी और जन्मो और मरो। इतना संकट लद गया केवल भ्रमकी नींव पर। हम भ्रम समाप्त करें तो सब संकट दूर हो जायेंगे।

लौकिक और श्रमणोंकी समानता—जो जीव आत्माको कर्ता ही मानते हैं वे लोकोत्तर होने पर भी लौकिकता का उल्लघन नहीं करते हैं। जो किसी अन्य ईश्वर प्रभु विष्णुको कर्ता मानते हैं, अपने सुख दु ख पुण्य पापका, वे तो कहलाते हैं लौकिक जन। और जो ऐसा न मानकर अपने आपको ही सुख दु ख पुण्य पापका कर्ता मानते हैं वे लोकोत्तर हैं अर्थात् उनसे उठे हुए हैं। कुछ अध्यात्मकी ओर चले हुए हैं, फिर भी चूँकि प्रयोजन है आत्मस्वरूपमें मग्न होनेका, वह प्रयोजन भी नहीं पा सकते जो आत्माको ही कर्ता मानते हैं इसलिए वे भी लौकिक ही हैं।

ग्रामारि—एक शब्द प्रसिद्ध है लोग कहा करते हैं गवारो। अब गँवार शब्द जो है वह लोग गाली मानते हैं, पर गँवार गाली नहीं है। गँवारका अर्थ है ग्रामारि। ग्रामारिका अर्थ है पचइन्द्रियके विषय व अरिका भाव है विजेता। परमात्मप्रकाशमें देख लो ग्रामका अर्थ इन्द्रिय विषय लिया है। और इन्द्रिय विषयोंके जो अरि हैं, दुश्मन हैं, जीतने वाले हैं वे कहलाते हैं गँवार। जो विषयोंको जीत करके सत हुए हैं उन सतोंका नाम है गँवार। पर शब्दका अर्थ भूल गये, सो एक बात तो यह है और दूसरी बात यह है कि होय तो कोई छोटा आदमी बुद्धसा और उसकी प्रशसा की जाय

कि आ गए गंवार साहब। गँवार तो बढ़िया शब्द है ना संतपुरुष, और है कोई मामूली पुरुष और उसे कहते हैं कि आ गए गँवार साहब तो बस गालीसी लग जाती है। जैसे कोई हो तो मक्खीचूस अर्थात् कृपण और उसको कोई कहे कि आ गए कुबेर साहब, तो वह गाली मानेगा या प्रशंसा मानेगा? वह तो गाली मानेगा। कहा तो बढ़िया शब्द है पर छोटेको बड़ा कहा इस कारण वह गालीमें शामिल हो गया।

उच्चक.—और भी शब्द देख लो। लोग कहते हैं कि यह बड़ा उचक्का है। उचक्काका अर्थ क्या है? उच्चै शब्दमें स्वार्थे कः प्रत्यय लग जाता है सो उस उच्चक का अर्थ है बड़ा ऊँचा पुरुष। उच्चक से बिगड़ कर बन गया उचक्का। यह है बड़ा उच्च पुरुष, पर लोग मान लेंगे गाली। गालियोंमें जितने इकहरे शब्द हैं वे सब सभ्यताके जमानेमें प्रशंसाके शब्द थे और प्रशंसाके लायक जो न हुआ और कहे गए ये शब्द तबसे वे शब्द गाली बन गए।

कुलच्छी एवं पुंगवः—एक शब्द है कुलच्छी। कुलच्छीका क्या अर्थ है? कुलं अच्छं यस्य सः कुलच्छी। जो कुलमें श्रेष्ठ हो उसका नाम है कुलच्छी। अगर छोटे आदमीको बोला गया तो उसने उसको गाली मान लिया और पुङ्गा कहो तो कहो गरम हो जायें। यह है बड़ा पुङ्गा। पुङ्गा शब्द तो आप रोज-रोज भगवानकी पूजामें बोला करते हैं। पुङ्गाका अर्थ है श्रेष्ठ साधु पुरुष। तो यहां लौकिक शब्द कहा गया है। लौकिकका अर्थ है जो इस लोकमें रह रहा है, क्या बुरा शब्द है, कुछ भी बुरा नहीं, किन्तु छोटी धारणा वालों को लौकिक शब्द बोला गया है। सो उसका फिर आशय उच्च नहीं रहा।

लौकिकता—जो पुरुष आत्माको कर्ता ही मानता है वह यद्यपि लौकिक पुरुषोंसे ऊँचा उठा हुआ है, वह पुरुष कर्तृत्वकी धारणासे तो दूर है, इसलिए लौकिक पुरुषसे ऊँचे उठा है, किन्तु अपने प्रयोजनको न पा सकनेसे वह भी लौकिक ही कहलाता है। लौकिक पुरुषोंके मतमें परमात्मा विष्णु सुर नर नारकादिक कार्योंको करता है। तो कर्तृत्वका विपरीत आशय तो दोनोंमें बराबर है। इस कारण वह भी जन्म मरणका पात्र बना है और ये भी जन्म मरणके पात्र बने हैं। परमात्माके जितने नाम हैं वे सब नाम भगवानके गुणोंकी प्रशंसा ही करने वाले हैं, किन्तु किसी नाम के आधारसे मतभेद हो गए अर्थका आधार लो तो मतभेद नहीं हो।

निजधाम—विष्णुका अर्थ क्या है? व्याप्नोति इति विष्णु। जो समस्त लोकको व्याप जाय, समस्त विश्वमें फैल जाय उसको कहते हैं विष्णु। समस्त विश्वमें प्रभुका ज्ञान फैला हुआ है। जैसे मानो आपका

ज्ञान इस फलाङ्ग आधे फलाङ्गमें फैला है ना, प्रभुका ज्ञान समस्त विश्वमें फैला है। ऐसा जो वीतराग निर्दोष सर्वज्ञदेव है वह विष्णु कहलाता है। जो आत्मकीर्तनमें चतुर्थपद है—जिन शिव ईश्वर ब्रह्मा राम, विष्णु, बुद्ध, हरि जिसके नाम। राग त्यागि पहुचूँ निज धाम, आकुलताका फिर क्या काम ।। इसका अर्थ कोई कुछ लगाता है, कोई कुछ लगाता है। कोई जिन के नाम बोलकर पहुचूँ या पहुचे निजधाम बोलता, पर इसका वास्तविक अर्थ क्या है इस अध्यात्म प्रकरणमे कि जिस चिद् ब्रह्मके, आत्मतत्त्वके ये नाम हैं उस आत्मतत्त्वमें मैं राग छोड़ करके पहुच जाऊँ तो फिर आकुलताओंका कोई कार्य नहीं रह सकता है।

जिन, शिव, ईश्वर—क्या-क्या नाम है चिद्ब्रह्मका? जिन—जो रागादिक शत्रुओंको जीत ले उसे जिन कहते हैं। वह जिन कौन हुआ? निर्दोष सर्वज्ञदेव और वह भी है एक आत्मा। शिव जो कल्याणस्वरूप हो उसे शिव कहते हैं। कल्याणस्वरूप यह आत्मा स्वय है। यह आत्मा ज्ञानानन्दस्वभावी है। यह कल्याणमूर्ति है। ईश्वर जो अपने कार्यको करनेमें स्वतन्त्र हो उसे ईश्वर कहते हैं। इसही का नाम ऐश्वर्य है, जहाँ पराधीनता नहीं रहती, प्रत्येक कार्यमें स्वाधीनता हो, उस ही का नाम ऐश्वर्य है। प्रभु सर्वज्ञदेव क्या कार्य करते है? जो करते हैं उसमें वे स्वतंत्र हैं। जैसे यहा दुकान आरम्भ करने वालेको कितनी हो अड़चनें और परतन्त्रता रहती है, यहा वहा कुछ भी नहीं है और आत्माके स्वरूप को देखो तो यहा पर भी पराधीनता कुछ नहीं है। यह आत्मतत्त्व ईश्वर स्वरूप है।

ब्रह्मा, राम—ब्रह्मा जो सृष्टियोंको रचे उसे ब्रह्मा कहते हैं। यह आत्मा अपनी परिणतियोंको रचता रहता है। आत्मा ही क्या, जो कुछ भी सत् हो वह सर्वसत् अपने परिणमनको निरन्तर रचता रहता है। यह आत्मा भी जो असाधारण चैतन्यस्वरूप है। वह अपने इस चैतन्यके परिणमनको निरन्तर रचता रहता है। यह आत्मा ब्रह्मा है। प्रभु परमात्मा ब्रह्मा है। राम—रमन्ते योगिनो यस्मिन इति राम। जिसमें योगीजन रमण करें उसे राम कहते हैं। योगीजन कहाँ रमण करते हैं? अपने आपमें। देखो अज्ञानका प्रसार कि जैसे हिरणके ही नाभिमें कस्तूरी बसी है और उस कस्तूरीसे कुछ-कुछ गध उस हिरणको आ रही है, पर हिरणको यह बोध नहीं है कि मेरी ही नाभिमें यह कस्तूरी बसी है, सो वह जगलभरमें भटकता फिरता है। तो इसी प्रकार यह अज्ञानी जीव अपने आपमें बसे हुए ज्ञान और आनन्दको भोगता है परन्तु इसे स्वयका पता नहीं है, सो ज्ञान और आनन्द बाहर ढूँढ़ता रहता है। पर वह स्वय

जिस स्वरूपमें रमण करता हूँ वह अपने आपमें ही विराजमान् है। सो यही आत्माराम है।

विष्णु, बुद्ध, हरि—विष्णु—वह जो व्यापक हो, ज्ञान द्वारा व्यापक भगवान परमात्मा है। और आत्मामें यह स्वभाव पड़ा है इसलिए यह आत्मा विष्णु है। बुद्ध—जो ज्ञानमय हो उसे बुद्ध कहते हैं। ज्ञानमय यह आत्मा है। यही बुद्ध है। हरि—जो पापोंको हरे उसे हरि कहते हैं। मेरे पाप हरने कोई दूसरा न आ जायेगा। कोई नहीं है ऐसा भला भगवान जो भूलकर अपना आनन्द छोड़कर इन लटोरे खचोरोंके पापोंको हरने आए। पापोंको हम स्वयं हरें, दूर करें तो कर सकते हैं। इसलिए यह आत्मस्वरूप ही हरिरूप है। ये सब जिसके नाम हैं यदि मैं राग छोड़कर उस आत्मतत्त्वमें पहुंच जाऊँ तो फिर यहां वहां आकुलताओंका कोई काम नहीं है।

कर्तृत्वव्यामोहकी समानता—भैया! लौकिक पुरुषोंने तो परमात्माको कर्ता माना है हम सबकी अवस्थाओंका। हो वह कर्ता है तो नित्य कर्ता कहलाया, और यहां श्रमणजनोंने भी अपने आत्माको नित्य कर्ता माना है। तो लौकिक पुरुषोंके व इन लोकोत्तर श्रमणोंके भी मोक्ष नहीं होता है। परद्रव्यमें और आत्मतत्त्वमें रंचमात्र भी सम्बन्ध नहीं है, पर मोहका नशा ऐसा जड़ा हुआ है जगतके जीवोंपर कि चित्तसे हटता ही नहीं है। मेरे भाई हैं, मेरा परिवार है, मेरा धन है, मेरा शरीर है और तो बातें जाने दो, मेरी बात है, मेरी बात नहीं मानी गयी, अब हो गए बीमार। दुःखी हो गए, कष्टमें आ गए, अरे तेरी तो कुछ बात भी नहीं है। तेरा तो निस्तरंग चैतन्यस्वरूप है। बातके पीछे लोग अपना घर भी बरबाद कर देते हैं।

परकी हठमें बरबादी—गुरु जी सुनाया करते थे कि टीकमगढ़में एक सुनारिन थी। सो उसने बहुत हठ किया हाथमें पहिनने वाले सोनेके बखौरे बनवाने के लिए। वही बखौरे जो टेढ़ी गुड़ी करक बनाए जाते हैं। बहुत दिन तक प्रस्ताव चलता रहा और वह प्रस्ताव भी भोजन सभामें करती थी। जब सुनार भोजन करने आए तभी अपना प्रस्ताव वह सुनारिन रखे। बहुत दिनोंके बाद उसने कुछ कर्ज करके, कुछ और दंदफंद करके सोनेके बखौरे बनवा ही दिए। अब देहातोंमें मोटी तो धोती पहिनें और सारा अंग धोतीसे ढक कर चलें। यह सब पहिलेकी रिवाज थी। नाइलोन तो समझते भी न थे। बरसातमें जूता और चप्पल पहिनकर कोई स्त्री गाँवमें निकलती ही नहीं थी, यदि बरसात हो तो सूप रख लें सिर पर, पर छतरी नहीं लेती। यह पुरानी सभ्यताकी बात थी। तो बन तो गये

बखौरे, पर धोतीसे ढके रहे। तो किसी स्त्रीने यह नहीं कहा कि तुम्हारे बखौरे बडे अच्छे हैं। अब उसके मनमें बड़ा रंज रहा कि लडभिड़कर तो मुश्किलसे बखौरे बनवाये और कोई यह नहीं कहती कि बडे अच्छे बने है बखौरे। सो उसके मन ही मन बड़ा गुस्सा उठा। एक दिन इतना तेज गुस्सा आया कि अपने ही घरमें आग लगा दी। होता है ऐसा। जब गुस्सा आता है तो घी का डबला हो तो उसे भी पटक दिया जाता है। चाहे पीछे खबर आये कि इसमें तो पौने दो सेर घी निकल गया। जब आग लग गयी तो उसे ख्याल आया कि अरे यह तो मेरा मकान ही जल जायेगा। तो अब हाथ पसार-पसार कर लोगोंको बुलाने लगी। अरे भैया रे दौड़ो, कुवेसे पानी ले आवो, बाल्टी वह रक्खी, उनके यहासे रस्सी ले लो। जल्दी आग बुझावो। जब हाथ फैला-फैला कर कह रही थी तो एक स्त्रीको उसके बखौरे दिख गए। अब वह कहती है कि अरी जीजी ये बखौरे कब बनवाये ? ये तो बडे सलोने है। तो वह सुनारिन कहती है कि अरी रॉड ! पहिले से ही इतने वचन बोल देती तो अपने घरमें आग काहे को लगाती ? तो देखो इतनी बात रखनेके लिए घरमें आग लगानी पड़ी।

आत्महितके आचरणकी ओर ध्यान—मोही जीवको बातका भी कितना विचित्र रोप लगा है ? मेरी बात नहीं रही। अहा, अब तो मरते हैं बातके पीछे और मरकर अगर बन गए पशु, तो वहाँ क्या बात रख लेंगे ? तो सुअवसर यदि पाया है तो इतनी नम्रता आनी चाहिए कि दूसरेका गौरव रखें। जो दूसरोंका गौरव रखेगा वह सुखी रहेगा और दूसरे लोग भी उसका गौरव करेंगे। वचन ही तो मनुष्यको एक श्रेष्ठ वैभव मिला है जिससे कि इसका जीवन सुखमय रह सकता है। इससे चूके तो दु खमय रह सकता है, बुरा कहला सकता है, अच्छा कहला सकता है। इतना श्रेष्ठ जन्म पाकर हमारी प्रवृत्ति क्रोध, मान, माया, लोभ इन चार कषायोंसे रहित यदि न हो तो मंद तो हो। किसी दूसरेसे हम छलका व्यवहार न करें, माया न रखें। दूसरे पता ही न पाड़ सकें कि आखिर इनके मनमें क्या है ऐसे दगा, धोखा, छल आदि इतने कठिन परिणाम होते हैं कि जब लोकमें विदित हो जाता है कि यह छल और धोखा देने वाला पुरुष है, तब उसका जीवन सुखमय नहीं रह पाता है।

निश्छलताका संकल्प—एक बार एक मनुष्य जंगलमे जा रहा था, उसे मिल गया एक सिंह। तो डरके मारे वह एक पेड़ पर चढ़ गया। पेड़ पर तो चढ़ गया किन्तु उस पेड़पर पहिले से बैठा था रीछ। अब वह मनुष्य रीछ और सिंह दोनोंके बीच पड़ गया। बहुत डरा। तो रीछ कहता है कि रे मनुष्य तू मुझसे डर मत। तू किसी प्रकार इस मुझकी शरणमें आया

है तो मुझसे भय मत कर, सुखपूर्वक रह। वह मनुष्य सुखपूर्वक बैठ गया। तो थोड़ी देरमें रीछको नींद आने लगी। तो उस डाल पर वह सोने लगा। इतनेमें सिंह मनुष्यसे कहता है कि ऐ मनुष्य! रीछ मनुष्य बड़ा खतरनाक जानवर है--जानवर जानते हो किसे कहते हैं? जान मायने ज्ञान और वर मायने श्रेष्ठ। जिसका ज्ञान बड़ा श्रेष्ठ हो उसका नाम है जानवर। यह रीछ बड़ा खतरनाक जानवर है। यह अभी सोया हुआ है। जब हम नीचेसे चले जायेंगे तो यह तुम्हें जिन्दा न छोड़ेगा। यह अभी सो रहा है, इसे तुम नीचे ढकेल दो, तो तुम बच भी जावोगे। मनुष्यकी समझमें यह दाव अच्छा रुचा। सो मनुष्य ढकेलने लगा। रीछ जग गया, रीछ गिरा तो नहीं किन्तु सोचा है कि यह मेरी शरणमें आया है। मैं इसे धोखा नहीं दे सकता हूं। मैंने इसे वचन भी दिया है, सो क्षमा किया। अब थोड़ी देर बाद मनुष्यको नींद आने लगी, सोने लगा। अब सिंह रीछसे कहता है कि ऐ रीछ! अब यह मनुष्य सो रहा है, बड़ा ही अच्छा है, इसे नीचे ढकेल दो, क्योंकि अभी नीचे हम हैं इसलिए नहीं बोल रहा है, हमारे न रहने पर यह मनुष्य तुझे न छोडेगा, इसलिए इस सोते हुए मनुष्य को तू ढकेल दे तो तेरी जान बच जायेगी। तब रीछ कहता है कि मैंने इसे शरणका वचन दिया है, इस कारण मैं इसे कैसे ढकेल सकता हू? अब सिंह कहता है कि ऐ रीछ! देख तू बड़ा वफादार बना हुआ है इस मनुष्यका। यह मनुष्य तुझे सोते हुएमें ढकेल रहा था जिससे तू नीचे गिर जाय और सिंह खा ले। अब भी तू होशमें आ और इस मनुष्यको नीचे पटक दे। तो रीछ कहता है कि यह मनुष्य चाहे मुझे दगा दे दे, उसकी बात उसके साथ है पर हम पशु जो वचन दे चुके हैं, सो उसको नहीं उलट सकते। हम इस मनुष्यकी रक्षा ही करेंगे।

ज्ञानप्रकाश और निरहङ्कारता -भैया! आप समझे कि महत्ता उसीमें है जो सब पर रक्षाकी दृष्टि रखता है। खुद ही आरामसे जीकर रहे, खुद विषयभोगका आराम भोगे, दूसरेकी परवाह न रखे तो उसको न स्वयं का श्रद्धान है, न अन्य पुरुषोंकी दृष्टिमें उसकी महत्ता है। सो भैया सबको एक चैतन्यस्वरूप ही जानकर सबका गौरव रखें, सन्मान रखें, अपनी तो चाहे नीची करालें पर दूसरेको ऊँचा ही उठाये रहें, ऐसी बात यदि सबमें आ जाती है तो फिर क्लेशका कोई काम नहीं है। अभिमानी पुरुषका दृष्टांत बताया है कि जैसे कोई पहाड़ पर चढ़ा है, पहाड़ तो जाने दो, ६, ७ मंजिलका मकान हो और ऊपरकी मंजिल पर चढा हो तो वह नीचे वालेको बहुत छोटा देखता है और यह नीचे रहने वाला पुरुष उस ऊपर चढ़े हुए को बहुत छोटा देखता है। उस एक को अनेक छोटे देख रहे हैं

और वह ऊपर चढ़ा हुआ पुरुष भी अनेकको छोटा देख रहा है। वह नीचे उतर आए और इस नीचे रहने वालों मे मिल जाय तो न नीचे रहने वाले उसे छोटा देखेंगे और न वह ऊपर रहने वाला इन्हें छोटा देखेगा। इसी तरह जब हम यहाँ दूर-दूर रहा करते हैं, स्वरूपको भूल जाते हैं और ऐबोंको दृष्टिमें रखते हैं तब हम बडेको छोटा देखते हैं, बड़ा मुझे छोटा देखता है। जरा स्वरूपके मार्गसे सब सबमें समा जायें तो वहा कौन छोटा और कौन बड़ा है ? ऐसी सही दृष्टि हो तो वहा आनन्द बरषेगा।

निश्चयनय और वस्तुस्वातन्त्र्य—परद्रव्यका और आत्मधृत्त्वका किसी भी प्रकारका सम्बन्ध नहीं है। प्रदेशको देखिये—प्रदेश गुणात्मक हैं। गुण-परिणमन प्रदेशसे बाहर नहीं होना। इस प्रकार अखण्ड द्रव्य, क्षेत्र, काल भावकी दृष्टिसे निहारो तो प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र अपने अपने स्वरूपास्तित्व में है। यह स्पष्ट विदित होगा कि एक द्रव्यका दूसरे द्रव्यके साथ रंच भी सम्बन्ध नहीं है। फिर कर्ता कर्मका सम्बन्ध कैसा ? न कोई द्रव्य किसी द्रव्यका स्वामी है, न अधिकारी है, न सहयोगी है, न कर्ता है। निश्चयकी दृष्टिका आलम्बन करके यह सब प्रकरण सुनिये। जहां उपचरित व्यवहार में अनेक द्रव्यों पर दृष्टि रहती है वहा कर्ता कर्म सम्बन्ध भी मालूम होता है और एक दूसरेका अधिकारी है यों भी दिखता है, किन्तु निश्चयदृष्टि के मार्गसे देखें तो कर्ता कर्म तो दूरकी बात है, एक पदार्थ दूसरे पदार्थका सहयोगी भी नहीं है। प्रमाण दृष्टिसे कहें तो यह कह सकेंगे कि अमुक उपादान पर उपाधिका निमित्त पाकर अपने ही प्रभावसे प्रभाव वाला बन गया है। निमित्तका प्रभाव उपादानमें नहीं गया, किन्तु उपादान ही अनुकूल पर उपाधि का निमित्त पाकर अपने ही प्रभावसे प्रभावित हो गया।

प्रभावका परिचय—भैया ! प्रभाव कहते हैं परिणमनको और प्रभाव का अर्थ क्या है ? प्रभाव शक्तिका नाम नहीं है। शक्ति नित्य होती है, कोई भी प्रभाव नित्य होता है क्या ? प्रभाव द्रव्यका नाम नहीं है, प्रभाव पर्यायका नाम है और वह प्रभाव नामक पर्याय जो कि किसी वस्तुमें हुई है, उपादानमें हुई है वह प्रभाव नामक पर्याय उपादानकी है या निमित्त की है ? निमित्तभूत वस्तुका प्रभाव निमित्तभूत वस्तुमें ही है, जिसका जो प्रभाव है वह उसमें ही रहता है। तब यह सुविदित होता है कि ऐसा ही परस्परमें निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध है कि योग्य उपादान अनुकूल निमित्त पाकर स्वय की परिणतिसे अपनेमें प्रभाव उत्पन्न करता है। यह हुआ निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध, पर कर्ता कर्म कहा रहा ? जब एक द्रव्यका

दूसरे पदार्थके साथ कर्ताकर्म सम्बन्ध भी नहीं है तो फिर कर्तृत्व कैसे मान सकते हैं ? इसी बातको अब अगली गाथामें कह रहे हैं।

ववहारभासियेण दु परदव्वं मम भणंति अविदियत्था।
जाणंति णिच्छयेण दु ण य मह परमाणुमवि किंचि ॥३२४॥

व्यवहारभाषाका प्रयोग—व्यवहारके वचनों द्वारा अविदित परमार्थजन तो कहते हैं कि परद्रव्य मेरे हैं और जो निश्चय करके जानते हैं वे कहते हैं कि परमाणुमात्र भी मेरा नहीं है। यह अर्थ हुआ आत्मख्यातिके रचयिता अमृतचन्द्र सूरिने जो गाथा की है और जयसेनाचार्यने अविदियत्थाकी जगह विदियत्था कहा है जिससे यह अर्थ होता है कि पंडितजन, तत्त्वज्ञानी पुरुष व्यवहारभाषामें ही ऐसा कहते हैं कि परद्रव्य मेरे हैं। निश्चयसे तो वे जानते ही हैं कि परमाणुमात्र भी कुछ मेरा नहीं है। जैसे अभी आपका सिरदर्द हो और आपको अमृतांजन मंगाना है, तो क्या आप ऐसा कहेंगे कि असाता वेदनीयके उदयका निमित्त पाकर शरीर नो कर्ममें कुछ रुधिरकी रुकावट होनेके आश्रयसे इस आत्मामें पीड़ाका परिणमन उपभोगमें हो रहा है, सो इसके विनाशके लिए उसके निमित्त का निमित्तभूत अमृतांजन ला दीजिए। कोई इतना कहेगा क्या ? अरे इतना कहनेका उसके पास अवसर ही नहीं है। सीधा कह देगा कि भाई सिरमें दर्द है अमृतांजन ले आवो। तो कोई निश्चय एकांती यह कह बैठे कि तुम बहुत झूठ बोलते हो, अरे तुम्हारे सिर कहा है, तुम्हारे दर्द कहां है और अमृतांजन दर्दको कैसे मिटा सकेगा ? क्या एक वस्तु दूसरे वस्तु का कुछ करता भी है। अरे सारी बातोंका जो आशय है उसे जान जावो। कि कहनेको तो सभी कहते हैं।

व्यवहारवचन और यथार्थ ज्ञान—भैया ! अभी आपसे पूछें कि यह लड़का किसका है ? तो आप कहते हैं कि महाराज आपका ही है और हम पकड़कर ले जायें कि अब घरमें न रहने दो, हमारे संगमें कर दो, इसे पढ़ाकर हितका अवसर देंगे क्योंकि हमारा ही तो लड़का है। तो न देंगे, क्योंकि आप तो व्यवहार भाषामें कह रहे थे। किन्तु ऐसी ही आपकी जानकारी हो, ऐसी बात नहीं है। क्या आप जान रहे हैं कि यह लड़का त्यागीका है ? नहीं जान रहे हैं और कह रहे कि साहब आपका ही बच्चा है, आपका ही मकान है। यहां तो इतनी गनीमत है कि अगर स्त्रीको पूछें कि यह किसकी स्त्री है ? तो यह कोई न कह देगा कि यह स्त्री त्यागी जी आपकी है। भला वैभव पूछें, धन पूछें तो कह देते हैं कि आपका ही है तो यह व्यवहार भाषा ही हुई और आपका जो ज्ञान है, सो ही है।

व्यवहारमें आप और तरह बोल रहे हो।

केवलका ज्ञान—एक बात विचारनेकी है कि केवलज्ञान क्या जानता है? तो एक शब्दार्थ ही अगर तको तो अर्थ मिलेगा केवलज्ञान केवलका ज्ञान करता है, अर्थात् केवल एक एक जितने भी द्रव्य हैं उन सब द्रव्यो का ज्ञान करता है। अभी इस मार्गसे यदि जावो तो भगवान न मकान देखता है और न कोई समानजातीय या असमानजातीय पर्यायको निरखता है, उनके तो समस्त केवल एक-एक समस्त पदार्थोंका ज्ञान है, और वही परमार्थ सत् है और उसमें होने वाला जो कुछ परिणमन है वह शेप सब व्यवहार है।

व्यवहारभाषाका लक्ष्य—व्यवहारकी भाषासे पण्डितजन 'ये परद्रव्य मेरे हैं' ऐसा बोलते हैं परन्तु निश्चयसे वे जानते हैं कि परमाणुमात्र भी मेरा नहीं है। अभी कुछ शब्दोंकी संस्कृत बनायी जाने लगी है तो किन्हीं किन्हींके शब्द तो बड़े झटपट बनाए जाते हैं। अब जैसे एक शब्द है चाय। कोई जाकर कहे कि हमें चाय दो। तो चायकी संस्कृत जरा अच्छी बनावो। कुछ बात न छूटे और पूरा अर्थ आ जाय। तो एक ने बनाया कि 'दुग्धशर्करामिश्रित विशिष्ट पत्रतप्तरस देहि।' इतना बोलनेमें तो कहो गाड़ी छूट जाय। व्यवहार भाषामें बोलना अनर्थ नहीं है, मगर ज्ञानमें यह बात आ जाय कि यह परद्रव्य मेरा है तो अनर्थ है। यों तो व्यवहारभाषामें क्या-क्या नहीं कहते?

व्यवहारभाषाके व्यवहार और उसके प्रयोजन—जैसे धर्मशालामें आप दो दिनको ठहर जाएँ और जिस कमरेमें ठहरें तो आप लोगोंसे कहते हैं कि चलो हमारे कमरेमें, चलो हमारी धर्मशालामें। लो, अब यह आपका कमरा हो गया। तो क्या ज्ञानमें यह बात है कि मेरा कमरा है? नहीं है। और व्यवहारभाषामे यह बात बोल रहे हैं कि यह मेरा कमरा है। घी का डिब्बा। क्या आपके ज्ञानमें भी यह बात बसी है कि घी से रचा हुआ यह डिब्बा है? नहीं। आप जानते हैं कि यह टीनका डिब्बा है और इसमें घी रखा है। जिस लोटेसे आप टट्टी जाया करते हैं—आप बोलते हैं कि यह टट्टीका लोटा है, यह पीनेका लोटा है, यह चौकेका लोटा है। आपके ज्ञानमें क्या यह रहता है कि यह टट्टीका लोटा है? नहीं। आप तो जानते हैं कि यह पीतलका लोटा है, इसको सण्डासमें ले जाया जाता है, इसलिए इसका नाम टट्टीका लोटा है। अब जल्दी जल्दीमें क्या बोलें? क्या यह बोलें कि देखो जिस लोटेके आधारमें पानीको लेकर सण्डासमें लाया जाता है वह लोटा दो। क्या कोई इतना बड़ा वाक्य बोलता है? नहीं। तो व्यवहारभाषा किसी मर्मको संक्षेप करनेके लिए होती है और निश्चयका

ज्ञान उससे भी अति संक्षेपको लिए हुए होता है।

व्यवहारका प्रयोजन निर्वाह—भंगी लोग मकानोंको लिए रहते हैं उनके घास साफ करनेके लिए। तो वे भी कहते हैं कि मेरे ये ७ मकान हैं जो जो बड़ी हवेली खड़ी है ना, भंगी कह रहा है कि ये मेरी है। तुम्हारी कितनी हवेली हैं ? अजी हमारे १५ हवेली हैं, सेठजी के कितनी हैं ?-सेठ जी के एक ही हवेली है और उनके १०, १५ और जरूरत पड़े तो हवेली गिरवी भी रख देते हैं। दूसरे भंगीको २५) में दे दिया बिना ब्याजके। जब चुका दे २०) तो अपनी हवेली ले लेते हैं। तो प्रयोजनवश व्यवहार भाषामें कुछसे कुछ बोला जाता है। पर पंडित जन निश्चयकी बातसे अनभिज्ञ नहीं होते हैं।

जह कोवि णरो जंपइ अम्हं गामविसयणयररट्टं।
ण य हुंति तस्स ताणि य भणइ य मोहेण सो अप्पा ॥३२५॥

परमें आत्मीयताका भाषण—जैसे कोई मनुष्य बोलता है कि यह गाँव देश, नगर, राष्ट्र मेरा है, यह केवल मोहसे बोलते हैं, वास्तवमें ये मेरे कुछ नहीं होते हैं, जिस गाँवमें रहते हैं उस गाँवको कहते हैं कि यह मेरा गाँव है। आपका गाँव कौनसा है ? हमारा गाँव भिण्ड है और चाहे भिण्डमें किरायेमें भी अच्छी जगह न मिली हो और बना डालते हैं कि यह भिण्ड मेरा गांव है। जरा और दूर गये, दूसरे प्रान्तमें पहुच गये, आपका कौन सा प्रान्त है ? हमारा मध्य प्रदेश है। और दूर पहुच गये, मानो विलायत में पहुंच गए। आपका कौनसा देश है ? हमारा हिन्दुस्थान देश है। तो प्रयोजनवश व्यवहारमें बोला जाता है, पर वस्तुतः कोई परमाणुमात्र भी द्रव्य मेरा नहीं है।

मोहमें उदारता व अनुदारता—भैया ! पहिले समयमें था इतना गौरव कि गांवकी ही लड़की कहीं ब्याही हो और उस बिरादरीका न हो तो भी उस गांवमें पानी न पीवें किसीके घरका। कि अरे इसमें फलानेकी लड़की ब्याही है। कितनी आत्मीयता थी, तो आत्मीयता तो बुरी चीज है ? तो आज अच्छा हो गया जमाना कि भाईकी भी लड़की हो तो भी गौरव नहीं है। भाईकी लड़की है हमारी नहीं है तो तब था मनुष्यका उदार दृष्टिकोण, आज है उसका एक सकुचित दृष्टिकोण। बोला जाता है सब व्यवहारमें। यह सब मोहका प्रताप है और उस मोहके प्रतापमें सब मस्त हैं। सो कोई किसीको बुरा नहीं कहता। सब सबको भला देखते हैं।

चतुराईका भ्रम—भैया ! जो जितनी चतुराई खेले, जितना धनी बन जाय, राज्यकी सरकारमें अपनी पैठ जमा ले, जो चतुराई की बातें करे उसे लोकमें चतुर बोलते हैं। और कोई सीधा सादा सत्यता पर डटा

हो, अपने आत्महितकी दृष्टिमें रहता है, यह लोककी दृष्टिमें कम अक्ल वाला है। यों बताया जाता है। पर किसी की परवाह क्या करना ? अपना आनन्द जिसमें होता हो वही काम करना है। खूब देख लो, स्वाधीन ध्रुव आनन्द जिस पदमें मिले उस पदका यत्न करना चाहिए। तो दृष्टान्तमें बताया गया है कि कोई पुरुष ग्रामको, देशको, नगरको और राष्ट्रको कहता है कि मेरा है, पर वास्तवमें वे तो सब राज्यके हैं, हमारे नहीं हैं। यह तो केवल मोहसे ही कह रहा है कि यह मेरा है।

ग्राम नगरादिकका विश्लेषण—ग्राम किसे कहते हैं ? जो झाड़ियोंसे घिरा हो। जैसे छोटा गाव देखा होगा कि पासमें ही झाड़ियां लगी हैं, काटे लगे हैं, पास ही चारों ओर से खलिहान लगा है, वास्तवमें छोटीसी बाउण्डरीसे घिरा हो, झाड़ियोंसे ढका हो उसे गाव बोलते हैं। और देश वह कहलाता है जिसमें अनेक गाव होते हैं अथवा जिसमें अनेक गाव समा जाते हैं वह देश कहलाता है। नगर वह जिसमें सभ्य नागरिक रहते हैं और राष्ट्र सब देशोंका जो समूह है वह राष्ट्र कहलाता है। इन सबको यह मोही जीव मोहमें कहता है कि मेरा है, किन्तु है नहीं, ऐसा बताकर अब दृष्टान्त कहते हैं।

एमेव मिच्छदिट्ठी णाणी णिस्संसयं हवइ एसो।
जो परदव्व मम इदि जाणंतो अप्पयं कुणइ ॥३२६॥

मिथ्यादृष्टिके अनङ्गका अङ्गीकरण—इसी प्रकार मिथ्यादृष्टि जो पुरुष होता है वह ऐसा ही जानकार होता है जैसा कि दृष्टातमें बताया है जो परद्रव्यको यह मेरा है ऐसा अपना बनाता है वह ज्ञानी, वह आत्मा मिथ्यादृष्टि होता है। कहते हैं ना अगीकार करना, स्वीकार करना। अगीकारका अर्थ है कि जो अग नहीं है उसको अगरूप बनाना। जो मेरा अवयव नहीं है, मेरा देह नहीं है, मुझसे भिन्न है उसको अपना अग बना लेना उसका नाम है अगीकार। और स्वीकारका अर्थ है, जो स्व नहीं है उसको स्व करना। स्व की कल्पना करना, इसका नाम है स्वीकार। तो यह ज्ञानी पदार्थ अर्थात् आत्मा सबसे निराला पदार्थ है, वह परद्रव्योंका कर्ता नहीं है, किन्तु विकल्प करता है कि यह मेरा है। वस्तुत परमाणु मात्र भी इसका नहीं है। मोटे रूपमें सब दिखता भी है, जो होता कुछ तो साथ ले जाते ना मरने पर। तो मरने पर तो यह देह तक को भी नहीं ले जाता है।

मोही का हाल—कल एक भाई बता रहा था कि हम लोग ऐसे हैं कि जिन्दा भी घर नहीं छोड़ते और मरकर भी घर नहीं छोड़ना चाहते। जब हम मरकर भी घर नहीं छोड़ना चाहते तो कुटुम्बी लोग हमको बांध

कर मरघट ले जाते हैं, कि तू मरकर भी नहीं घर छोड़ना चाहता है। जिन्दा नहीं छोड़ा न सही, पर तू मरकर भी घर नहीं छोड़ता है। यह बात है। जिन्दामें तो कुछ थोड़ासा ख्याल भी कर लिया जाता है, इसलिए बोल देते हैं कि हम घर छोडे देते हैं। यह चाहे मात्र स्त्रीको डराने भरके लिए हो। कहते हैं कि अब हम होते हैं विरक्त, पर मरने पर भी यह घर नहीं छोड़ना चाहता है तो लोग इसे जबरदस्ती घसीट कर बांधकर ले जाते हैं। यह एक कविका अलकार है।

आत्मवैभवकी दृष्टि—भैया ! ये सुख दुःख क्या चीज हैं? जहां अपनेको माना कि मैं सबसे न्यारा केवल ज्ञानानन्दमात्र हूं। मुझमें किसी का भार नहीं है। दूसरेका उदय जैसा है उसके अनुसार उनकी बात चलती है। मैं तो एक ज्ञानानन्दस्वाभावी हूं, अपनेमें परिणमने वाला हू। हिम्मत करे कोई ऐसी। अपने आपको अकिञ्चन सुरक्षित माने, अपनेको अपना ले तो कोई संकट नहीं रह सकता। २४ घंटेमें कुछ क्षण तो अपनी ऐसी दृष्टि रखनी चाहिए, अन्यथा रात दिनकी बेचैनी व अज्ञानता बढ़ाते जावोगे और फिर अपनी सावधानीका कोई अवसर न पावोगे। यह मदिरका आना और सामायिकका करना आदि ऐसा ध्यान बनाने के लिए ही है, ऐसा ध्यान बने कि मेरा कहीं कुछ नहीं है। मैं तो ज्ञानानन्दके अनन्त वैभवसे भरपूर हूं।

निर्भारताके दर्शनका यत्न—भैया ! किसका भार मानते हो सब जीवों का अपना-अपना उदय है। पुत्र कुपूत तो क्यों धन संचै, पुत्र सपूत तो क्यों धन संचै। और धन वाली बात तो बड़ी बेढब बात है। आज क्या है और कल क्या हो जायेगा? लोग अपने पुत्र पौत्रोंके ख्यालसे धनका सचय बनाते हैं। यदि पुत्र कुपूत बन जाय तो आप कितना ही धन जोड़ लें, वह चंद दिनोंमें ही बरबाद कर देगा। और पुत्र सपूत है तो तुम धन संचय न भी करो तो भी उसका पुण्य पिता उसका बुद्धिबल उसका सहाय होगा और वह कमाई कर लेगा। सबका अपना अपना भाग्य लगा है, कोई किसीके भाग्यका अधिकारी नहीं है।

दो फूल साथ फूले किस्मत जुदी जुदी है—दो भाई हैं, एक भाई कुछ बनता है; एक भाई कुछ बन जाता है। दो फूल एक साथ फूले किन्तु उनकी किस्मत जुदी-जुदी है। एक तो वहीं नीचे पड़कर सड़ जाता है और एक बड़े पुरुषों के गलेमें शोभा देता है। दोनों एक एक फूल एक पेड़में फूले, मगर उनका जुदा जुदा भाग्य। यह तो पुण्यकी कोई बात नहीं है कि फूल अगर गलेमें पड़ गया तो उसके पुण्यका उदय है। उनका पुण्य पाप उनके अनुभवके अनुसार होता है और यहां देखो तो पुण्यके उदय तो प्रायः दुःख देनेके

लिए आते हैं। गुलाबके फूलोंको देखो तोड़ लिए जाते हैं। नीले-नीले रंग के फूल जो खेतोंमें खड़े रहते हैं उन्हें कोई सूंघता नहीं, क्योंकि गुलाबके फूलके पुण्यका उदय है, सो वह असमयमें ही तोड़ लिया जाता है, और वे नीले नाकके आकारके जो फूल हैं उन्हें कोई देखता भी नहीं है। तो क्या पुण्य और क्या पाप? अपना भाव सभाला हुआ है तो उसमें हित है और अपना वर्तमान भाव गिरा हुआ है तब उसमें अहित है।

विपरीत आशय—अज्ञानी जन ही व्यवहारमें विशेष मोही बनकर परद्रव्योंको 'यह मेरा है' इस प्रकार देखते हैं परन्तु ज्ञानी जीव जो कि निश्चय स्वरूपके दर्शनसे प्रतिबद्ध हुए हैं वे परद्रव्यके एक अणुमात्रको भी 'मेरा है' इस प्रकार नहीं देखते हैं, इस कारण जैसे यहां लोकमें कोई व्यवहारमें विमूढ़ हुआ पुरुष जो राज्यके याने परके गावमें रहने वाला है वह इस प्रकार अपना विश्वास करता है कि यह मेरा ग्राम है तो ऐसा देखता हुआ वह मिथ्या दृष्टि वाला है। इस ही प्रकार यदि ज्ञानी भी किसी प्रकार व्यवहारमें विमूढ़ होकर परद्रव्योंको यह 'मेरा है' इस प्रकार देखे तो वह भी चूंकि निःशंक होकर परद्रव्यको आत्मरूप किए है इस कारण मिथ्यादृष्टि होता है। जो परको निज जाने और निजकी खबर ही न रखे वही जीव मिथ्या आशयमें आता है। इस कारण इस तत्त्वको जानता हुआ पुरुष सबकोही यह परद्रव्य है, मेरा नहीं है, ऐसा जानकर, लौकिक और श्रवण दोनों में ही जो परद्रव्यमें कर्तृत्वका व्यवसाय होता है वह उनके सम्यग्दर्शन रहित होनेके कारण होता है, ऐसा निश्चय करो।

वस्तुकी स्वचतुष्टयमयता—जो पदार्थ जैसा है, जितना है उतना न समझकर अधिक समझना, कम समझना सो तो विपरीत आशय है। प्रत्येक पदार्थ अपने द्रव्य क्षेत्र काल भाव रूप है, स्वकीय द्रव्य क्षेत्र काल भावका कोई पदार्थ उल्लंघन नहीं करता। जैसे यहीं देखलो, चौकी है, तो यह अपने गुण पिण्डमें ही है, इसका जितना विस्तार है उतनेमें ही है। इसका जो वर्तमान परिणमन है उसमें ही है और जो इसकी शक्ति खासियत है उतनेमें ही है।

देखो, यह प्रकाश किसका—अच्छा यहां जल रही बिजलीका लट्टू बतावो कितना बड़ा है? होगा कोई चार छः अंगुलका गोल। इसके भीतर जो तार जल रहे हैं जितने पतले तार हैं, उतनी ही बड़ी है यह बिजली। उससे बड़ी नहीं है। तो अपना तार मात्र जो यह प्रकाशक बिजली है इसका द्रव्य कितना हुआ? जितना कि वह तार है, जगमग करता हुआ, जलता हुआ तार मात्र ही है, लट्टू है। इसका विस्तार कितना है? जितना जलते हुए तारोंका विस्तार है और परिणमन उन

तारोंका ही है और उसकी शक्ति उसकी खासियत उन तारोंमें ही है। ध्यान में आया। और यह जो इतना प्रकाश फैला है यह किसका है? यह प्रकाश जो फैला है चौकी पर वह बिजलीका नहीं है, इस पुस्तक पर जो प्रकाश है वह प्रकाश पुस्तकका है, बिजलीका नहीं है क्योंकि अभी तो तुमने कहा था कि जितना तार है बस उतनी भर बिजली है। उसकी सब चीजें बस तार भरमें रह गयीं। तारसे आगे उसका कुछ नहीं है। तारसे आगे उसका स्पर्श नहीं है, रूप नहीं है, गंध नहीं है, प्रकाश नहीं है। फिर यह प्रकाश किसका है? जिस चीज पर प्रकाश है उस ही चीजका प्रकाश है।

बतावो यह लम्बो जगमग और यह छाया किसकी—इस प्रकाशक का निमित्त पाकर यह वृक्ष भी प्रकाशित हो गया, यह जो आपके सामने शीशमका पेड़ है प्रकाशित है और शीशमके पेड़ और बिजलीके बीचमें प्रकाश नहीं है और यदि है प्रकाश तो वह रास्तेमें जो सूक्ष्म पुद्गल मैटर पडे हुए हैं उनके हैं। कुछ अजबसा न मानना, अभी सब बातें सामने आयेंगी। इस माइकको देखो इस वृक्ष पर छाया है। दिख रही है ना, तो वह जो छाया है वह किसकी है? यह माइककी है ना। इसका प्रकाश कितना है जितना कि यह माइकका डंडा है। लगभग तीन फिट और इसका क्षेत्र कितना है? उतना है। इसका प्रदेश पर्याय प्रभाव सब उतनेमें ही है जितने में यह डंडा है और इसकी खासियत विशेषता गुण शक्ति उतने में ही है जितने में यह डंडा फैला हुआ है। तो इस डंडे की और माइककी कुछ चीज बाहर नहीं है क्या? कुछ नहीं है। और यह छाया? यह छाया उस वृक्षकी ही है अथवा पत्तोंकी ही है जो अंधेरा रूप परिणम रहे हैं। बात यह हुई कि इस माइकका निमित्त पाकर वे पत्ते छायारूप बन गए हैं, सो चूंकि निमित्त पाकर ही बन पाये हैं इस कारण व्यवहारमें उसे माइक की छाया कहते हैं।

कर्तृकर्मत्वभ्रमबुद्धिका मूलमे मूल बेचारा निमित्तनैमित्तिक भाव—इसी तरह यह जो प्रकाश फैला है तो यह प्रकाश इस बिजलीका निमित्त पाकर फैला है। इसलिए लोग इस बिजलीका ही प्रकाश बताते हैं, पर प्रत्येक द्रव्य अपने ही द्रव्य क्षेत्र काल भावमें है। हम आपको कुछ गालीके शब्द बोल दें और आप गुस्सा हो जाएं तो बतावो यह गुस्सा किसका है? तो व्यवहार विमूढ़ कहेंगे कि यह गुस्सा गाली देने वाले का है। यह गुस्सा गाली देने वाले ने कराया है। गाली देने वाला जितना है उतने को देखिये। गाली देने वालेकी सब बातें द्रव्य गुण पर्यायें द्रव्य क्षेत्र काल भाव इस गाली देने वालेमें ही समाया हुआ है, उससे बाहर नहीं है। हुआ क्या, गाली देने वालेका निमित्त पाकर इसका क्रोध परिणमन हुआ

है सो कर्ता कर्मका जो जगतमें भ्रम फैला है उसका कुछ मूल नींव बन सकता है तो निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध बन सकता है। किसी बातसे यह बड़ा भ्रम बढ़े, वह बात है निमित्तनैमित्तिक भाव।

रागद्वेषके नशेमें सुधकी बिसर—समस्त परद्रव्य स्वतंत्र हैं। वे अपने अपने स्वरूपमें रहते हैं। किसीका कोई कुछ नहीं लगता। जब रिश्तेदारों से आपसमें झगड़ा हो जाता है तो कहते हैं कि यह रिश्तेदार हमारा नहीं है। होगा कोई। जब भाई भाई में बिगड़ जाती है तो कहते हैं कि यह हमारा भाई नहीं है, हम तो अकेले ही हैं। तो बिगाड़ पर तनिक सुध आती है। सो सुध नहीं आती। पहिले रागके नशेमें बोलता था, अब द्वेषके नशेमें बोलता है। सुध अभी नहीं आयी।

सम्यक् परिज्ञानके मोहविनाशकी साधकता—भैया! यथार्थ ज्ञान ही मोहको मिटाता है। भगवानकी भक्तिमें भी मोहको दूर करनेकी साक्षात् शक्ति नहीं है। प्रभुका अनुराग भी अब हमें अपने स्वरूपकी याद दिलाकर मोह मिटानेमें कारण बना तो यह इन्डाइरेक्ट हुआ, पर भक्तिरूप परिणाम अनुरागरूप परिणाम मोहको मिटाने वाला साक्षात् नहीं होता। मोहको मिटाने वाला भेदविज्ञान ही होता है। हम आदर्शरूप भगवानकी स्वच्छताका स्मरण करके कर्म और रागादिक विभावोंसे पृथक् अपने आपके आत्मस्वरूपका स्मरण करते हैं और मोक्षमार्गमें बढ़ते हैं। इसको मार्गमें ले जाने वाला हमारा ज्ञायकस्वरूप है।

बुद्धिशब्दार्थात्मकता—भैया! देखो तीन तरहकी बातें होती हैं—शब्द अर्थ और ज्ञान। जैसे चौकी तीन तरहकी है—शब्द चौकी, अर्थ चौकी और ज्ञान चौकी। थोड़ा दार्शनिक विषय है, सावधानीसे सुनने पर सब समझमें आता है। अपनी बात समझमें न आए और सोना, चाँदी, कपड़ा पैसा, इनकी बातें समझमें आएँ यह तो हम नहीं मानते। सोना चाँदी कपड़ेकी समझमें भी आपकी ही समझ आपमें रही है। उस जड़ पदार्थसे समझ निकल कर आपमें नहीं आनी है। अपने निज तत्त्वकी पहिचान तो समझमें यों जल्दी आनी चाहिए कि यह ज्ञान और ज्ञेय दोनों निकट हैं। वहा तो ज्ञानसे ज्ञेय दूर है। तीन प्रकारकी चीजें हैं। शब्द चौकी क्या? चौ और की। लिख दिया हाथसे चौ की। क्या हुई चौकी। कागज पर लिखकर आपसे कहेंगे कि यह क्या है? तो आप क्या कहेंगे? चौकी। अरे चौकी है यह तो इस पर थाली धरकर खा लो। क्योंकि भोजनके लिए तुम्हें चौकी चाहिए थी सो तुम्हें दे दिया। अरे तो यह शब्द चौकी है, यह काम न आयेगी। आपको दूध चाहिए तो दूध कहांसे निकलता है? गायसे। गाय शब्दको कागज पर लिख दिया, गा य

और आपसे कहें कि अच्छा इस गायसे दूध निकालो, तो क्या उस गाय से दूध निकालकर पी लोगे ? नहीं। क्यों ? यों कि उसमें अर्थ क्रिया न होगी क्योंकि वह शब्दरूप है और अर्थचौकी यही है जिस पर काम होता है। अर्थगाय वही है जो चार टां ों वाली है, उससे दूध निकालो और पियो। तो यह अर्थरूप हुआ और ज्ञान चौकी—इस चौकीके बारे में जो हमको समझ बन रही है वह समझ है ज्ञानचौकी।

जीवमें किस चौकीका अनुभव—अब परमार्थसे यह बतावो कि हम शब्दचौकीमें घुले मिले हैं या अर्थचौकीमें घुले मिले हैं, या ज्ञानचौकी में घुले मिले हैं ? शब्दचौकीमें तो नहीं मिले हैं, अर्थचौकीमें भी नहीं मिल सकते, परद्रव्य है, उसका मुझमें अत्यन्ताभाव है। हाँ ज्ञानचौकीमें उस कालमें हम मिले जुले हैं। तो हम पर जो कुछ प्रभाव होगा, तरंग होगी वह ज्ञानचौकीके कारण होगी। शब्दचौकी या अर्थचौकीके कारण न होगी।

बेटाकी प्रियता—बेटे भी तीन हैं जिसके तीन बेटे हों उनको नहीं कह रहे हैं (हंसी)। शब्दबेटा अर्थबेटा और ज्ञानबेटा। एक कागज पर लिख दें–बे और टा और आपसे कहें कि यह क्या है ? आप कहेंगे बेटा। जैसे एक कागज पर लिख दिया कि हम मूरख हैं, पढ़े नहीं हैं। और ७–८ क्लास वाले लड़कोंसे पढ़ावें कि पढ़ो, इसे पढ़ना है तो वह पढ़ता है कि हम मूरख हैं पढ़े नहीं हैं। " अरे तो पढ़ तो। " हम मूरख हैं पढ़े नहीं हैं। अरे भाई पढ़ा तो वही जो लिखा है। तो शब्दबेटा तो आपके काममें नहीं आ सकता। बूढ़े हो जाएँ तो लाठी पकड़कर ले जाय, यह काम तो शब्दबेटा न कर सकेगा। प्यास लगी हो तो गिलास ले आए, पानी पिला दे, यह काम शब्दबेटा नहीं कर सकता और अर्थबेटा, मायने जिसके दो टांग हैं, जो घरमें रहता है या यहां बैठा है वह है अर्थबेटा मायने पदार्थभूत। सो कर्म भी आपसे अत्यन्त जुदा हैं। उसके परिणमन से आपमें कुछ नहीं होता है। ज्ञानबेटा क्या ? उस बेटाके सम्बन्धमें जो आपका विकल्प बन रहा है वह विकल्प है ज्ञानबेटा। आप राग कर रहे हो तो ज्ञानबेटामें कर रहे हो, न अर्थबेटामें राग करते हो, न शब्द बेटामें करते हो।

नामके विकल्पका राग—जो लोग भींत बना देते हैं और वहां नाम खुदा देते हैं। भींत जानते हो किसे कहते हैं ? भींच करके जिसमें ईंटें लगायी जाती हैं उसे भींत कहते हैं। अब नाम खुदा दिया तो वह नामका राग करता है। क्या वह उन शब्दोंमें राग करता है ? शब्दोंमें राग कर ही नहीं सकता है। शब्दोंमें राग कर ही नहीं सकता है, किन्तु उन शब्दों

के सहारे जो अपने आपमें विकल्प बने हैं उन विकल्पोंमें राग मच रहा है। हम आप अपनेसे बाहर कहीं भी कुछ नहीं कर सकते। व्यवहार-विमूढ़ पुरुष परद्रव्योंको यह मेरा है इस प्रकार देखता है, किन्तु जो प्रतिबुद्ध है, वस्तुके यथार्थ स्वरूपको जानता है वह परद्रव्यको मेरा है ऐसा नहीं कहता है।

चोरी—चोर किसे कहते हैं? जो परवस्तुको अपनी मान ले सो चोर है। जो लोग चोरी करते हैं, दूसरोंके घरसे चीज उठाकर अपने घर में धर लेते हैं उन्होंने क्या किया? चीज तो छू ही नहीं सकते, चीज उठा ही नहीं सकते, चीज धर ही नहीं सकते। यह तो निमित्तनैमित्तिक भावमें हो रहा है। तब क्या किया उन चोरोंने? परकी चीजको यह मेरी हो गयी अब ऐसी उनमें मान्यता आ गयी, इस कारण यह जीव चोर है।

चोरीका अव्यपदेश—पर-चीजमें जिसके अपनी मान्यता न बने तो चोर नहीं है। जैसे हम और आप बैठे बैठे बातें कर रहे हैं। बातें करते करतेमें यों ही बिना ही ख्यालके जैसे कि अनुभाव हो जाता है, आपकी जेबमें से फौन्टिन पैन निकाल लें और बातें करते जा रहे हैं, फौन्टिन पैन लटकाते जा रहे हैं, आपसे बातें करते जा रहे हैं, बात जब पूरी हो गयी तो आप अपने घर चले गये। हम अपने स्थान लौट आए। फौन्टिन पैन मेरे ही पास रह गया। ऐसी स्थितिमें शायद आप हमें चोर न कहेंगे, क्यों कि उस फौन्टिन पैनमें यह मेरी हो गयी, ऐसा मैंने न भाव किया और न आप समझ रहे हैं।

चोरीका व्यपदेश—भैया! एक फौन्टिन पैन को देखकर क्योंकि बढ़िया खरीदा है, मनमें विकल्प आजाय कि यह तो मेरी जेबमें आ जाना चाहिए तो वह चोर हो गया, परद्रव्यको अपनाने का विकल्प करले और पीछेसे बैठकर धीरेसे फौन्टिन पैन निकाल रहे हैं। इतनेमें आप सचेत हो गए तो हम कहेंगे कि हम तो आपकी परीक्षा कर रहे थे कि आप जान पाते हैं या नहीं। अगर निकल आने पर आप जान न पाते तो हमारी हो ही जाती, नहीं तो आपकी परीक्षाका बहाना आपके पास है। तो अन्दरमें परद्रव्योंको अपना बना लेनेका परिणाम जिनके जगता है वे सब चोर हैं। अब यों देखो कि चोरोंकी कितनी संख्या है? मेरी कमीज, मेरी धोती, मेरा लड़का, मेरी लड़की ये परद्रव्योंको अपनानेके ही अन्तरमें विकल्प हैं। तो परमार्थसे तो चोर हैं ही। साधुता तो वह है कि अच्छे व्यवहारमें रहकर अन्तरमें ऐसी सावधानी हो कि हैं सब भिन्न भिन्न। मेरा जगतमें कहीं कुछ नहीं है।

परके कर्तृत्वका अनवकाश किसी भी एक वस्तुका किसी भी अन्य

वस्तुके साथ सम्बन्ध सर्व प्रकारसे निषिद्ध किया गया है। जब वस्तु भिन्न भिन्न हैं तो उनमें कर्ता कर्मकी घटना नहीं हो सकती। इस कारण हे लौकिक जनो और हे श्रमणो आत्माओ! तुम अपने आपको अकर्ता ही देखो। देखो धर्मकी बात इस व्यावहारिक जीवनमें कुछ न उतरे तो उससे शांति नहीं आ सकती। प्रथम तो आजीविकाके साधनोंमे भी इतनी आसक्ति और अनुरागता नहीं होनी चाहिए कि चाहे किसीको कष्ट पहुंचे, अलाभ मिले या कुछ हानि होती हो तो उसमें विषाद कर उठें, क्लेश माने ऐसा आजीविकाके साधनों तकमें भी निज और परका अधिक भेद न होना चाहिए और फिर धर्मकी किसी बातमे ही यदि निज और परका भेद बना ले जायें कि यह मेरी संस्था है, यह उनकी है, ऐसा विसंवाद यदि है तो आप ही सोच लो कि धर्मपालनके निमित्त अपनी व्यवहारिकता कितनी बनायी?

भेदविज्ञानके प्रायोगिक रूपकी आवश्यकता – मंदिरमें खूब विनती कर आए, भक्ति की, पूजा की और मंदिरसे निकलते ही किसी भिखारी ने कुछ मॉग दिया तो वहीं नाराज होने लगे। उसको दुदकारने लगे। इस मंदिरमे घंटे भर रहते थे तो उसको असर १ मिनटको भी नहीं होता क्या? हमें जगत को असार जानकर अपनी उदारताका उपयोग करना चाहिए। किस को अपना मानना है? किससे अपना हित हो सकता है? सर्व परद्रव्य हैं। यदि यह किसीके उपयोगमें आता है तो खुशी होनी चाहिए। आने दो उपभोगको, विनाशीक पदार्थोंसे यदि किसी अविनाशी तत्त्वका भला होता है तो उसमें क्या है? सो परद्रव्योंको 'यह मेरा है' ऐसा अन्तरमें भ्रम न रखना चाहिए।

जब एक द्रव्यका दूसरे द्रव्यके साथ किसी प्रकारका सम्बन्ध नहीं है तब ज्ञानी जीव कैसा निर्णय रखता है? इस बातको अब कुन्दकुन्दाचार्य देव कह रहे हैं।

> तम्हा ण मेत्ति णिच्चा दोण्ह वि एयाण कत्तविवसायं।
> परदव्वे जाणंतो जाणिज्जो दिट्ठिरहियाण ॥३२७॥

लौकिक पुरुष और लोकश्रमणोंके विपाककी समानता—इस कारण ज्ञानी जीव परद्रव्य मेरे हैं, ऐसा न जान कर अथवा परद्रव्य मेरे नहीं हैं ऐसा जानकर परस्परमें दोनों पुरुषोंके लौकिक और श्रमण दोनोंमे देखो कैसा कर्तृत्व व्यवसाय चल रहा है, ऐसा जानते हुए वह जानता है कि ये दोनों सम्यग्दर्शनसे रहित हैं। दो पुरुषोंकी बातें चल रही हैं— एक लौकिक जन और एक श्रमणजन। जो गृहको त्यागकर अध्यात्मयोगके साधनेके भावसे निर्ग्रन्थ और निरारम्भ हुए हैं किन्तु सिद्धान्तके सम्बन्धमें यह आशय

बना लिया है कि सुख दुःख पुण्य पाप सबका करने वाला यह मैं आत्मा ही हू। इन दोनों पुरुषोंसे जो अपराध हो रहा है उसे ये दोनों नहीं जान रहे हैं। उसे तीसरा ही समझ सकता है जो कि परमार्थवित् है।

त्रुटिकर्तांके त्रुटिकी असूझ—दो पुरुष आपसमें लड़ें तो वे दोनों यथार्थ गल्ती नहीं समझ सकते कि वास्तवमें गल्ती किसकी है, किन्तु तीसरा पुरुष जो पाससे ही सब कुछ देख रहा है, वह समझता है कि इसमें गल्ती इसकी है। इसी तरह ये समस्त श्रमण और लौकिक जन भी होते हैं, जो जिन्हें वस्तुका स्वच्छ स्वरूप नहीं दिख रहा है। यह मैं आत्मा स्वरसतः ज्ञायकस्वभावी हू। इस मुझ आत्मतत्त्वमें किसी परभावको कर्तृत्वका स्वभाव नहीं पड़ा है। शुद्ध ज्ञानमात्र हू यह दृष्टि तो लौकिक पुरुषोंमें नहीं रही, क्योंकि उन्होंने तो अपना अस्तित्व ही खो दिया। मेरे सब भावोंका करने वाला प्रभु है, विष्णु है, परमात्मा है, व्यापक कोई एक आत्मतत्त्व है। सो उस ओर ही दृष्टि हो गयी। और ये श्रमणजन भी स्वरसत. अपना घात कर लेते हैं। वे तो यह विश्वास लिए बैठे हैं कि मैं राग करनेके स्वभाव वाला हू, राग करता हू। यों रागस्वभावमें तन्मय अपने को मानने वाला श्रमण भी दृष्टि रहित है।

अन्यथा कल्पनाके क्लेश—भैया! आनन्दका उपाय जैसा कुछ तत्त्व है वैसा जान लेना इतना भर है। लोग दुःखी क्यों हैं? है विनाशीक समागम और मानते हैं अविनाशी। सो विनाश होते समय उन्हें बड़ा क्लेश होता है। हैं वियोग होने वाली चीजें और मान रखा है कि इनका मुझसे वियोग न होगा, तो वियोग होते समय उसे क्लेश होते हैं। गुरु जी सुनाते थे कि एक गणितके प्रोफेसर थे, सो उन्हें स्त्रीसे बड़ा अनुराग था। जगतमें केवल उसे एक वही इष्टतम थी। सो स्त्री बहुत समझाये कि तुम्हें इतना अनुराग न करना चाहिए, यदि हम मर जायेंगी तो तुम पागल हो जावोगे। न माना। स्त्री मर गयी और गणितके प्रोफेसरकी क्या हालत हुई कि स्त्री की बहुत अच्छी फोटो बनवा ली थी। यह बनारसका जिकर है। बाई जी भी वहीं ठहरी हुई थीं और महाराज भी ठहरे थे। तो वह अपने कमरेमें बैठा हुआ गणितका प्रोफेसर उसी फोटो से कहता है कि अब हमें भूख लग गयी है, अभी रोटी न बनावोगी। अरे अब बहुत दिन चढ आया है, नहा धोकर मन्दिर जावो, कब रोटी बनावोगी? ऐसी ही कई बातें उस प्रोफेसर ने उस फोटोसे कहीं। तो बाई जी ने उसे बुलाया और कहा कि भाई तुम किससे यह सब कुछ कह रहे हो? तुम तो अकेले ही इस कमरेमें ठहरे हो। वह प्रोफेसर बोला कि हम अपनी स्त्रीसे कह रहे हैं। कहा है स्त्री? फोटो दिखा दिया। यह है स्त्री। कहा कि यह तो फोटो है। इसमें कागज और स्याही है। तो

प्रोफेसर कहता है कि माँ इतनी बात तो हम भी जानते हैं कि यह कागज और स्याही है, मगर वियोगजन्य वेदना इतनी तीव्र है कि बात किए बिना रहा नहीं जाता।

यथार्थज्ञानसे क्लेशका अभाव—सो ये परद्रव्य वियुक्त होने वाले हैं। हम अभीसे ऐसा मान लें कि इनका वियोग अवश्य होगा, इनमें हर्ष न करना चाहिए और न मानेंगे तो फिर दुर्दशा भोगो। एक सेठ थे, वह किसी अपराधमें जेलखानेमें चले गए। उन्हें वहां सी क्लास मिली, चक्की पीसनेका का काम मिला। घरमें कभी चक्की पीसी हो तो संक्लेश न हो ज्यादा। मगर कभी चक्की न पीसी थी सो उसे चक्की पीसनेमें बड़ा क्लेश हुआ। न पीसे तो कोड़े लगें। बड़ा रईस आदमी था वह, सो उसके दुःखको देखकर एक गरीब कैदीको दया आ गयी। तो सेठ जी से वह गरीब कैदी पूछता है, क्यों रोते हो भाई! तो वह बोलता हैं कि कहाँ तो हम गद्दी पर बैठते थे, तमाम नौकर चाकर लगे हुए थे, अब हमें ऐसा करना पड़ रहा है, तो वह कैदी समझाता है कि यह तो जेलखाना है, ससुराल नहीं है जो पकवान मिले और बढ़िया पलंग मिले। सो अपना दिमाग ठिकाने ले आवो, घरकी बातें दिमागमें न रखो। तुम यह जानो कि हम कैदमें पड़े हुए हैं। सो ऐसा क्लेश करनेका काम ही नहीं है। उसकी समझमें आ गया, तो दुःख कम हो गया।

सीधा मार्ग—भैया! यह सारा जगत् अपनेसे अत्यन्त भिन्न है। परपदार्थोंका ध्यान करके कभी सुख शांति मिल ही नहीं सकती। किसी को बता दें। यदि श्रद्धान है तो शांतिका मार्ग मिलेगा और वस्तुतत्त्वका श्रद्धान नहीं है तो भाई कितना ही कुछ वैभव बढ़ालो, जितना ही वैभव बढ़ेगा उतना ही अधिक समय आने पर क्लेश बढ़ेगा। यह मोही जीवों की बात कही जा रही है। इसलिए जैसा यथार्थ वस्तुस्वरूप है वैसा ही विश्वास करो। एक बातके विश्वास पर तो डट जावो। किसी क्षण तो अपने ज्ञानानन्द ज्योतिस्वरूपके दर्शन करो। यदि ऐसा कर सके तो यह मार्ग आपको शांति प्रदान करेगा और बाहरमें तृष्णा करना और उसमें ही लुब्ध रहना, यह तो लाभ न देगा। अपने आत्मतत्त्वका विश्वास कीजिए।

विश्वासका फल—दो भाई थे तो नौकरी करने चले। तो निकल गए ५०, ६० कोस। जंगलमें एक सांड मिला। छोटा भाई बोला कि भाई हम तो इस सांडकी नौकरी करेंगे। वह सांड बड़ा सुन्दर था। हृष्ट पुष्ट था जिसका कंधा बड़ा ऊँचा था और सींगें बड़ी सुहावनी बनी हुई थीं। बोला कि हम तो इस सांडकी ही नौकरी करेंगे। मेरा मालिक तो यह सांड ही है। बड़ा भाई बोला कि यह कितना मूर्ख बन रहा है? बहुत मनाया पर

वह न माना। वह बोला कि अब तो यह सांड ही हमारा सब कुछ है। बड़ा भाई आगे चला गया। उसे समझो कि कोई २५) रु० महीनेकी नौकरी मिल गयी, सो वह तो करे बड़ा नौकरी सेठकी। तो कभी यह छोड़ा, कभी वह छोड़ा, इस तरहसे ११, ११॥ महीने तक नौकरी की। छोटा भाई साडकी नौकरी करे। अच्छा तो हम तुम्हारी क्या सेवा करें? हरी घास ले आवो, खूब सेवा करो। शरीरमें खूब हाथ फेरो। इस तरह स्वय ही बोल कर वह अपने साड मालिककी नौकरी करे। साडसे वह कहता था कि क्या हमारी नौकरी मिलेगी? तो वह साड बेचारा क्या बोले, स्वय ही बोले कि हा हा मिलेगी इस तरह उसने भी ११, ११॥ महीने उसकी नौकरी की बादमें बड़ा भैया अपनी सब नौकरी लेकर लौटकर आया तो छोटे भैयासे कहता है कि अब चलो तुम्हें कुछ नहीं मिला तो न सही, हमको जो मिला है उसमें से आधा दे देंगे। छोटा भाई बोला कि अभी नहीं चलेंगे, अभी साल भरमें १५ दिन बाकी हैं। अभी १५ दिन और मालिक की सेवा करेंगे। सो १४ दिन और व्यतीत हो गए।

अब वह कहता है साडसे कि कल एक साल पूरा हो जायेगा, अब हमारी नौकरी दोगे कि नहीं? तो वह स्वयं कहता है कि हाँ कल मिलेगी। अब कैसा सुयोग हुआ, अंतिम दिन कि बहुतसे बजारे बैलोंपर कुछ लादे हुए लिए जा रहे थे। नदीका किनारा था। बैल प्यासे थे। सोचा कि इन सब बैलोंको पानी पीने भेज दें। बैलोंपर लदी थीं अशर्फियां। तो यह समझो कि वे बजारे सड़क पर बैठ गए और बैलोंको इशारा कर दिया कि जावो पी आवो पानी। सब क्रम क्रमसे आए। सांड उन बैलोंकी कोख में सींग गोंच दे। सींगके गोंच देनेसे लादमें छेद हो जाय और जैसा छेद हो जाय उसके अनुसार ही अशर्फिया गिर जाएँ। दूसरा बैल आये तो उसके भी लादमें सींग गोंच दे, छेद हो जाय तो १०-५ अशर्फियां गिर जायें। जो छोटा छेद हो उसमें दो चार अशर्फियां गिर जायें और किसी से १०-२० गिर जायें। अब बैलोंको लेकर बजारे चले गए। छोटे छेद होनेसे उन्हें कुछ पता न पड़ा। अपने सांड मालिकसे बोला कि अब हमें एक सालकी नौकरी मिलेगी कि नहीं? तो स्वयं ही बोला कि अरे यह नौकरी पड़ी तो है, यही तो है साल भरकी नौकरी। इस तरहसे १ साल की नौकरी लेकर वह अपने घर आया। बड़े भाई ने देखा कि यह तो मालोमाल हो गया है, हमें तो कुछ नहीं मिला।

मोहान्धमग्नताका कारण—भैया! अपनको ऐसा विश्वास हो कि मिलना होगा तो कहीं भी मिलेगा, न मिलना होगा तो कहीं भी न मिलेगा। ऐसे ही विश्वास कर लो कि मिलेगा आनन्द तो आपको अपने आत्मामें

ही मिलेगा और न मिलना होगा तो कहीं न मिलेगा। खूब पटक लो जान। जिस चाहेको अपना स्वामी बनालो, मालिक बनालो, सिर पर बैठा लो, जो चाहे कर लो, पर मिलेगा कुछ तो आपको अपने आत्मामें से ही मिलेगा। अन्य जगहसे न मिलेगा। प्रत्येक पदार्थ अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल भावमें बसता है। ऐसा पदार्थोंका स्वभाव नियत है। इसे जो नहीं मानते हैं वे मोह अज्ञानमें डूब गए हैं, और इसीलिए कायर होते हुए नाना प्रकारकी अपनी चेष्टाएँ करते हैं।

यथार्थ ज्ञानके अभावमें यथार्थ सिद्धिका अभाव—भैया! स्वभावविरुद्ध कर्मोंको करनेसे वे भाव ही कर्म हैं ना, बनते हैं और भाव कर्मका निमित्त पाकर द्रव्य कर्म बनते हैं, उनके उदयका निमित्त पाकर ये भाव कर्म होते हैं और इस लपेटमें यह जीव जन्ममरणके दुःख भोगता है। तो जीव यह स्वयं कर्ता बना है, दूसरा नहीं बना है, किन्तु ऐसा कर्तापन अपने आपका स्वभाव मान लिया जाय तो यही अज्ञानी जीव हुआ। जो अपने भवितव्यका, रागद्वेष सुख दुःखका कर्ता किसी परजीव या ईश्वरको मानता है वह भी अपने ज्ञानानन्दनिधान ब्रह्मतेजमें मग्न नहीं हो सकता और जो अपने आपको ही रागादिक करनेका स्वभाव मानता है, मायने आत्मा कर्ता ही है, ऐसे आशय वाला भी अपने ब्रह्मतेजमें मग्न नहीं हो सकता।

मोहका उपादान—भैया! जिसका मोहका उपादान है, उसे परपदार्थों में भी आत्मीय बुद्धि लगी है। ऐसा व्यक्ति धर्मकी भी जगह बैठा हो तो, किसी भी जगह पहुच जाय तो, याद आयेगी वही कनक कामिनीकी। एक गडरियेकी लड़की थी गड़रिये, जो बकरी पालते हैं। सो उस लड़कीकी शादी किसी तरह बादशाहसे हो गयी। बादशाहने पसंद किया, सो हो गयी। बादशाहके यहां लड़की पहुंची। उसे खूब गहनोंसे सजा दिया, अच्छे गहने अच्छे कपड़े पहिनाए और निवासके लिए एक बड़ा महल दे दिया। तो उसका जो बड़ा हाल था उसमें अनेक चित्र लगे थे, वीरोंके, महाराजावोंके, संतोंके, भगवानके तो उनको देखनेमें वह लग गयी। तो देखती जाये। एक चित्र उसमें ऐसा था जिसमें दो बकरियां बड़ी सुन्दर बनी थीं। उन्हें देखकर वह बोली टिक-टिक-टिक। बकरियोंमें रहने वाली मोड़ी बादशाहके घर पहुच गई, पर वह अपना उपादान कहा फैंक दे? भले ही कपड़ोंसे सजा दिया, खूब गहने से सजा दिया पर वह करे क्या? तो स्वरूपके अज्ञानी परपदार्थोंके मोही भले ही इनको दुपट्टा व मुकुटोंसे सजा दें, मुकुट पहिना दें, भले ही खूब अभिषेक करें, मगर उपादान मोहका है तो स्त्रीकी खबर कहासे भुला दें?

मोहियोंके मनमें उनके इष्टका फोटो—जैसे कोई लोग एक भगवानकी फोटो लिए रहते हैं, छाती पर बांधे रहते हैं, कभी कभी ऐसा करते हैं। तो इनका मतलब यह है कि मेरे हृदयमें भगवान ही बसे रहें। इसी लिए वे भगवानकी फोटो लगाए रहते हैं। वे ऊपरसे तो लिए रहते हैं और यह अज्ञानी भीतरसे लिए रहता है स्त्रीको, पुत्रको, मकानको। सो जब तक मूलमें सुधार नहीं होता, परवस्तुओंसे भिन्न अपने आपका श्रद्धान नहीं होता तब तक इसे शांति नहीं प्राप्त हो सकती। कर्ता कौन है? यह मैं चेतन ही गड़बड़ कर नाना विकल्प और चेष्टाएँ किया करता हूं। इनके करने वाला और कोई दूसरा नहीं है। ऐसा कोई तीसरा तटस्थ पुरुष जानता है कि यह इतनी कमायीका जो परिश्रम हो रहा है, सो यह निश्चय दृष्टिसे रहित है और विकल्पोंके फंदमें पड़ करके ऐसी चेष्टा करता है।

आत्मविकासोंका आत्मामें निरखना—भैया! जितने प्रभुके नाम लें और जितने जो प्रभु हुए हैं ब्रह्मा, महेश्वर, विष्णु, तीर्थंकर जितने भी ये महान आत्मा हुए हैं वे सब आत्मा ही हैं, आत्मरूप ही हैं। कुछ अपने स्वरूप जातिसे भिन्न अलगसे कोई नहीं हैं। सो उन सब रूपोंको अपने आपमें निहारो, इस आत्माका ही यह सब कुछ रूप है। जैसे पंचपरमेष्ठी की भक्ति करें तो उन पंचपरमपदोंको अपने आपके विकासके रूपमें देखें तो उससे एक स्फूर्ति मिलती है, कांति मिलती है, मोहको हटानेका उत्साह जगता है। पर दीन होकर प्रभुकी भक्तिमें लगें तो अन्तरमें उत्साह नहीं जगता। वहाँ दीनता जगती है कि हे प्रभु! तुम ही हो मेरे सब कुछ, तुम हमें राखो या मारो। ब्रह्मतेजमें मग्न होनेका उन्हें उपाय नहीं मिल सकता।

परिणमनकी कृतिका निर्णय—इससे भैया! एक निर्णय करो, अपनी परिणतियोंके सम्बन्धमें ये रागद्वेष सुख दुःख आदिक मेरे स्वभावसे भी उत्पन्न नहीं होते, और इनका करने वाला भी कोई दूसरा नहीं है, किन्तु किसी भी अनुकूल अन्य उपाधिका निमित्त पाकर मुझ आत्मभूमिमें ये रागद्वेषादिक भाव उत्पन्न होते हैं। इनका होना मेरा स्वभाव नहीं है। इनका करने वाला मैं ही अज्ञानके कारण हूं, अर्थात् मैं ही परिणमता हूं, मगर ऐसी कोई चीज स्वभावमें लगी नहीं है। कोई एक दूसरेका कुछ नहीं कर सकता। जैसे यह एक सीधी अंगुली है, अब टेढ़ी हो गयी तो हम यह कहें कि देखो इस मेरी अंगुलीको इस अंगुलीने टेढ़ी कर दिया। तो इसका अर्थ क्या है कि एकका एकमें करना क्या? एक दूसरेमें कुछ कर सकता नहीं है। फिर करनेका नाम जो चल पड़ा है यह व्यवहारकी भाषा है।

कर्तृत्वके आदरसे शान्तिकी सम्भवता—भैया ! निरखते यों जावो । यह पदार्थ है, ऐसा सिद्ध है और ऐसा निमित्त योग पाने पर यह अपने आपमें इस प्रकारसे परिणम जाता है । सो जरा पुण्यका उदय आया । थोड़ा कुछ वैभवपासमें हो गया तो यह आशय बढ़ाये चले जा रहे हैं कि मैं बड़ा हूं, महान् हूं, समझदार हूं और मैं जो चाहूं सो कर सकता हूं, मैं जैसा चाहूं भोग सकता हूं, ऐसा अपने आपमें आशय बढ़ाये चले जा रहे हैं, पर हे आत्मन् ! तू अपने स्वभावको तो देख । तू तो केवल ज्ञानज्योति मात्र है । तू असार परिणमनसे हटकर निजके सत्में पहुंच । बाहरमें घूमनेसे तुझे आनन्दकी प्राप्ति नहीं हो सकती ।

सर्वविशुद्ध स्वरूपके परिज्ञानका महत्त्व—इस सर्व विशुद्ध अधिकारमें यह बात बतायी गयी है कि प्रत्येक द्रव्य अन्य सर्वद्रव्योंसे अत्यन्त पृथक् है, सबसे विशुद्ध है । शुद्धका अर्थ होता है शून्य । जो लेप है, मैल वह न रहे इसे कहते हैं शुद्ध । प्रत्येक पदार्थ शुद्ध है अर्थात् स्वयंके स्वरूप मात्र है । एक शुद्ध होता है पर्यायसे शुद्ध और एक शुद्ध रहता है स्वरूप मात्र । स्वरूपमात्र रूप शुद्धके परिज्ञानकी बड़ी महिमा है । इस जीवने आज तक अपनेको नानारूप माना अर्थात् शुद्ध माना, अशुद्धको भी अपना सर्वस्वरूप माना, उसके फलमें यह संसारभ्रमण चल रहा है । बात साफ इतनी है, जिससे करते बने सो करे और न करते बने अर्थात् न जानते बने तो जो हो रहा है सो हो ही रहा है । पर आनन्द वही पायेगा जो अपना ज्ञान सही रखेगा । वह किसी भी परिस्थितिमें दुखी न होगा ।

यथार्थज्ञानसे ही वास्तविक महत्ता—भैया ! अपना ज्ञान सही नहीं रख सकते उससे दुःख होता है और उससे ही विडम्बनाएँ होती हैं । बाकीके लेखा जोखा सब लगते रहते हैं । मेरे पास इतनी आय नहीं है इसलिए कष्टसे हैं, मेरे पास इतना धन नहीं है सो दुःखसे हैं अथवा मेरे घरके लोग आज्ञाकारी नहीं हैं सो क्लेश है । ये सारी बातें बकवाद हैं । क्लेश किसी को रंच भी नहीं है । क्लेश तो यह है कि अपना ज्ञान नहीं सही रख पा रहा है । धनसे बड़ा माना तो जिसने धनका त्याग कर दिया वह तो अब छोटा हो गया समझें क्या ? क्योंकि धन तो रहा नहीं । लोकमें नगर में रहकर इज्जत पाई, इसका ही यदि बड़प्पन माना जाय तो जब त्याग कर दिया और लोकमतके न रहे वहां की चोटोंके बीचके न रहे तो हल्के बन गये क्या ?

असंतोषमें दरिद्रता—यहां कौन दरिद्र है और कौन धनवान है ? जिसका मन संतुष्ट है वह तो धनिक है और जिसका मन असंतुष्ट है वह दरिद्र है । एक बार एक साधुको रास्तेमें एक पैसा मिला, पुराने समयका

पैसा क्या आप लोगोंने देखा है ? एक छटाकमें चार चलते हैं। कुछ तो बूढ़ोंको ख्याल होगा। अगर एक पैसा पीटमें लग हैं तो टें बोल जाए। इतना मोटा वह पैसा होता है। तो साधुने सोचा कि यह पैसा किसे दू ? सोचा कि दुनियामें जो अधिकसे अधिक गरीब हो उसको देंगे। अब गरीबकी खोजमें वह निकला, पर अधिक गरीब कोई न मिला।

बहुत दिन बाद उस नगर का बादशाह सेना सजाकर एक शत्रु पर चढ़ाई करने जा रहा था। जैसे किसी समय ग्वालियरके राजाने अटेर पर चढ़ाई की थी। अटेर मायने क्या ? जहा टेर न सुनाई दे। होगा जंगल हमने तो देखा नहीं। अगर कोई टेर लगाए तो दूसरेको न सुनाए। तो वही तो अटेर है। सो ग्वालियरके राजा ने जैसे अटेर पर चढ़ाई की थी इसी प्रकार वह बादशाह किसी छोटे राजा पर चढाई करने चला। सो साधुने पूछा कि बादशाह कहां जा रहे हैं ? पता लगा कि बादशाह दूसरे राजा पर चढ़ाई करने जा रहा है। तो जब सामने से बादशाह निकला हाथी पर चढ़ा हुआ तो उसने वही पैसा बादशाहकी नाकमें मारा इसलिए कि यह पैसा इसे ही देना चाहिए। सो वह पैसा उसकी गोदमें गिरा। वह देखता है कि इस साधुने मुझे पैसा मारा। पूछा कि यह पैसा क्यों फेंककर मारा ? साधु बोला कि महाराज हमें यह पैसा मिल गया था सो मैंने सोचा था कि दुनियामें हमें जो सबसे अधिक गरीब दिखेगा उसे ही यह पैसा मैं दूगा। इसलिए मैंने तुम्हें यह पैसा फेंककर दिया। तो क्या मैं गरीब हू। "हा हां।" कैसे ? ऐसे कि यदि आप गरीब न होते तो दूसरे राजाका राज्य हड़पने क्यों जाते ? उसकी समझमें आ गया। ओह ठीक तो कह रहा है। समझमें आ गया और हुक्म दिया सेनाको कि अब लौट चलो, लड़ाई नहीं करना है। जो अपने पास है वही बहुत है। तो उस पैसे ने उस बादशाहकी गरीबी मिटा दिया। तो लौकिक परिस्थितिसे सुख दु खके फैसला करनेकी जो आदत पड़ी है वह रात दिन परेशान करती है।

संतोषमें समृद्धि—राम लक्ष्मण सीता जंगलमें रहे, मिट्टीके बरतन बनाकर उनमें भोजन बनाया खाया, और कितने सुखमें वे थे। उन्हें क्लेश था क्या कुछ ? उनके पास धन तो नहीं था। तो जहां सन्तोष है वहां सुख है, जहा सन्तोष नहीं है वहां सुख नहीं है। तो बाह्य परिस्थितिमें हम सुख दु खका फैसला न किया करें किन्तु हम पागल हैं तो दु खी हैं। और सावधान हैं तो सुखी हैं। इतनी ही रहस्य है।

पागलपन—पागलपन किसे कहते हैं ? वैसे तो पागल होना अच्छी बात है। बुरी बात नहीं है। जो पापोंको गलाए सो पागल। पा मायने पाप गल मायने गलाने वाला। सो पागल मायने पापोंको नष्ट करने

वाला। लेकिन लोग पागलका अर्थ लगा बैठे हैं कि जिसका ज्ञान व्यवस्थित न हो, परकी दृष्टि करके जो गले, बरबाद हो, परसे जो आशा करे, इन मायने उसे पागल कहते हैं। जो बात जैसी नहीं है वैसी बात बोलकर निश्चय करना उसको पागल कहते हैं। यह आत्मा सर्व विशुद्ध है, इसका कहीं कुछ नहीं है, अकिञ्चन है। इस अकिञ्चनकी आराधनामें तो आनन्द है और अपनेको सकिञ्चन माने तो उसमें क्लेश ही है।

निरपेक्ष भागवद्भक्ति—धनञ्जयसेठ भगवानकी भक्तिमें क्या कहते हैं—"इति स्तुतिं देव विधाय दैन्याद्वरं न याचे त्वमुपेक्षकोऽसि। छायातरुं संश्रयतः स्वतः स्यात्कि छायया याचितयात्मलाभः।" हे भगवान्! तुम्हारी स्तुति करके मैं दीनतासे आपसे कोई वर नहीं मांगता हूं। बड़ेके बड़े ही मित्र होते हैं। भगवानके भक्त भी सूरवीर उदार गौरवशाली होते हैं। वे भगवानसे कुछ नहीं मांगते हैं। इस प्रकार स्तुति करते हैं कि हे देव! मैं दीनतासे आपसे कोई वर नहीं मांगता। अरे सेठ क्यों नहीं मांगते हो ऐसा अगर भगवानका कोई वकील बोल दे तो भक्त कहता है कि क्या मांगें, तुम तो उपेक्षक हो। तुम न देते हो, न लेते हो, न किसीकी सुनते हो, न तुम किसीकी ओर झुकते हो तुम तो अपने आनन्दमें मग्न हो, लीन हो। तुमसे क्या मांगे और फिर एक बात और है कि तुम दे ही क्या सकते हो, तुम्हारे पास धन नहीं, पैसा नहीं, ईंटें नहीं, परमिटके पत्रा नहीं, तुम दे ही क्या सकते हो? केवल चिन्मात्रस्वरूप हो, तुमसे हम क्या मांगें?

परमार्थप्रभुभक्तके स्वतः समृद्धि—और फिर प्रभु एक बात और है। कोई मनुष्य छाया वाले पेड़के नीचे बैठ जाय, जैसे कि आजकल गर्मीके दिन हैं और सड़कके किनारे कोई पेड़ मिल जाय और पेड़के नीचे बैठ जाय और नीचे बैठे-बैठे एक मंत्र जपे, हाथ जोड़कर विनती करे कि हे पेड़ तू मुझे छाया दे दे, तू मुझे छाया दे दे—ऐसा कोई मुसाफिर करे तो उसे लोग पागल कहेंगे, बेवकूफ कहेंगे। वैसे बेवकूफ होना अच्छा है। बेमायने दो और वकूफ मायने फिक्स बुद्धि याने इबल बुद्धि वाले। जैसे वे इंग्री बोलते हैं ना, सो उसके मायने हैं दो इन्द्रिय। पर यहां बेवकूफ मायने पागलके हैं, मूर्खके हैं। अरे छाया वाले पेड़के नीचे तो बैठा है और पेड़से छाया मांगे, यह कहां ठीक है? अरे स्वतः ही छाया हो रही है। अब भीखनेसे लाभ क्या है? इसी तरह नाथ! आपके जो शुद्धस्वरूप की भक्तिकी छायामें बसता है उसको अनाकुलता है, आनन्द है, समृद्धि है। सब कुछ अपनेमें हो रहा है और फिर कुछ प्रभुसे मांगे तो उसे मूढ़ कहना चाहिए।

बड़ोंका सम्बन्ध बड़ी पद्धतिमें—भैया! किसी बड़े पुरुषसे कुछ मांगो

तो छोटी बात मिलेगी, भगवानसे यदि कुछ चाहा कि धन बढ़े, पुत्र आज्ञाकारी हों तो फिर कुछ न मिलेगा। अगर उदय है अधिक तो इष्ट समागम थोड़ा हो आयेगा, बस काम खत्म हो गया। तो ऐसा उदारचित्त होना चाहिए कल्याणार्थीको कि किसीसे कुछ न मांगे। जब भगवान आदिनाथ स्वामी विरक्त हो गए थे तो नमि और विनमि इनको कुछ न दे पाये थे औरोंको तो सब बांट दिया था। अब नमि और विनमि आए तो आदिनाथ भगवानसे कहते हैं जो कि तपस्यामें मौन खड़े थे। कहते हैं कि हे प्रभु! हमें कुछ नहीं दिया, सबको सब कुछ दिया। अरे हमारी तरफ तो देखते भी नहीं हैं, कुछ देते भी नहीं हैं, कुछ सुनते भी नहीं हैं। तो एक देव आया, बोला कि तुम उनसे क्या कहते हो, तुम्हें जो कुछ चाहिए हमसे कहो, हम देंगे तो नमि विनमि कहते हैं कि तुम कौन बीचमें दलाल आए? हमें तुमसे न चाहिए। हमें तो वही देंगे तो लेंगे।

महत संतोंका सत्संग--अरे बड़े की गुस्सा, बड़ेका अनुराग, बड़ेकी डाट, बड़ेका संगसे सब लाभ ही लाभ हैं। कोई बड़ा कभी नाराज हो जाय तो भी समझो कि मेरे भलेके लिए है। बड़ा प्रसन्न हो जाय तो भी समझो कि मेरे भलेके लिए है। तो ऐसे बड़ेसे सम्बन्ध बनाओ कि जिससे बड़ा और कुछ न हो। बड़ा व्यवहारमें तो प्रभु है और परमार्थमें स्वकीय सर्व विशुद्ध ज्ञानस्वरूप है। इसही सर्वविशुद्ध ज्ञानको इस समयसारके अंतिम अधिकारमें रखा है। आध्यात्म परिज्ञानका यह मर्मभूत अधिकार है। दो अधिकार तो बड़े खासियत रखने वाले अधिकार हैं समयसारमें। एक तो कर्तृकर्म अधिकार जो अज्ञानको लपेटकर चटनी बना देता है और एक है सर्व विशुद्ध अधिकार। जब इसका वर्णन आयेगा तब इसका जौहर देखना। किस किस प्रकारसे यह सर्व विशुद्ध स्वरूपको खोलकर रखता है?

शास्त्रोंके उपदेशोंका प्रयोजन--भैया! इस प्रकरणमें अभी तक यह बताया है कि प्रत्येक द्रव्य अपने ही पर्यायसे तन्मय होता है। बस इसी से ही समझ जावो सब कुछ कि कोई पदार्थ किसीका नहीं है। कोई पदार्थ किसीका कर्ता नहीं है। कोई पदार्थ किसीका भोक्ता नहीं है। मन्त्र बताया है एक कि सर्व पदार्थ अपनी-अपनी परिणतिसे तन्मय होते हैं। अर्थ निकला कितना विशाल? कर्तृत्व, भोक्तृत्व, बंध, मोक्ष सर्वप्रकारके विकल्पोंसे शून्य केवल ज्ञायकस्वरूप यह मैं आत्मा हूं। इसका परिज्ञान करानेके लिए शास्त्रोंकी रचना हुई है। सर्व शास्त्रोंका प्रयोजन इतना ही है कि सर्व विशुद्ध जो निजका स्वरूप है, विध्यात्मक समझ लो अवक्तव्य जो अनुभवमें आ सकने वाला आत्मस्वरूप है उसे जान जावो। इतना ही

सर्वशास्त्रोंका प्रयोजन है— ऐसा जानकर फिर इसमें स्थिर हो जावो। इसके लिए फिर चरणानुयोगकी व्यवहार प्रक्रिया है और ऐसा करने वाला उसमें किस-किस अतरङ्ग और बहिरङ्ग वातावरणमे युक्त होता है इन सबका सूक्ष्म वर्णन करणानुयोगमें किया है।

आत्मभाव—आत्मामें भाव एक है चैतन्यभाव। वह चैतन्यभाव निरन्तर परिणमनशील है। अब इसमें दो बातें आईं—परम पारिणामिक भाव और परिणमनभाव। परिणमनभाव चार प्रकारके हैं—औदयिक, औपशमिक क्षायोपशमिक और क्षायिक। किन्तु, स्वरूप तो एक है चैतन्य स्वरूप। वैसे पारिणामिक भाव तीन बताये गए हैं—जीवत्व, भव्यत्व और अभव्यत्व। इनमें भव्यत्व और अभव्यत्व ये दो अशुद्ध पारिणामिक हैं और जीवत्वभाव शुद्ध पारिणामिक है। इस जीवत्व भावके परिणमन रूप ये चार भाव हैं।

औपशमिक आदि भावोंका विवरण—औपशमिक कर्मोंके उपशमका निमित्त पाकर होने वाला जो परिणाम है वह औपशमिक है। कर्मोंके क्षय से होने वाला जो परिणाम है वह क्षायिक है और कर्म प्रकृतियोंके क्षायोपशमसे उत्पन्न होने वाला जो भाव है वह क्षायोपशमिक है और कर्मोदय का निमित्त पाकर होने वाला आत्मा का भाव औदयिक है। इन ५ भावोंमें से श्रेयोमार्गमें बढ़ते हुएको श्रेय किस भावका है? औदयिक भावको तो आप बतायेंगे नहीं, वह तो विभाव रूप है। जो पारिणामिक भाव है वह ध्रुव है, उससे मल नहीं होता, उससे कल्याणकी क्या आशा करें और औपशमिक क्षायिक और क्षायोपशमिक परिणाम यद्यपि निर्मल भावको उत्पन्न करके होता है, किन्तु किस भावका आश्रय करके निर्मल भाव होता है? तो आश्रय करने योग्य भाव तो है पारिणामिक जीवत्वस्वरूप, ज्ञायक स्वभाव और उसका आश्रय करने का जो परिणमन है वह परिणमन या तो औपशमिकरूप पड़ेगा या क्षायिकरूप होगा या क्षायोपशमिक रूप होगा।

प्रयोजकका प्रयोजन—जैसे कोई व्यापारी आपसे बात करने आए और उसके प्रयोजनकी कोई बात ऐसी है कि जो आपके लिए इष्ट बनी है तो आप यहां वहांकी गप्पें उससे छेड़ेंगे। मौका ऐसा न आने देंगे कि वह अपनी बात रख सके। मगर वह किसी भी गप्पोंमें नहीं उलझता है, थोड़ा उलझकर किसी भी समय अपने आत्माके प्रयोजनकी बात कहता है। आपसे वह कुछ चाहता होगा सो रकम मागने आया, आप यहां वहां की बातें करेंगे पर उसे नहीं सुहाती। वह हेर फेर कर अपने ही प्रयोजनमें आता है। इसी प्रकार तत्त्वज्ञानी जीव उससे कुछ भी करा ले, चाहे वह

रोटी बनाने बैठे, चाहे मंदिरमें बैठे, चाहे स्वाध्यायमें आये, परिस्थिति-वश कहीं कुछ करना पड़े किन्तु वह हेरफेर करके आता है अपने तत्त्वदृष्टि की ही ओर। किन्तु जिनके कोई लक्ष्य नहीं है, जो यत्र तत्र विचरण ही करते हैं, उन्हें पता ही नहीं है।

अनुभवरहितोंकी विडम्बना—चार पंडित थे। एक ज्योतिषी, एक वैद्य, एक नैयायिक और एक वैयाकरण। चले घोड़ा लेकर। जंगलमें टिक गए। ज्योतिषीसे पूछा कि घोड़ा किस दिशामें छोड़ा जाय? उसने मीन मेष तुला वृश्चिक करके दिशा बता दी। उसी दिशामें घोड़ा छोड़ दिया गया। वह भाग गया। अब रसोई बने, कौन बनाए? जो कलाविहीन हो। तो मिले वैयाकरण साहब। ये किसी कामके नहीं हैं, इन्हें रसोई सौंपो। दी गयी रसोई। वैद्यजी निर्दोष भाजी लाये और नैयायिक जीके तर्क शक्ति ज्यादा है तो कीमती मुख्य चीज क्या है घी। सो नैयायिक घी लेने गया। तो नैयायिक साहब घी लिए आ रहे थे तो रास्तेमें तर्कणा हो गयी, एक शंका हो गयी कि—'घृताधार पात्र वा पात्राधार घृतम्।' घी पात्रके आश्रित है या पात्र घी के आश्रित है। ऐसी शंका हो गयी। अब उसने गिलाससे सारा घी उलट कर जांच कर ली। अब वैद्य जी निर्दोष भाजी लेने गए तो सोचा कि कौनसी भाजी निर्दोष है, सोचा कि पलक की भाजी सर्दी करती है, भिन्डी वादी होती है, सो उन्हें नीमकी पत्ती निर्दोष जंची। सो ले आये नीमकी पत्ती। वैयाकरण साहबको दे दी। वैयाकरण साहबने भाजीको हंसियासे काटकर पतेलीमें डाल दिया। अब जब पतेलीमें नीम की पत्तीकी भाजी चुरती है सो उससे भलभल भलभल की आवाज निकल रही थी। वैयाकरण साहब ने सोचा कि यह भल-भल शब्द तो आज तक कभी न सुना, न पढ़ा, सो यह पतेली झूठ बोलती है। तो झूठ बोलने वालेके मुंहमें धूल उठाकर झोंक देना चाहिये, तो उसने भी झोंक दिया धूल उठाकर। अब सब क्या खायेंगे बनावो? सागमें नीमकी पत्ती, उसमें भी झूठ बोलनेसे मिट्टी झोंक दी गयी। तो ऐसी ही प्रवृत्तियां हैं मोही जीवोंकी, अज्ञानी जीवोंकी।

सर्वसमृद्धिकी मूल ज्ञानकला—एक कला यदि है तो सभ्यता भी आ जाती है। वह कला है ज्ञानकला। दूसरोंको क्षमा करनेका माद्दा आता है तो सभ्यता ही तो वही। नम्रताका व्यवहार आ जाता है तो सभ्यता ही वही। जिसको सर्व विशुद्ध ज्ञानके अनुभवकी कला जगी है उसके व्यवहार में भी सभ्यता आ जाती है। छल कपट काहेको करते हैं, लोभ काहेको करते हैं। है समागम तो करो उपयोग। जब न रहेगा तो देखा जायेगा। सर्वविशुद्ध ज्ञानकी कला वाला पुरुष लोकमें भी निराकुल रहता और अपने

अन्तरमें भी निराकुल रहता है। इसी सर्व विशुद्ध ज्ञानका यह स्वरूप कहा गया है।

परमार्थ शरण गहनेका कर्तव्य---हे मुमुक्षुजनों ! जरा अपने आप पर दया करके विचारो तो सही कि हमें परमार्थशरण क्या है ? आखिर हमें चाहिये तो शान्ति ही है या अशान्ति चाहिये बतावो ? शान्ति ही चाहिये। तो क्या किसी परपदार्थका आश्रय करके हम शान्ति पा सकते हैं ? अरे पर तो पर ही है और यह सब पर विनाशीक है अथवा इसका वियोग नियमसे होगा तथा पर के आश्रय करके जो परिणाम बनता है वह उठा उठा, लिया दिया, अलल टप्प आकुलतारूप बनना है। कुछ तो भोगकर जान भी चुके होगे और बचीखुची असारताकी बात युक्तिसे समझ लीजिये। बाहर कहीं कुछ आश्रय करने योग्य नहीं है। अब अपने अन्तरमें आवो और अनादि अनन्त नित्य अन्तःप्रकाशमान् अहेतु सहज निज ज्ञानानन्दस्वरूप कारणसमयसारका दर्शन ज्ञान आचरणरूप अभेद-शरण ग्रहण करो।

॥ समयसार प्रवचन त्रयोदशतम भाग समाप्त ॥